ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

वर्ष-5, अंक - 23-25

मूल्य 60/-

बालमुकुंद गुप्त विशेषांक

बाबू बालमुकुंद गुप्त विशेषांक

अनुक्रम

ऐसे में बालमुकुंद गुप्त को याद करना अच्छा लगता है

टोरी जावें लिबरल आवें।
भारतवासी खैर मनावें।
नहिं कोई लिबरल नहिं कोई टोरी।
जो परनाला सो ही मोरी।

ये शब्द हैं - पत्रकार, संपादक, कवि, बाल-साहित्यकार, भाषाविद्, निबंधकार के रूप में ख्याति अर्जित करने वाले - बालमुकुंद गुप्त के । अंग्रेजी शासन के दौरान भी जनता आशाएं लगाती थी कि इंग्लैंड में 'टोरी' पार्टी के बाद 'लिबरल पार्टी' का शासन आएगा तो कुछ राहत मिलेगी। लेकिन भारतीय जनता के लिए कोई परिवर्तन नहीं होता था। दोनों राजनीतिक पार्टियों का मूल चरित्र एक सा ही था। इस कविता की उम्र 100 साल से अधिक की हो गई है। इस दौरान भारत स्वतंत्र भी हो गया, लेकिन इस कविता की विषयवस्तु अप्रासंगिक नहीं हुई। अंग्रेजी शासन ने बंगभंग अथवा अन्य कार्यों के माध्यम से भारतीयों में धर्म, क्षेत्र, जाति, भाषा आदि के नाम पर फूट के बीज बिखरने का जो काम शुरु किया था अभी वह थमा नहीं है। राजद्रोह के माध्यम से शासन का विरोध करने वालों के दमन का वह सिलसिला भी नहीं थमा है जिससे आहत होकर बालमुकुंद गुप्त ने कहा था कि 'वर्तमान युग सिडिसन का युग है।'

कबीर की तरह की तबीयत के फक्कड़, हंसोड़, व्यंग्यकार और देहाती मुहावरों व उक्तियों की सुगंधमयी भाषा में बेबाक बात कहने वाले 'भारतमित्र' अखबार के संपादक बालमुकुंद गुप्त अंग्रेजी सरकार के दमन के खिलाफ आग उगलते थे। उनमें यह शक्ति व साहस आता था इस मान्यता से कि वे पत्रकार को जनता की आवाज मानते थे। इसी तरह के अनेक प्रयासों, संघर्षों और कुरबानियों की बदौलत लोकतंत्र में पत्रकारिता को चौथे स्तंभ के तौर पर मान्यता मिली थी। जो आज अपने कर्तव्य से भटककर पूंजी और सत्ता की दासी हो गई है। नीरा राडिया प्रकरण ने मीडिया की पोल खोल दी थी।

मीडिया आकार में तो पहले सो हजारों गुणा बढ़ा है, लेकिन इस पेशे में भारी गिरावट भी उतनी ही आई है और इसने अपनी विश्वसनीयता और साख गंवाई है। प्राकृतिक अथवा व्यवस्थागत संकटों में घिरी जनता बेशक त्राहिमाम त्राहिमाम करती रहे, लेकिन मीडिया को उसकी खबर नहीं है। ऐसे में बालमुकुंद को याद करना अच्छा लगता है।

बालमुकुंद के जन्म को 150 साल से अधिक हो गए हैं और 100 साल से अधिक उनके देहांत को। उनको याद करना उस पूरे भारतीय नवजागरण की टकसाल की यात्रा करना है, जिसमें आधुनिक भारत का नक्शा ढल रहा था। नवजागरण युग में भविष्य के भारत की शासन सत्ता के कर्तव्यों से लेकर उसकी भाषा-संस्कृति के सवालों पर गंभीर मंथन हो रहा था। मूल्यों, सरोकारों और विचारों रूपी उन रत्नों पर नजर डालना है, जो नवजागरण के क्षीर-मंथन से प्राप्त हुए थे। उसके परिप्रेक्ष्य में आज के समाज, व्यवस्था और सत्ता को देखना है कि हमारी राजनीति और सत्ता का चरित्र किस तरह का बन रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाने की प्रक्रिया में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया उनका स्वरूप किस तरह का बनता जा रहा है। इस प्रक्रिया में साहित्य और पत्रकारिता अपनी भूमिका किस तरह से अदा कर रहे हैं।

'शिवशंभु के चिट्ठे' लिखने वाले जब 'स्वर्ग में विचार सभा के अधिवेशन' में अपने नवजागरण कालीन मित्रों-

सहयोगियों के साथ विचार करते होंगे तो जरूर अपना माथा पीटते होंगे कि जिस स्वाभिमान और स्वतंत्र बौद्धिक विवेक अर्जित करने के लिए वे तत्कालीन शासन सत्ताओं से संघर्ष कर रहे थे। उसके पत्रकार-वंशजों ने अपनी रोटी के साथ मलाई मारने की होड़ में उसे गंगा में विसर्जित कर दिया है।

पत्रकारिता व मीडिया से संपादक नाम की संस्था समाप्तप्राय है। सरकारें और पूंजीशाह मीडिया का एजेंडा तय कर रही हैं। उसमें कार्यरत पत्तलकारों ने मीडिया की हैसियत 'सत्ता वचनम्' छापने तक सीमित कर दी है। पत्रकार के लिए जरूरी स्वतंत्र विवेक के अभाव में वे 'कंटेट राईटर' बनकर रह गए हैं।

बालमुकुंद सरीखे भारत के निर्माताओं ने औपनिवेशिक संस्कारों से संघर्ष के दौरान जो भारतीयता अर्जित की थी। उसके सार को त्यागकर शासन सत्ताओं के लिए भारतीयता एक कर्मकांड-निर्वाह का भव्य आयोजन बनकर रह गई है। पौराणिक व मिथकीय चरित्रों के महिमागान और अतीत के अंध मोह को भारतीयता का पर्याय मान लिया गया है।

शासन सत्ताएं और उसकी मीडिया साम्राज्यवादी पूंजी की चेरी है। उसकी सेवा के उपक्रमों व तर्क से ही इनकी गति है। इसीलिए तो सत्ता व सरकारों द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों व रिपोर्टों पर भरोसा है। अपनी आंखों, विवेक व जनजीवन उसका साक्ष्य नहीं है। विकास को आर्थिक आंकड़ों में खोजा जा रहा है। कितना धन किस योजना पर खर्च करने का तय किया जा रहा है यही विकास का पैमाना और पत्रकारिता का मुख्य विषय हो गया है। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ में लोक की आवाज निरंतर कम होती जा रही है। और धीरे-धीरे शासन सत्ताएं इस कदर जनता पर हावी हो गई हैं कि उनकी भावनाओं और प्रतिक्रियाओं की भी परवाह नहीं कर रही।

बालमुकुंद गुप्त हिंदी भाषा के स्वरूप निर्माण के स्तम्भ हैं। हिंदी भाषा के स्वरूप, भारत की राजकाज की भाषा और लिपि संबंधी समस्याओं पर स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान की बहसों के वे भागीदार रहे। वे आम बोलचाल की हिंदी के पक्षधर थे, पंडिताऊ और संस्कृतनिष्ठ आभिजात्य की हिंदी के नहीं। उनकी भाषा में सभी भाषाओं के वे शब्द मिलेंगे जो लोक व्यवहार का हिस्सा हैं।

बालमुकुंद गुप्त का ताल्लुक हरियाणा (गांव - गुड़ियानी, जिला - रेवाड़ी) से थे। हरियाणा को साहित्य की दृष्टि से उन्नत नहीं माना जाता। लेकिन हाली पानीपती और बालमुकुंद गुप्त जैसे साहित्यकार भी इसी धरती से उपजे हैं। ये युग की विडम्बना ही कही जाएगी कि यहां के साहित्यकारों और पाठकों ने अपने को हाली पानीपती और बालमुकुंद गुप्त के साथ इस तरह संबद्ध नहीं किया कि वे उनके साहित्यिक संस्कार का अनिवार्य हिस्सा बन जाए। अपनी इस समृद्ध जनपक्षीय साहित्यिक विरासत के सच्चे वारिस बनने में जो साहस व बौद्धिक मशक्कत की जरूरत थी उसके प्रति विशेष रुचि नहीं दिखाई। संघर्षों से बनाई गई विरासत के संस्कारों को ग्रहण करने के लिए आवश्यक संघर्ष के बिना यह प्राप्त भी नहीं की जा सकती थी।

बेशक उनके जन्म दिन या पुण्य तिथियों पर फूल मालाएं चढ़ाकर रस्म जरूर ही पूरी की जाती होगी। उनके नाम पर सरकारी योजनाओं के तहत कुछ संस्थाओं के नाम भी रखे ही होंगे, लेकिन उनके मूल्यों और सरोकारों को जनजीवन की सोच का हिस्सा बनाने और सार्वजनिक जीवन में उनकी स्थापना करने के लिए उनकी मूर्तियां और चित्र कहीं देखे नहीं गए। विश्वविद्यालयों में मिथकीय चरित्रों पर तो शोध-पीठ शोभायमान हैं, लेकिन हमारे जीते-जागते नायकों की ओर बेरुखी से सरकारों व प्रशासन में बैठे लोगों का अपनी विरासत के प्रति भी रवैया भी उदघाटित हो रहा है।

हम यहां सरकारों अथवा उसकी एजेंसियों की कार्यप्रणाली की आलोचना नहीं करना चाहते। हां जिस धरती पर ऐसी महान हस्तियों का जन्म हुआ उस पर उनके विचारों और सरोकारों को फलीभूत होते जरूर देखना चाहते हैं। चूंकि समस्त संसाधनों को खर्च करने की योजनाएं सरकारें बनाती हैं इसलिए उनसे अपेक्षा करना अनुचित नहीं लगता।

इस अंक में बालमुकुंद गुप्त के व्यक्तिगत जीवन और लेखन तथा उसके मूल्यांकन को समेटने की कोशिश की है। इसे पठनीय व रोचक बनाए रखने की ओर विशेष ध्यान दिया है। अंक से गुजरते हुए आपको इसका अहसास जरूर होगा।

इसमें हमने बालमुकुंद गुप्त रचनावली (संपादन, के. सी. यादव, हरियाणा इतिहास एवं सस्कृति अकादमी से प्रकाशित) तथा बालमुकुंद स्मारक ग्रंथ (बनारसीदास चतुर्वेदी व झाबरमल शर्मा संपादित) का भरपूर प्रयोग किया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

आशा है कि ये अंक आपको पसंद आयेगा।

सुभाष चंद्र

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

जीवन क्रम

1865 जन्म 14 नवम्बर को गुड़ियाणी, जिला रोहतक-अब रेवाड़ी में, पिता-ला. पूरणमल, माता-श्रीमती राधा देवी

1875 सरकारी प्राईमरी स्कूल गुड़ियाणी में दाखिल हुए। 20 नवम्बर को पिता व 26 नवम्बर दादा का देहांत

1880 जून में गांव के स्कूल से प्राईमरी परीक्षा पास की। पिता व दादा के देहांत के बाद स्कूल छोड़कर अपने चाचाओं के साथ पैतृक व्यवसाय दुकानदारी में लगे। दिसम्बर में श्रीमती अनारदेवी(रेवाड़ी) से विवाह हुआ।

1881 अवकाश के समय मुंशी वजीरमुहम्मद खां आदि गुरुजन की सलाह से पढ़ाई जारी रखी। मुंशी जी के संपर्क से उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार मौ. सितम जरीफ की अदबी संगत मिली।

1884 उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'अवध पंच' में बी.एम. शाद (बालमुकुन्द शाद) नाम से पहली रचना छपी।

1885 मथुरा से प्रकाशित पं. दीनदयालु शर्मा के पत्र 'मथुरा अखबार' (उर्दू) के लिए लेख लिखे और संपादन में सहयोग किया। अन्य पत्र-पत्रिकाओं 'अवध पंच', 'आजाद' (लाहौर) के लिए लेख व कविताएं लिखीं।

1886 दिल्ली स्कूल के छात्रावास में रहकर मई में मिडिल की परीक्षा दी। सारे दिल्ली डिविजन में प्रथम रहे। सितम्बर में चुनार (यूपी) से निकलने वाले 'अखबारे चुनार (उर्दू) के सम्पादक बने।

1887 पं. दीनदयालु शर्मा द्वारा हरिद्वार में 'भारत धर्म महामंडल की स्थापना के अवसर पर'अखबारे चुनार' के सम्पादक के तौर पर शिरकत।

1888 दिसम्बर में लाहौर के प्रसिद्ध पत्र 'कोहेनूर' (उर्दू) के सम्पादक बने। मेरठ में पं. गौरीदत्त शर्मा के आग्रह पर पं. दीनदयालु शर्मा और अन्य साथियों के साथ हिन्दी में लिखने का संकल्प।

1889 फरवरी में भारत धर्म महामंडल के दूसरे अधिवेशन (वृंदावन) के अवसर पर 'कोहेनूर' लाहौर के सम्पादक के तौर पर शामिल हुए। पं. मदनमोहन मालवीय से मुलाकात हुई। अपने पत्र 'हिन्दोस्थान कालाकांकर' में आने का निमत्रण।
'कोहेनूर' पत्र छोड़ा। लगभग तीन महीने अपने गांव में रहे। हिन्दोस्थान कालाकांकर के संवाददाता रहे।गांव से अपने रोहतक जिले के समाचार भेजे। दिसम्बर में 'हिन्दोस्थान' (कालाकांकर) के सम्पादक मंडल में शामिल हुए। हिन्दी में पहली कविता 'भैंस का स्वर्ग' लिखी।

1891 जनवरी में अस्वस्थ होने के कारण 'हिन्दोस्थान' से छुट्टी लेकर गांव आ गए। 'गवर्नमेंट के खिलाफ सख्त लिखने' के कारण फरवरी 'हिन्दोस्थान' छोड़ना पड़ा।

1892 गांव में रहकर संस्कृत, अरबी और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बढ़ाया। मडेल भगिनी का बंगला से हिन्दी में और प्रताप नारायण मिश्र के 'सती प्रताप' नाटक का हिन्दी से उर्दू में अनुवाद किया। 'राजा राममोहन राय की जीवनी' का बंगला से उर्दू में अनुवाद किया।

1893 जनवरी में 'हिन्दी बंगवासी' के निमंत्रण पर पहली बार कलकत्ता पहुंचे। 'हिन्दी बंगवासी' में सह-सम्पादक बने।

1896 हरिदास' नामक प्रसिद्ध बंगला पुस्तक के आधार पर हिन्दी में पुस्तक लिखी।

1898 सितम्बर में 'रत्नावली' का एक महीने में हिन्दी अनुवाद किया।'हिन्दी बंगवासी' छोड़ा। दिसम्बर में'हरिदास' का उर्दू में अनुवाद छपा।

1899 16 जनवरी को 'भारतमित्र,कलकत्ता के सम्पादक बने।

1900 27 जनवरी को अलबर्ट हाल, कलकत्ता में गांधी जी को पहली और अंतिम बार देखा। दक्षिणी अफ्रीका पर उनका भाषण सुना।

1901 कलकत्ता में विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय की स्थापना में सहयोग।

1903 लार्ड कर्जन के दिल्ली दरबार में 'भारतमित्र' के प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुए। दरबार के विरोध में खूब लिखा।

1904 कलकत्ता हाईकोर्ट में आदरी 'स्पेशल जुरर' मनोनीत हुए।

1905 'स्फुट कविता' (कविताओं का संग्रह) पुस्तक प्रकाशित हुई। सावित्री कन्या पाठशाला में सहयोग। 16 अक्तूबर को बंग-भंग के विरोध में बंगाल भर में मातम दिवस में जोश से शामिल हुए।

1906 बंग-भंग के विरोध में दूसरी सालगिरह पर पूरे बंगाल में 'मातम दिवस'। बंग-भग के खिलाफ लिखते रहे। 26 दिसम्बर को कांग्रेस के अधिवेशन(बम्बई) शामिल हुए

1907 अगस्त में बीमार पड़े। 12 सितम्बर तबीयत ज्यादा बिगड़ने पर गांव के लिए ट्रेन से रवाना हुए। 14 सितम्बर को दिल्ली पहुंचे। लक्ष्मीनारायण की नई बनी धर्मशाला में ठहर कर इलाज कराया, पर हालत बिगड़ती ही गई। 18 सितम्बर दिल्ली में (लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला में) सांय 5 बजे, देहांत हो गया। दिल्ली में ही 'निगमबोध घाट' पर दाह-संस्कार हुआ।

कुण्डलियां

न्यारो थो वो छोरटो !

□ **सत्यवीर नाहड़िया**

(बालकुमुंद जी के छात्र जीवन में स्कूल की छत्त पर ऊंट चढ़ाने की बाल सुलभ शरारत का एक रोचक किस्सा चर्चित है। साहित्यकार सत्यवीर नाहड़िया ने 'देस हरियाणा' के इस विशेषांक हेतु अहीरवाटी बोली में रचा है। एक दिन मुंशी जी किसी कार्य से स्कूल से गांव में कुछ समय के लिए चले गए किंतु स्कूल आते ही क्या हुआ - पेश हैं कुछ कुण्डलियां)

1

न्यारो थो वो छोरटो, न्यारी उसकी बात!
भोत घणो हुसियार था, पढ़ो- गुणो दिन-रात!
पढ़ो-गुणो दिन-रात, साथ म्हं करी सरासत!
घणो कसूत्तो चंट, पढ़ाई म्हं थी महारत!
इक दिन की सै बात, स्कूल को किस्सो प्यारो!
मुंसी जी थो भाह् र हाल यो सुणियो न्यारो! !

2

आयो मुंसी स्कूल म्हं, टाब्बर चुप तत्काल!
ऊंट खड़ो थो छांत पै, हाल देख बेहाल!
हाल देख बेहाल, हुयो किस तरिया रास्सो!
सुण रै बालमुकुंद, हुयो किस ढ़ाळ तमास्सो?
कर मेरे कुछ लाल, ठाण यो चोक्खो पायो!
गयी खोपडी-घूम, छांत पै कित कै आयो??

3

छोह् रो बालमुकुंद थो, भोत घणो हुसियार!
बोल्यो-हे गुरुवर सुणो, देवां तुरत उतार!
देवां तुरत उतार, टांग बी नहीं अड़ैगी?
कितनी मिलै इनाम, मार तै नहीं पड़ैगी!
भरो जोस-बिसवास, दिखावै न्यारो टोह् रो!
जोड़े दोन्नूं हाथ, इजाजत मांगै छोह् रो! !

4

तारो तारो तावळी, मान्यी सारी बात!
गुड़ की भेल्ली लाय द्यूं, खाओ थम दिन-रात!
खाओ थम दिन-राम, कदे ना करूं पिटाई!
बिना बैंत कै रोज, कराऊं खूब पढ़ाई!
मर् यो देख कै हाल, और थम मत इब मारो!
थर-थर कांपै गात, तावळी इसने तारो! !

5

आओ सारे तावळी, बोल्यो बालमुकुंद!
ऊंट तारणो ध्यान तै, नयो रचां ज्यूं छंद!
नयो रचां ज्यूं छंद, बंद इब करो पढ़ाई!
रोल निभाओ फेर, पूळियां जावैं ल्याई!
करो चिणाई ठीक, ढ़ाळ म्हं पूळी लाओ!
सांट्टी गेरो फेर, कहो मिल आओ आओ! !

6

ल्याये पूळी ठाय कै, सारे भागम-भाग!
चिणी तुरत हे छोर-सी, गयी छात कै लाग!
गयी छात कै लाग, फेर सांट्टी की मारी!
तुरत टोलड़ो तार, कसूत्ती किलकी मार!
अटके थे जो सांस, ईब मुंशी के आये!
धर दी पूळी फेर, ठाय वै जित तै ल्याये! !

7

सारी थारी माफ से, एक बताओ बात!
किस तरियां बैरी चढ़ो, इतनो बड्डो गात!
इतनो बड्डो गात, बँधो थो निम्मां निच्चै!
बैठ्यो पायो छात, नैन खोल्लै अर मिच्चै!
तार्यो झट दे खूब, फौज सै थारी न्यारी!
ठीक बताओ बात, सरारत सारी थारी??

8

सुणो चढ़ायो ध्यान तै, सांट्टी ऊंट-पसंद!
ल्याये पूरी पोट हम, बोल्यो बालमुकुंद!
बोल्यो बालमुकुंद, फौज या लाग्यी सारी!
पूळी चिणदी फेर, छांत पै सांट्टी न्यारी!
तीन मिनट म्हं ऊंट, खड़ो न्यूं छत पै पायो!
तार्यो इब जिस ढ़ाळ, कतीं न्यूं सुणो चढ़ायो! !

बालमुकुंद गुप्त
नवजागरण के प्रतिबद्ध पत्रकार

हिन्दीसाहित्य के इतिहास से जो थोड़ा बहुत परिचित है, उसने बाबू बालमुकुंद गुप्त का नाम जरूर सुना होगा। आधुनिक हिन्दी भाषा व साहित्य के निर्माता और हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता के आरंभिक उन्नायकों में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्नीसवीं शती के उत्तराद्र्ध और बीसवीं शती के पूर्वाद्र्ध में हिन्दुस्तान को राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक क्षेत्र में बड़ी दुर्लभ प्रतिभाएं दी हैं और एक से एक निराली। बाबू बालमुकुंद गुपत उन्हीं में से एक थे। हिन्दी भाषा, साहित्य और सबसे ऊपर राष्ट्रीय आंदोलन व सामाजिक नवजागरण में उनके ऐतिहासिक योगदान के महत्व को ठीक-ठीक जानना आज कठिन अवश्य है। हालांकि इसकी जरूरत आज सबसे ज्यादा है।

बाबू बालमुकुंद गुप्त हरियाणा में ही जन्में थे। हालांकि हरियाणा निवासी और यहां तक कि यहां के बुद्धिजीवी समुदाय उनके नाम से न के बराबर ही परिचित हैं। गुप्त जी का जन्म रोहतक के पास गुडियानी नाम के एक गांव (जो संभवत: बेरी-नाहड़-कोसली के पास) में सन् 1865 ई. में हुआ था। यह वह समय है जब 1857 के गदर को कुचलने के बाद हिन्दुस्तान में शासन-सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से निकल कर रानी विक्टोरिया और ब्रिटिश-साम्राज्य के हाथों में सीधे पहुंच चुकी थी और साम्राज्यवाद का शिकंजा हिन्दुस्तान की भूमि और जनता की जिंदगी पर भलीभांति कस चुका था। यह वही समय है जब नई अंग्रेजी-शिक्षा और रेल-डाक-तार-संचार व्यवस्था का प्रवेश पहली बार इस देश में हो रहा था। इन नए परिवर्तनों ने भौगोलिक और सामाजिक रूप से छिन्न-भिन्न हिन्दुस्तान को राजनीतिक एकता में बांधने की भूमिका बनाई। हां, अंग्रेजों के न चाहते हुए भी। शिक्षा का समाजीकरण होने से व्यापक शिक्षित मध्यवर्ग की रचना हुई। जिसके द्वारा एक ओर नवोदित राष्ट्रवाद की आधारशिला रखी गई और दूसरी ओर सामाजिक नवजागरण का अभियान शुरू किया गया। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, विवेकवाद, उदार-मानवतावाद, समता, न्याय के आदर्शों की साख इसी दौर में पहले-पहल बनी। प्रेस-पत्रिकारिता इस नवजात राष्ट्रीय चेतना और आधुनिक समाजिक चेतना के प्रचार-प्रसार के महत्वपूर्ण औजार बने। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने इसी पृष्ठभूमि में जन्म लिया था। लेकिन गुप्त जी के जन्म से लेकर होश संभालने तक के समय के राष्ट्रवाद पर औपनिवेशक दास मनोवृति का गहरा रंग चढ़ा था। राष्ट्रीय चेतना राज्य भक्ति के चौखटे के भीतर ही व्यक्ति हो पाती थी। बाबू बालमुकुंद गुप्त की यात्रा इस दुर्बल राष्ट्रवाद के दिनों से शुरू होकर तिलक युग के उस राष्ट्रवाद के दिनों तक की यात्रा है। 1907 में उनका निधन हुआ। उन्होंने अपने निधन से पहले अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह के एक प्रचंड ज्वालामुखी को फूटता देखा था। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को एक व्यापक जन-आंदोलन में बदलते देखा था। बंग-भंग (1905) के खिलाफ हुए व्यापक प्रतिरोध के वे साक्षी थे। उनकी पत्रकारिता और उनके साहित्य में इन आंदोलनों की स्पष्ट छाप दिखाई देती है, लेकिन सबसे अचरजकारी तथ्य यह है कि दुर्बल राष्ट्रवाद के जमाने में भी बालमुकुंद गुप्त राष्ट्रीय मसलों पर बड़े दो-टूक तरीके से राज्य-भक्त बुद्धिजीवियों से अलग खड़े होते हैं।

1885 में आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चंद्र की मृत्यु से पहले बालमुकुंद गुप्त ने लिखना शुरू कर दिया था। इसी साल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। 1886-87 में वे मिर्जापुर के एक कस्बे से निकलने वाले उर्दू अखबार 'अखबारे चुनार' के सम्पादन में जुड़ गए थे। तब तक उर्दू पत्रकार के रूप में उनकी 'इमेज' भली-भांति बन चुकी थी। 1888-89 में वे लाहौर से प्रकाशित होने वाले प्राख्यात अखबार 'कोहेनूर' के सम्पादन से जुड़ गए, जिसे मुंशी हरसुखराय निकालते थे। बालमुकुंद गुप्त ने स्वयं इस अखबार के बारे में लिखा है, 'एक समय वह (कोहेनूर) बड़ा नामी व इज्जत का कागज था।' गुप्त जी के समय में तीन महीने यह पत्र दैनिक भी हुआ। लेकिन पंजाब के रजवाड़ों के आश्रय पर निर्भर होते जाने और कोई स्पष्ट, सुसंगत नीति न होने के कारण उसस मय तक 'कोहेनूर' के सौभाग्य की जड़ में दीमक लग चुकी थी।' 1889 में गुप्त जीकी मुलाकात मदन मोहन मालवीय से हुई और वे इन्हें कालाकांकर से आए जहां के 'हिन्दी हितैषी जमींदार' राजा रामपाल सिंह हिन्दोस्तान नामक हिन्दी अखबार निकाल रहे थे। मालवीय जी स्वयं इसके सम्पादक थे। बालमुकुंद गुप्त ने दो वर्ष

तक इस अखबार में काम किया। गुप्त जी का 'हिन्दोस्तान' अखबार में आना दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक तो इसके साथ वे हिन्दी-पत्रकारिता से हमेशा के लिए जुड़ गए और हिन्दी लेखक के रूप में उनकी पहचान बनी। दूसरे, इसी अखबार में उनका सम्पर्क भारतेन्दू-मंडल के यशस्वी और अत्यंत प्रतिभाशाली रचनाकार प्रताप नारायण मिश्र के साथ हुआ। गुप्त जी के साहित्य का अध्ययन करने से यह बहुत साफ हो जाता है कि उनके विचारों और उनकी शैली पर प्रताप नारायण मिश्र का गहरा असर है। फक्कड़पन, मस्ती, जिंदादिली, मकईपन और दिल्लगी की वही रंगत बालमुकुंद गुप्त का साहित्य भी लिए हुए है, जो प्रताप नारायण मिश्र की शैली का अटूट अंग है। खैर। अंतत: बालमुकुंद गुप्त को अखबार 'हिन्दोस्तान' बहुत जल्द ही छोडऩा पड़ा। मुख्य कारण यह था कि अखबार के मालिक राजा रामपाल सिंह को लगा कि गुप्त जी की कलम उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बना सकती है। इसी काल में गुप्त जी ने अपनी पहली हिन्दी कविता 'भैंस का स्वर्ग' लिखी (जिसके कुछ शुरुआती हिस्से हम नमूने के तौर पर यहां छाप रहे हैं। इसे देखकर लगता है कि वाकई बाल मुकुंद गुपत हरियाणा में ही जन्मे थे। जिस खूबी से और जिस हल्के-फूल्के विनोदपूर्ण अंदाज में गुप्त जी ने भैंस के सुखद-स्वर्ग को 'फैंटेसी' में बांधा है, उससे उनके खिलाड़ीपन, जिंदादिली और लोकोन्मुख दृष्टिकोण का किंचित परिचय पाठकों को जरूर मिलेगा)।

'हिन्दोस्तान' अखबार को छोड़ने के बाद 1892 में बालमुकुंद गुप्त कलकत्ता आ गए और 'हिन्दी बंगवासी' के सहकारी सम्पादक बन गए। 'हिन्दी बंगवासी' ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में एक निश्चित भूमिका निभाई थी। इसके सम्पादक अमृतलाल चक्रवर्ती 'हिन्दोस्तान' के भी सम्पादक रह चुके थे और गुप्त जी से पूर्व-परिचित थे। 'हिन्दी बंगवासी' उस समय बिहार और यूपी (उस समय युक्तप्रांत) में सबसे ज्यादा लोकप्रिय अखबार सिद्ध हुआ। इस पर अंग्रेजों ने राजद्रोह का मकद्दमा भी चलाया था। भारतेंदू युग के एक कवि-आलोचक चौ. बदरीनारायण ने कहा था 'हिन्दी बंगवासी भाषा गढऩे की टकसाल है। ऐसी टकसाल जिसका कोई भी सिक्का बालमुकुंद गुप्त की छाप के बिना नहीं निकलता।' गुप्त जी छह वर्ष तक इस अखबार से जुड़े रहे और उसके बाद 1899 में 'भारत मित्र' में आ गए। 'भारत मित्र' कलकत्ता से ही निकलने वाला एक अत्यंत लोकप्रिय पत्र था। बालमुकुंदगुप्त 1908 में अपने निधन तक इसके सम्पादक रहे। लगभग साढ़े 8 साल तक उनकी प्रखर प्रतिभा, कला और दृढ़ राष्ट्रवादी चेतना का मार्गदर्शन इस अखबार को मिला। इस काल में यह अखबार राष्ट्रीयतावादी विचारों का विश्वसनीय और संघर्ष संवाहक बना। अपनी इसी साम्राज्यवाद विरोध चेतना और जन पक्षधरता के कारण ही 'भारत मित्र' ने बंगाल के दो टुकड़े करने की लार्ड कर्जन की दुष्टतापूर्ण कोशिशों का पर्दाफाश किया और घर-घर इसके खिलाफ अलख जगाई। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि बंगभंग के विरुद्ध 1905 के व्यापक जनसंग्राम की धार सीधे उन साम्राज्यवादी मनसूबों के विरुद्ध थी। जिनके तहत अंग्रेज राष्ट्रीय आंदोलन को साम्प्रदायिक आधारों पर विभाजित करना चाहते थे। भारतीय जनता ने इस कोशिश को निर्णायक रूप में ठुकरा दिया था।

बालमुकुंद गुप्त के विचारों का एक पहलू यह भी था कि उनका राष्ट्रवाद जहां अंग्रेजों के खिलाफ बड़ा स्पष्ट रवैया रखता था, वहीं तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन की हिन्दू-पुनरूत्थानवादी धाराओं के प्रति उनके रुख में एक नरमी थी। उस समय के आर्य समाजी और सनातनियों के विवाद में भी प्राय: वे सनातनियों के साथ हैं, लेकिन उनकी साम्राज्यविरोधी चेतना उन्हें लगातार हिन्दू-पुनुरुत्थानवाद के संकीर्ण दायरे से बाहर रखती है। यहां तक कि बार-बार वे दोनों तरह की साम्प्रदायिकता और खासकर अंग्रेज-परस्त साम्प्रदायवादी बुद्धिजीवियों को अपने तीक्ष्ण व्यंग्य का निशाना बनाते हैं और दृढ़ राष्ट्रीय एकता की वकालत करते हैं। वे कट्टरपंथी, पुरातनपंथी, कूपमंडूकतावादी मान-मूल्यों का उपहास उड़ाते हैं और आधुनिक उदार, मानवतावादी, तर्क सम्मत मान्यताओं का पोषण करते हैं। वे यह भी दिखाते हैं कि इन नए विचारों ने पुराने कठमुल्लापन को कितनी हास्यास्पद स्थिति में पहुंचा दिया है। दूसरी ओर वे अंग्रेजपरस्त और अंग्रेजियत के अलम्बरदार उन तथाकथित 'समाजसेवियों' की कलई खोलते हैं जो प्रभु वर्ग के प्रति एक पूजाभाव रखते हैं और दिमागी गुलामी में कैद हैं।

बाबू बालमुकुंद गुप्त ने बहुत कुछ लिखा है। बहुत कुछ ऐसा है जो अभी भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है और आम हिन्दी पाठक की आंखों में ओझल है। वे राष्ट्रीय नवजागरण के ऐतिहासिक अभियान के कर्मठ और प्रतिबद्ध पत्रकार थे जिन्होंने सोद्देश्य पत्रकारिता की कठिन राह बनाने के लिए आजीवन संघर्ष किया। आज के सेठाश्रयी और तथाकथित 'तटस्थ' पत्रकार उनके इस पक्ष से बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनकी राजनैतिक चेतना इतनी प्रखर थी कि वे यह देख पाये कि ब्रिटेन के कंजरवेटिव (टोरी) और तथाकथित 'लिबरल' शासक एक एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। कम से कम हिन्दुस्तान जैसे उपनिवेश के लिए दोनों ही ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को यहां साधना चाहते हैं। उनमें शैलीगत भेद से ज्यादा कोई अंतर नहीं है।

सिर्फ 'कान किधर से पकड़ा जाए' इस पर मतभेद हो सकता है। हमारे पाइक आगे के पृष्ठों पर प्रकाशित गुप्त जी की कविता 'पॉलिटीकल होली' से इस सधी हुई राजनैतिक अन्तदृष्टि का आसानी से अनुमान लगा सकेंगे। यह कविता 1905 में प्रकाशित हुई जब इंग्लैंड में टोरी दल हारा और लिबरल जीत गए। बंगभंग के कुख्यात इंजीनियर लार्ड कर्जन के जाने से हिन्दुस्तान के 'उदार' भद्रलोक के बुद्धिजीवी इतने खुश हुए कि उन्होंने मार्ली और मिण्टो जैसे लिबरलों से बहुत सी उम्मीदें बांध ली। ठीक उस समय गुप्त जी लिख रहे थे 'जैसे मिण्टो, जैसे कर्जन' बाद का इतिहास उनके इस कथन की पुष्टि करता है।

बाबू बालमुकुंद गुप्त के विपुल साहित्य में राजनीति, समाज नीति, भाषा, शिक्षा, कानून, इतिहास, साहित्य सभी के बारे में अनेक लेख और टिप्पणियां हैं। उन्होंने अनेक जीवन वृत्त भी लिखे, जिनमें से बहुतेरे हिन्दी उर्दू के तत्कालीन और पुराने संघर्षशील व प्रतिभाशाली साहित्यकारों-गद्यकारों के थे और बहुत से पश्चिम के आधुनिक व स्वतंत्रता प्रेमी बुद्धिजीवियों के इन जीवन-वृत्तों के द्वारा बाबू बालमुकुंद गुप्त ने राष्ट्रीय आंदोलन को बल पहुंचाने वाली परम्पराओं का हिन्दी पाठकों को उपलब्ध कराया। भाषा और लिपि की समस्या पर भी उन्होंने बहुत कुछ लिख। महाबीर प्रसाद द्विवेद्धी से, जो 'सरस्वती' पत्रिका के नामी गिरामी सम्पादक थे और हिन्दी भाषा के स्वरूप के बारे में जिनके अपने प्रबल आग्रह थे, गुप्त जी का लंबा विवाद चला। यह बहस (जो कभी-कभी अप्रिय स्तर भी छूने लगती थी) एक बौद्धिक-विवाद का अच्छा-खासा 'ऐतिहासिक' उदाहरण बन गई है। गुप्त जी व्याकरण की निरकुंश सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे और मानते थे कि भाषा और उसके नियम अंततः जनता ही बनाती है।

गुप्त जी ने अनेक कृतियों की समालोचना भी लिखी और 18वीं सदी की समूची हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता का अपने जीवनकाल तक का तथ्यपरक इतिहास भी हिन्दी पाठकों के सामने रखा। लेकिन उनके गद्य-लेखन की सबसे लासानी और यादगार चीज 'शिवशम्भू के चिट्ठे और खत' हैं। 'शिवशम्भू का चिट्ठा' एक ऐसा स्तंभ था, जो 'भारत मित्र' की लोकप्रियता का एक मजबूत आधार बना। शिवशम्भु एक भंगेड़ी ब्राह्मण है जो जब तब काशी के तट पर अपना सिलबट्टा खडक़ाता है, भंग छानता है और भंग की तरंग में चिट्ठा लिखता है। इस चिट्ठे के निशाने कभी कर्जन बनते हैं और कभी मिण्टो तो कभी मार्लीसाहब। सरसैय्यद अहमद जैसे उदार मुस्लिम समाज सुधारकों की असंगतियां भी शिव शम्भु की नजर से ओझल नहीं होतीं। भंग की तरंग में शिवशम्भु सिर्फ जी भर कहने की छूट लेता है। फब्तियां कसना, तीक्ष्ण व्यंग्य-बाण चलाना, हंसी-दिल्लगी करना और कुल मिलाकर मस्ती ही मस्ती में साम्राज्यवाद की कुचालों और दमनपूर्ण नीतियों को उधेड़ कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करना शिवशम्भु का काम है। असल में ये चिट्ठे ब्रिटिश राज की बुनियादी रूप से जनशत्रु और ऊपर से 'प्रजावत्सल' पाखंडपूर्ण व्यवस्था के कच्चे चिट्ठे हैं।

बहुत कम लोग जानते हैं कि बालमुकुंद गुप्त ने कविताएं भी लिखी हैं और अच्छी खासी तादाद में। उन की कविताएं भी उनके गद्य की तरह बहुरंगी है। जहां एक और उन्होंने पुरानी चाल की कुछ धार्मिक स्तुतियां लिखी हैं। वहीं बिल्कुल नई से नई ज्वलंत विषयवस्तु और आधुनिक शैलियों का भी उपयोग किया है। उनकी 'स्तुतियों' में भी अधिकतर अन्याय और उत्पीड़न से बाहर आने की व्याकुलता और उसका मुकाबला करने के लिए ताकत हासिल करने की इच्छा ही व्यक्त हुई है। देशदशा का करूण चित्र उनमें है। किसानों के कठोर संघर्ष की गाथा और उनकी आर्थिक दुरावस्था के चित्र उनमें हैं। कुछ कविताएं ऐसी हैं जो परम्परागत हिन्दुस्तानी समाज में आधुनिकता के नए प्रवेश के कारण उपस्थित ऐतिहासिक ड्रामे को हमारे सामने रखती है। 'रेलगाड़ी', 'सभ्य बीबी की चिट्ठी', 'कलियुग के हनुमान', 'पतिव्रता', 'सभ्य', 'होली', 'टेसू', 'जोगीड़ा', 'देशोद्वार की तान' जैसी कविताएं या तो नई आधुनिक सभ्यता के प्रति एक कौतुकपूर्ण दृष्टि से लिखी गई हैं या इस नई आधुनिकता और जड़ मध्य-युगीनता के बीच पनपने वाले पाखंडपूर्ण गठबंधन का उपहास उड़ाती है। सबसे अधिक वे नई शिक्षा के औपनिवेशक मंसूबो का खोलकर हमाने साने रखनती है और ढुलमुल अंग्रेजपरसत बुद्धिजीवियों के सामने खरी राष्ट्रीय चेतना का आदर्श रखती हैं। समाजसुधार की व्याकुलता भी इनमें मौजूद है। ये कविताएं ब्रजभाषा और हिन्दी खड़ी बोली दोनों में लिखी गई हैं। अनेक तरह के छंद जो अधिकतर लोकजीवन में प्रचलित हैं इनमें प्रयुक्त हुए हैं। कहने का तरीका, मुहावरा, भाषा का मिजाज सब पर लोकशैली की गहरी छाप है। जोगीड़ां और टेसू या ऐसी ही अनेक शैलियों का प्रयोग गुप्त जी ने बहुत ही कारगर ढंग से कविताओं में किया है। इस अर्थ में वे भारतेंदु हरिश्चंद्र की अद्भुत प्रयोगशील परम्परा के सही मायने में उत्तराधिकारी हैं। यहां तक कि बच्चों के लिए बड़ी ज्ञानवर्धक सीधी-सीधी और हल्की-फुल्की कविताएं भी उन्होंने लिखी हैं। सादगी, जीवन्तता, ताजगी, वचन-वक्रता, व्यंग्य, प्रग्लभता और मजाक उनके काव्य बल्कि उनके सम्पूर्ण साहित्य ही के अविभाज्य अंग हैं।

साभार-प्रयास, सितम्बर-दिसम्बर 83

कोई लड़का इस लियाकत का नहीं देखा

(गुड़ियानी मदरसे के तत्कालीन प्रधानाध्यापक मुंशी वजीर मुहम्मद खां व एसिस्टेंट इंस्पैक्टर लाला बलदेव सहाय ने बालमुकुंद गुप्त के बारे में जो कहा था वह बहुत ही रोचक है। जिससे उनकी प्रतिभा का अनुमान सहज ही हो जाता है।')

सूबा पंजाब में दस हजार लड़कों का इम्तिहान अब तक ले चुका हूं, कोई लड़का इस जहानत और लियाकत का नहीं देखा। अगर आगे तालीम न दिलाओगे, तो एक हकतलफी करोगे।'

ये शब्द मदरसे के एसिस्टेंट इंस्पैक्टर लाला बलदेव सहाय के हैं, जो मुकाम कोसली (रोहतक-जिला) में इम्तिहान लेने के लिए आए हुए थे। उस समय के नियमानुसार एक मदरसे में कई स्कूलों के छात्र नियत तिथि पर एकत्र हो जाते थे। इंस्पैक्टर वहीं पहुंच कर सब लड़कों का इम्तिहान ले लिया करता। गुडियानी के मदरसे के लड़के भी अपने मुर्दारिस अव्वल मुंशी वजीर मुहम्मद खां साहब के साथ इम्तिहान देने के लिए कोसली आ गए थे। उनमें 5वीं जमाअत में पढ़ने वाला एक लड़का बालमुकुंद था। उस समय उसकी उम्र 14 वर्ष के करीब थी। पुत्र का स्नेह उसके पिता लाला पूरनमल को भी साथ ही कोसली ले गया। यथास्थान, यथासमय परीक्षा आरंभ हुई। इंस्पैक्टर साहब ने एक मुर्दारिस को हुक्म दिया कि 5वीं जमाअत को अमुक सवाल लिखवाया जाए। 5वीं जमाअत के जितने स्कूलों के लड़के थे, उनमें किसी से भी यह सवाल नहीं बन सका, किंतु बालमुकुंद का उत्तर सही पाया गया। इस पर इंस्पेक्टर साहब को संदेह होना स्वाभाविक था। इसलिए वही हिसाब का सवाल फिर हल करने के लिए दूसरी बार मुर्दारिसों को दिया गया, परन्तु वे भी सही उत्तर न ला सके। अब तो इंस्पैक्टर साहब ने बालमुकुंद को बुलाया और नाम-धाम के साथ सवाल का तरीका पूछा। उत्तर सही मिल जाने से इंस्पेक्टर का संदेह दूर हुआ। आपने उसी समय गुड़ियानी

अपने ढंग के ही

□ **पं. नरदेव शास्त्री**

सन् 1905 में एक दिन कलकत्ते के कालेज स्कवेयर में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का भाषण होने वाला था। जनता की अपार भीड़ थी। स्कवेयर तो भर ही गया था, स्कवेयर से बाहर भी दूर तक लोग खड़े थे। हम लोग प्रतीक्षा में थे कि कब सुरेन्द्रनाथ आते हैं और कब भाषण देते हैं। जनता उतावली हो उठी थी। धक्का-मुक्की में कहीं का कहीं पहुंच गया। ऐसी जगह पहुंचा कि कहीं हिलने को जगह नहीं थी, न मैं बाहर ही निकल सकता था, न आगे बढ़ सकता था। इतने में पीछे से एक और हल्ला आया। मेरे सामने एक बंगाली महाशय थे, पीछे एक हिन्दुस्तानी व्यक्ति थे। जब मेरा धक्का बंगाली महाशय को लगा तो वे चिल्ला उठे—'तुम हिन्दुस्तानी लोग बड़ा गोलमाल करता है।' मैंने कहा—महाशय, हमारा क्या वश है, पीछे से हल्ला आता है, तब हम विवश हो जाते हैं, क्या करें?

पिछले सज्जन ने कहा—जरा संभल कर रहिए। आप इन बंगाली महाशय को नहीं जानते क्या? यह 'डान' नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक-पत्रिका के सम्पादक हैं।

मैंने कहा कि मैं नहीं जानता। फिर मैंने बहुत ध्यान रखा कि मेरे कारण 'डान' सम्पादक को कोई कष्ट न हो। मेरे पीछे जो महाशय थे, उनसे मैंने उनका परिचय पूछा।

उत्तर मिला-'मेरा नाम बालमुकुंद गुप्त है।' नाम सुनते ही मैं चौंक उठा, मैं इस नाम को जानता था, ये 'भारतमित्र' के सम्पादक थे। मैं प्रायः 'भारतमित्र' में लिखा करता था। जब मैंने अपना नाम बतलाया, तब वे भी प्रसन्न हुए और फिर हम लोगों की बातें प्रारंभ हुई।

मैंने उनसे कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये बंगाली लोग दूसरों को तुच्छ समझते हैं, देखिये 'डान' के सम्पादक हमसे किस तरह बोले। आप भी तो यहां एक प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्र के सम्पादक हैं। आप सर्वसाधारण लोगों की तरह जनता में धक्के खा रहे हैं। सम्पादकों के लिए व्यास-पीठ के पास प्रबंध होगा ही, वहां क्यों नहीं पहुंचे, आराम से रहते। गुप्तजी ने कहा - 'नहीं, आराम की जरूरत नहीं। हम सम्पादकों का संबंध तो सर्वसाधारण से ही रहना चाहिए। परन्तु हां बंगाल में प्रांतीयता की बड़ी बीमारी है। 'डान' सम्पादक के शब्दों में इसकी दुर्गंध मौजूद है।

मदरसे के मुर्दरिस साहब को बुलाया और कहा-बालमुकुंद आपके मदरसे में पढ़ता है, वह तो इम्तिहान में फेल हो गया। सरल-हृदय मुर्दरिस ने उत्तर दिया-'लड़का तो बहुत होशियार है, लेकिन इम्तिहान में फेल हो गया तो उसकी तकदीर।'

इस उत्तर को सुनकर एसिस्टेंट इंस्पैक्टर साहब मुस्कुराए और पूछा-क्या इस लड़के के साथ कोई घर का आदमी आया है? मुर्दरिस साहब को मालूम ही था, इसीलिए उन्होंने कहा-'हां, खुद इसके वालिद आए हुए हैं।' इंस्पैक्टर साहब ने उनको बुलाने के लिए कहा। आदमी दौड़कर लाला पूरनमल जी के पास पहुंचा और उन्हें अपने साथ लिवा लाया। उस समय बालमुकुंद की पढ़ाई आगे जारी रखने का अनुरोध करते हुए इंस्पैक्टर साहब ने लाला पूरनमल के प्रति जो शब्द कहे थे, वे इस प्रकरण के आरंभ में लिखे गए हैं।

गुडियानी मदरसे के तत्कालीन प्रधानाध्यापक मुंशी वजीर मुहम्मद खां साहिब अपने बयान में कहते हैं:-

'सगरसिनी (बाल्यावस्था) की हालत में बालमुकुंद मेरे पास पढ़ने लगा। उसी वक्त से आसारे बुलन्द इकबाली के (बड़े भाग्यशाली चिन्ह) नुमाया (प्रकट) होने लगे। वह तबीयत का जकी(चेतनशील) था और उसी वक्त से गौरो-फिक्र, सफाई वदर्जे कमाल था। तहसील उलूम (विद्योपार्जन) में बहुत बढ़कर था, कभी फेल न हुआ। पांच साल में पांच जमाअत प्रायमरी स्कूल फारसी बत्तदरीज (उत्तरोत्तर) हासिल की और इस्तदाद (विद्या में उच्चतम योग्यता) इल्मी ज्यादा पैदा कर ली। यह बात गौर करने के काबिल है कि इस कस्बे में दो फरीक एक अफगान जो मुलाजिमत पेशा और तिजारत अस्पान (घोड़ों का व्यापार) में बढ़कर हैं, मुसलमान हैं, दूसरे महाजन लोग जो दुकानदारी पेशा हैं। यही दो कौमें शरीफ शुमार की जाती हैं। अफगानों में उलूम उर्दू और फारसी कदीम से चला आता है। कौमें महाजनान में पहले पहल यही शखूस हुआ, जिसने उलूम उर्दू व फारसी हासिल करके अपनी कौम में इल्म फैलाया और यहां तक कि फिल्वाकै दीगर (वास्तव में दूसरे हुनर) फरीक पर भी इस फन में सबकत (सबसे बढ़ गया) ले गया। मुझे उसकी तहसील उलूमी (विद्या अर्जन) की हालत पर गौर करने से बड़ा ताज्जुब आता था और खुदा की कुदरत याद आती थी कि वह पाक परवरदिगार जिसको जो कुछ देना चाहता है, जबरदस्ती देता है। देखो, उस शख्स के बाप और दादा को उर्दू और फारसी पढ़ाने का बिल्कुल शौक न था और कुछ परवाह भी नहीं थी कि इल्म सिखाकर नौकरी कराए। अपने घर के साहूकार थे। सरसरी तौर से यह लड़का और लड़कों के साथ पढ़ने बैठा। अपनी जहानत चुस्ती और चालाकी से चंद रोज में इल्मी तरक्की हासिल करने लगा। इस वजह से मेरा दिल भी बनिस्बत और लड़कों के उसको तालीम देने पर बहुत मुसवल्ज (आकर्षित) होता था। यह तरक्की देखकर दीगर फरीक के शोख लड़के उससे बहुत हसढ (ईर्ष्या) करते थे और ईजारसानी (तंग करने) के मौके ढूंढा करते थे। उसके साथ अक्सर लड़के महाजनान दूसरे फरीक की यह शोखी बरदाश्त न करके घर बैठ रहा करते थे। लेकिन यह हिम्मतवाला कभी नहीं बैठा। बहुत एहतियात से तहसील उलूम में मसरूफ रहा, जिस वक्त आखिरी इम्तिहान जमाअत पंजुम जो बहुमकाम कोसली में हुआ था, लाला बलदेव सहाय एसिस्टेंट इंस्पेक्टर मुम्तहिन थे, उस खूबी के साथ इम्तिहान में कामयाबी हासिल की कि मुझको भी शाबासी दिलाई और खुशनूदिए मिजाज का परवाना साहिब डिपुटी कमिश्नर बहादुर जिला रोहतक से दिलाया और उसके वालिद को बुलाकर लाला बलदेव सहाय ने समझाया कि उसको तहसील उलूम के लिए आगे भेजो। उन्होंने उज्र किया कि हम लोग तिजारत पेशा हैं, हमको ज्यादा पढ़ाकर रोजगार की जीरत नहीं है। उस वक्त एसिस्टेंट इंस्पेक्टर साहिब ने फरमाया कि सूबा पंजाब में दस हजार लड़कों का इम्तिहान अब तक ले चुका हूं कोई लड़का इस जहानत और लियाकत का नहीं देखा। अगर आगे तालीम न दिलाओगे, तो हकतलफी करोगे।

गुप्तजी की मित्र-मंडली

गुप्तजी के बढ़िया मित्रों में थे—देशभक्त ए. चौधरी, जे. चौधरी, बा. मोती लाल घोष, माननीय सर गुरुदास वन्द्योपाध्याय, जस्टिस सारदाचरण मित्र, बा. पांचकौडी बनर्जी, पं. सुरेश चंद्र समाजपति, पं. राजेंद्र चंद्र शास्त्री, कविराज ज्यासेतिर्मय सेन, डाक्टर प्यारीमोहन मुकर्जी और पं. सखाराम गणेश दउत्कर इत्यादि। श्री देउत्कर जी महाराष्ट्र होते हुए भी बंगभाषा के प्रतिभाशाली लेखक और उस समय के बंगला साप्ताहिक पत्र 'हितवादी' के सम्पादक थे।

गुप्तजी के स्थानीय हिन्दी क्षेत्रस्थ घनिष्ठ सम्पर्की मित्र-पं. छोटूलालजी मिश्र, डाक्टर श्रीकृष्णजी वर्मन, बा. रूडमलजी गोयनका, पं. जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी, बा. ईश्वरीप्रसाद जी वर्मा, पं. उमापतिदत्तजी शर्मा बीए, पं. अक्षयवटजी मिश्र काव्यतीर्थ, पं. श्रीगोपालजी मुंशी, पं. कालीप्रसादजी तिवारी, पं. सोमनाथजी झाड़खंडी, पं. कन्हैयालालजी गोपालाचार्य, डा. लक्ष्मीचंद जी, पं. चिरंजीलालजी वैद्य, पं. कन्हैयालालजी वैद्य सिरसा वाले, पं. हरिनारायणजी - श्रीनारायणजी वैद्य पाटगवाले, पं. कृपारामजी कुष्ट-चिकित्सक, पं. शंभुरामजी पुजारी, पं. सीएल शर्मा, पं. कालीचरण शर्मा, पं. भूरालाल जी मिश्र, मुंशी महादेवप्रसाद जी कायस्थ, पं. हरदेवरामजी व्यास, बा. यशोदानंदजी अखौरी और बाबू राधाकृष्ण जी टीबड़ेवाला प्रभृति थे।

श्रद्धा के दो-चार विशीर्ण पुष्प

□ हरिहरस्वरूप शास्त्री

गुप्त जी को प्रभु ने बड़ी बामजाक तबीयत दी थी। हम तो उनके बच्चे थे, पर हमसे भी जब वे मजाक करने पर उतरते थे, तब खूब हंसते-हंसाते थे। मेरे हाथ में एक दिन अमरकोष देखा। कहने लगे-आरंभ से सुनाओ, क्या पढ़ा है। मैंने पहला श्लोक पढ़ा। कहने लगे-वाह, तुमको ठीक पाठ तक नहीं आता। इसका शुद्ध पाठ तो इस प्रकार है-'यस्य ज्ञान दया सिन्धो, लगा धक्का गिरा पड़ा।' मैं छोटा-सा था। मुझे यह पाठ सुनकर बड़ा मजा आया। अब तक उनका शुद्ध किया हुआ यह पाठ मुझे याद है।

एक दिन हमें चौपाई का यह टुकड़ा सुनाकर अर्थ पूछा- 'चले राम धर सीस रजाई। हमने सीधा अर्थ बता दिया कि रामचंद्र जी अपने पिता की रजा अर्थात् आज्ञा लेकर वन को चल पड़े। गुप्त जी ने कहा-नहीं, यह अर्थ नहीं है। इसका अर्थ है कि वन में रहने में ओढ़ने-बिछाने का कष्ट होगा, - यह सोचकर रामचंद्र जी अपने सिर पर 'रजाई' रखकर वन को चल पड़े। हमें उनके इस अर्थ को सुनकर बहुत आनंद आया। हमारे पूछने पर उन्होंने ऐसी अनेक चौपाइयों के इसी प्रकार के विनोदात्मक अर्थ सुनाये। सबके लिखने से लेख बढ़ेगा। तात्पर्य यह है कि उनके मिजाज में विनोद बहुत था।

पंडितजी सुनाया करते थे कि एक दिन वह ब्रह्म और अद्वैतवाद पर एक लंबा भाषण कलकत्ते में देकर आये। गुप्तजी सभा में साथ थे। लोगों में भाषण की बड़ी तारीफ हुई, बड़ी तालियां बजीं। गुप्तजी ने भी घर आकर कहा - आज का व्याख्यान बहुत अच्छा रहा। पंडित जी को पता था कि ये वैसे ही कह रहे हैं, क्योंकि भाषण वे कभी ध्यान से न सुनते थे। पंडित जी ने पूछा कि अच्छा बताओ, हमने क्या कहा था, जिसे आप

जनाब नजीबुल्लाह खां साहब की स्मृति में बालमुकुंद

लाला बालमुकुंद के वालिद को भी देखा था। लाला बालमुकुंद को मदरसे में पढ़ते देखा है। वह अपने हमउम्र लड़कों में सबसे ज्यादा अकलमंद थे-सबसे अव्वल रहते थे। लिबास बहुत सफेद रखते थे। उन्होंने दुकानदारी का कोई काम नहीं किया और हमेशा इल्म की मजलिस में बैठते रहे। हर किस्म के लोगों से बड़ी मुहब्बत से पेश आते थे और बस्ती के सब लोग उनकी बड़ी इज्जत करते थे। हमारे काजी तालिबअली साहब, जो एक बड़े कामिल बुजुर्ग थे, उनकी अक्सर तारीफ किया करते थे। एक दिन उनकी एक हिकायत भी बयान की थी। फरमाया-भाई, बालमुकुंद ने आज एक अजीब बात कही। वह यह कि सुख दुनिया की दौलत में नहीं है, सुख कोई और चीज है-

'ना सुख घोड़े पालकी, ना छत्तर छांह
या सुख हरि की भगत में, या सुख संतौं मांह।'

लाला बालमुकुंद अच्छे खूबसूरत जवान थे। उनको देखा तो सबसे अच्छा देखा। लोग उनके पास सलाह लेने जाते थे और उनसे बड़ी अच्छी सलाह मिलती थी। जिन दिनों वह तालीम पाते थे, यहां मदरसे में उर्दू-फारसी पांच जमाअत तक की पढ़ाई होती थी। मुंशी वजीर मुहम्मद खां मदरसा पढ़ाते थे। मुंशी जी भी यहीं के रहने वाले थे। साथ पढ़ने वालों में काबिल जिक्र इस्मायलखां, मेहरुदीनखां और बालमुकुंद- ये तीन तालिब-इल्म थे, जिनमें पहले डाक्टर हुए, दूसरे मुंशी औ तीसरे मुंशी होकर मशहूर अखबार नवीस हुए।

जनाब अता मुहम्मदखां साहब की स्मृति में बालमुकुंद

लाला बालमुकुंद मुझसे बड़े थे। बड़ी अच्छी तबीयत के आदमी थे। कप्तान फजल रसूलखां जो उन दिनों जोधपुर में कप्तान थे। उनके दोस्त थे और हमउम्र थे। बालमुकुंद बहुत खुश खलीक आदमी थे। तालीम बहुत अच्छी पाई थी, सोहबत बहुत की थी। हरेक आदमी से उनको इखलाक था। हर आदमी उनको अपना दोस्त समझता था। यह उनकी अपनी खूबी थी। तमाम गांव उनको इज्जत और मुहब्बत की नजर से देखता था।

अच्छा बतलाते हो? गुप्तजी ने उत्तर दिया कि यह हम कुछ नहीं जानते कि आपने क्या कहा, क्योंकि जो ब्रह्म और जीव का झगड़ा आपने झोया वह तो लोहे के चने थे, जो हमसे नहीं चबाये जाते। पर लोग आपकी बातों से खुश हुए, इससे हम भी खुश हैं कि आपने कुछ अच्छी ही बातें कही होंगी। पंडित जी ने कहा कि खैर, तब ध्यान न दिया, अब जरा कुछ देर बैठकर समझ लीजिए कि हमने क्या कहा था। गुप्तजी ने कहा - नहीं, यह हमसे न होगा। धर्म का रूप् आपने समझ लिया है, वह हमारे लिए भी काफी है। आप जिसे धर्म कहते जाओगे, उसे हम मानते जाएंगे। अंत समय में यदि आप धर्मात्मा निकले और आपका विमान स्वर्ग को चला, तो उसका पाया पकड़कर हम भी लटक जाएंगे।

तबीयत में बड़ी बेबाकी थी। पंडित जी हैदराबाद दक्षिण गये। महाराणा सर कृष्ण प्रसाद उस समय वहां के वजीर आजम थे। पंडित जी उनके अतिथि थे। महाराजा उर्दू के अच्छे कवि और लेखक थे। पंडित जी ने महाराजा से गुप्त जी का जिक्र किया। गुप्त जी का और महाराजा का कविता का उपनाम इत्तफाक से 'शाद' था। इस कारण महाराज को उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई। पंडित जी ने गुप्त जी को हैदराबाद आने को लिखा। गुप्त जी ने उत्तर दिया कि मेरे 'भारतमित्र' पत्र को 2 रुपए वार्षिक देकर जो ग्राहक पढ़ता है, वही मेरे लिए महाराजा कृष्ण प्रसाद है। यदि महाराज को मुझे जानना है कि मैं क्या हूं, तो उनसे कहिये कि 2 रुपए वार्षिक भेजकर 'भारतमित्र' के ग्राहक बनें और उसे पढ़ा करें। मुझे आने का अवकाश नहीं है। यह इनके विचारों की स्वतंत्रता और मस्ती का नमूना है। हैदरबाद में अच्छा मनसब मिलने पर महाकवि ज़ौक़ ने जो कहा था कि:-

'कौन जाये जौक ये दिल्ली की गलियां छोड़कर।'

(लेखक पं. दीनदयालु शर्मा जी के पुत्र हैं। दीनदयालु शर्मा जी बालमुकुंद गुप्त के गहरे दोस्त थे।)

परिहासप्रिय गुप्तजी

□ पं. सकलनारायण शर्मा

महापुरुष दृष्टिगोचर होता है अथवा जिसकी चर्चा होती है, दोनों प्रकार से वह जीव स्मृति-पात्र होता है। गुप्तजी अपनी परिहास प्रियता तथा यथार्थवादिता के कारण कभी भुलाये नहीं जा सकते। उनके लड़कपन की एक परिहास-घटना बड़ी मनोरंजक है। वे चंचल चतुर थे। मदरसे में सबसे पहले पहुंच जाते थे और बात की बात में पठनीय विषय कंठस्थ कर मौलवी साहब को सुना देते थे। इससे वे शिक्षक के प्रेमपात्र रहते थे। मदरसा मैदान में था। वहां एक चौखटा मकान पक्का था। उसकी छत सुंदर मजबूत थी। उस पर चढ़ने के लिए कोई सीढ़ी न थी। एक दिन कोई एक ऊंट पास के पेड़ से बांध गया। उसका मालिक कार्यवश प्रातःकाल बाहर गया था। गुप्तजी आये और लड़कों से बोले, थोड़ी दूरी पर बाजरे की पूलियों का ढेर पड़ा है, उसे उठा लाओ और छत तक ढाल बनाकर रख दो। वैसा हो जाने पर लड़कों ने ऊंट को छत पर चढ़ा दिया और पूलियों को जहां से लाये थे, वहीं रख आये। ऊंट के मालिक ने आकर ऊंट को गायब देखा। वह अपने भाग्य को कोसता हुआ तलाश में दौड़ गया। इतने में ऊंट छत पर घबराया और बलबलाने लगा। राह चलने वाले समझ नहीं सके कि ऊंट छत पर कैसे पहुंच गया। कोई हंसता था, कोई ताली पीटता था। लंबरदार, चौकीदार बुलाये गये। ऊंट का मालिक चिंचित था कि ऊंट को कैसे नीचे उतारा जाये। दिन बीत गया। कोई उपाय न सूझा। मदरसा बंद हो गया। लड़के पढ़ने में ध्यान नहीं देते थे। गुप्तजी ने मौलवी साहब से कहा कि टाल से बाजरे की पूलियां मंगाकर सीढ़ी बना दी जाए, उससे ऊंट उतर जाएगा। ऊंट तरकीब से उतर आया और उसकी खुशी में ऊंट के मालिक ने मिठाई मंगाकर मदरसे के लड़कों को दी।

मदरसे के छात्र मौलवी साहब की मारपीट से रुष्ट रहते थे तथा उनके बिछौने में आलपिन गड़ाकर उनके पैर क्षत-विक्षत कर देते थे। गुप्तजी ने अपने साथियों को उक्त कार्य से रोका और मुसलमान विद्यार्थियों से कहा कि आज मैं आप लोगों को शरबत पिलाऊंगा। मौलवी साहब ने बड़े बदने में दिवाली पर आये बताशे रखकर कपड़े से उसका मुंह बंद कर दिया और खाम लगा दी कि रमजान में काम आवेंगे। गुप्तजी ने बदने की टोंटी के रास्ते से पानी घुसाया और शरबत बन गया। उसे लड़कों ने प्रेम से पीया। बदना खाली हो गया और खाम ज्यों-की-त्यों रह गई। रमजान के समय गुप्तजी मदरसा से छुट्टी लेकर घर बैठ गये।

कर्मयोगी बालमुकुंद गुप्त

□ झाबरमल शर्मा

गुप्त जी को कृत्रिमता से आंतरिक घृणा थी। उनका जीवनक्रम प्रकाश्य, सादा और बाहर-भीतर एक समान था। जो वेश-भूषा घर में रखते, वही बाहर भी। पहनावा धोती, पंजाबी कुरता या लंबा बंद गले का कोट, सिर पर गोली टोपी, कंधे पर दुपट्टा और मौसम यदि जाड़े का हुआ तो गरम चद्दर। चाहे घर पर-भारतमित्र कार्यालय में देखिये, चाहे किसी सभा में या किसी मित्र के पुत्र-पुत्री के विवाहोत्सव में। उनका यह वेश था।

उनकी दिनचर्या भी निश्चित एवं नियमित था। प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व एक नैष्ठिक हिन्दू के कर्तव्यनुसार भगवत्स्मरण के साथ वे शय्या-त्यागकर उठ जाते थे। उनको हुक्का-चिल्लम, बीड़ी-सिगरेट या तंबाकू आदि सेवन का कोई व्यसन नहीं था। उठते ही शौचादि से निवृत्त हो स्नान कर लेते थे और तदनंतर सन्ध्यावन्दन, गीता और विष्णु सहस्रनामादि का पाठ।

इसके पश्चात आठ बजे से पहले पहले उनका अपने कमरे में काम पर बैठ जाने का नियम था। वह कमरा ही भारतमित्र के सम्पादकीय विभाग का कार्यालय या दफ्तर था। उसमें मेज कुर्सी की जगह बैठक फर्श की थी। पुस्तकों के लिए दीवार के सहारे अलमारियां थी। गुप्त जी के इर्द-गिर्द तरतीबवार समाचार -पत्र रखे रहते थे।

उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती और मराठी सभी भाषाओं के पत्र भारत मित्र कार्यालय में आते थे और उनको वे गौर से पढ़ते थे। अंग्रेजी पत्रों में अमृतबाजार पत्रिका के अग्रलेख और टिप्पणियां सर्वप्रथम पढ़ने के बाद वे स्टेटसमैन और इंग्लिशमेन इत्यादि पत्र, उनका अभिमत जानने के लिए अवश्य पढ़ते थे। पढ़ने के साथ-साथ उन पर निशान भी लगाते जाते थे। भोजन करने के बाद मध्याहोत्तर वे फिर अपने काम में आ डटते थे।

गुप्तजी केवल सम्पादक ही नहीं, भारतमित्र के सब कुछ थे। जिस दिन भारतमित्र प्रकाशित होता उससे पूर्व, रात्रि को आर्डर देने के लिए उनको देर तक जागना पड़ता। विज्ञापन, डिस्पेच और पत्राचार आदि सभी विभागों की देख रेख रखते थे। भारतमित्र को सजाने के लिए चुन-चुन कर लेख, टिप्पिणयां, समाचार तैयार करते और कराते थे। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यों और सभा सोसाइटियों में भाग लेते थे।

सायंकाल को वे प्रायः ईडन-गार्डन में घूमने के लिए भी जाते थे। बंगवासी से संबंध रखने के दिनों में उनके सांध्य भ्रमण के साथी पंडित जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी, बाबू रामदेवजी चोखानी, बाबू रामकुमार जी गोयन और पंडित शंभुराम जी पुजारी प्रभृति।

रात्रि में भोजन करने के पश्चात गुप्तजी देर में सोते थे और रात को लिखा भी करते थे। उनको एकांत में लिखना अधिक पसंद था। सोने से पहले वे अपनी डायरी लिखते थे।

संवेदनशील बालमुकुंद गुप्त

- उनका नौकर धन्नू कहार नाम का एक गुवाला था। वह भोला-भाला आदमी था। धन्नू एक बार छुट्टी लेकर घर गया हुआ था। उसने अपने पहुंचने के दिन की सूचना किसी से लिखवा कर कार्ड द्वारा भेज दी थी। गुप्त जी ने सोचा, वह गरीब छलछिद्ररहित आदमी है, स्टेशन के भीड़-भड़क्के में भौंचका-सा होकर कहीं रास्ता न भूल जाए और उसे मकान तक पहुंचने में कष्ट होगा—वे स्वयं स्टेशन पहुंचे और अपने धन्नू को लिवा लाये। 'स्लेट बस्ता' मंगवाकर धन्नू को गुप्त जी ने खुद 'क, ख, ग, घ, ड़' से आरंभ कराके साक्षर बना दिया था। प्रतिदिन रात को वे उसे अपने पास बिठाकर पढ़ाया करते थे।

- गुप्तजी के एक मित्र श्रीमोहन लाल मेरठ से आने वाले थे। 30 मई सन् 1906 की बात है। उस दिन मोहनलाल जी तो नहीं आ पाये, किंतु स्टेशन पर उन्हें एक अज्ञात कुलशील भूला-भटका लड़का मिल गया। वह रो रहा था। गुप्त जी के पीछे-पीछे चला आया। उसे दो-तीन दिन रखा और पीछे अपने पास से खर्च देकर उसके घर भेजा।

बालमुकुंद गुप्त की लेखनी का प्रभाव

□ गिरिधर चतुर्वेदी

उन दिनों मैं छात्रावास में था, समाचार पत्र पढ़ने की कुछ रूचि होने लगी थी, उन दिनों प्रथमतः स्वर्गीय बाबू बालुमुंकुंद गुप्तजी की लेखनी ने ही चित्त पर विशेष प्रभाव डाला था। यह भी कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि श्रीगुप्तजी की लेखनी ने ही समाचार-पत्र और हिन्दी के सामयिक निबंध पढ़ने की प्रवृत्ति को उत्साह दिया। इसी से मैं अनुमान करता हूं कि मेरी भांति शतशः, सहस्रशः विद्याप्रेमी उनके कारण हिन्दी के अनुरागी बने होंगे-इसमें कोई संदेह नहीं। उस समय जब कि उर्दू, उत्तर भारत भर में अपना सिंहासन जमाये बैठी थी और अंग्रेजी अपने साम्राज्य से अन्य भाषाओं का निष्कासन कर देने पर तुली हुई थी, श्रीमानजी, गुप्त जी जैसे सज्जनों ने अपनी लेखनी का महास्त्र उठाकर हिन्दी-रक्षा में जो अपूर्व पुरुषार्थ किया, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में कभी भुलाया नहीं जा सकता। चाहे आज के महारथी इसे धृष्टता समझें—किंतु मुझे तो यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि वैसी रोचक गंभीर और सरल हिन्दी लिखने वाले आज इस हिन्दी की उन्नति के मध्याह्न काल में भी नहीं है। आपके संपादित भारतमित्र के 'टेसू' और 'होली' पढ़ने की महीनों पहले से उत्कण्ठा लगी रहती थी। फिर विशेषता यह कि किसी उपहास और रोचकता के भीतर ऐसी राजनैतिक चुटकियां रहती थी, जिनमें मार्मिकों को लोट-पोट हो जाना पड़ता था। उनके बंग-भंग आंदोलन के समय में 'टेसू' का बहुत सा अंश मुझे आज भी याद है, जिसे मैं कई बार प्रसंग-प्रसंग कर मित्रों को सुनाया करता हूं।

गालिब के बाद यदि किसी एक व्यक्ति में हाली की कविता के ये पद्य चरितार्थ होते हैं तो निसंदेह गुप्तजी में।

भारतमित्र-सम्पादन के समय महानगरी कलकत्ता में वे वर्षों रहे और बड़े-बड़े धनिक और स्वार्थी सेठ उनसे मिलने और उन्हें अपने मकान पर बुलाने के लिए बहुत लालायित रहे, किंतु साहित्य के शैदा और भाषा के धनी गुप्तजी को उनसे मिलने की भी फुर्सत या इच्छा नहीं थी, उनके घर जाने की तो कौन कहे। किंतु अपने दफ्तर के चपरासी के साथ उनका वह सहृदयतापूर्ण व्यवहार रहता था, जो आजकल के स्वार्थी-युग में पूंजीपति वृकोदरों का अपने रिश्तेदारों के साथ भी नहीं रहता।

उनकी भाषा ऐसी सुंदर, घुटी हुई और मुहावरेदार होती थी कि उस तरह की भाषा हिन्दी साहित्य में बहुत कम जगह मिलती है। उसमें शब्दों का आडंबर बिल्कुल नहीं होता था। सीधे-सादे शब्दों में उतार-चढ़ाव से वह रंगत और रौनक पैदा कर देते थे जो उन्हीं का हिस्सा थी और दुख है उनके बाद वह रौनक भी विदा हो गई। एक अंग्रेजी साहित्यकार ने लिखा था कि शब्दाडम्बरपूर्ण भाषा एक मूर्ख भी लिख सकता है, किंतु सरल और हृदय में बैठनेवाली भाषा का लिखना किसी आचार्य का ही काम है। साहित्यकार का यह वाक्य यदि किसी परीक्षा-पत्र में आये और उसका सच्चा और अकेला दृष्टांत पूछा जाय तो उत्तर -'बाबू बालमुकुंद गुप्त' होगा। उन्हें जो बात लिखनी होती थी, वह उसे ऐसे अनोखे और सीधे-सीधे ढंग से लिख जाते थे कि वह पाठक के लिए बहुत ही उपभोग्य वस्तु हो उठती थी।

संस्थाएं जिनको गुप्त दी ने सहयोग किया

गुप्तजी के सहयोग और परामर्श से लाभ उठाने वालों में मारवाड़ी एसोसिएशन, श्री विशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय, मारवाड़ी चेंबर आफ कामर्स वैश्यसभा, सावित्री कन्या पाठशाला, श्रीकृष्ण गोशाला, एक लिपि विस्तार परिषद, बड़ाबाजार लाईब्रेरी और हिन्दी साहित्य सभा आदि संस्थाओं के संचालकों के अतिरिक्त सेवाभावपरायण बाबू लक्ष्मीनारायणजी भुरोदिया, बाबू किशनदयाल जालान, पं. शिवप्रतापजी आचार्य और पं. शिवनारायणजी व्यास के नाम उल्लेखनीय हैं। भिवानी वालों में बाबू माधवप्रसादजी हलुवासिया, बाबू फूलचंदजी हलुवासिया, बा. ज्ञानीरामजी हलुवासिया, बाबू जुगलकिशोरजी पोद्दार, बा. मुरलीधर जी बहादुरगढ़िया और बा. जयलालजी चिड़ीपाल प्रभृति से गुप्तजी का भाईचारा था।

मारवाड़ी समाज और गुप्तजी

□ सेठ रामदेवजी चोखानी

सन् 1906 ई०। उस दिन मारवाड़ी ऐसोसिएशन का एक अधिवेशन था। स्थानीय सरकारी हिन्दी-स्कूल से ऐन्ट्रेन्स-परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर मैं अपने स्वर्गीय पितृव्य श्रीहरमुखराय जी चोखानी के साथ सर्वप्रथम मीटिंग में गया था। मारवाड़ी एसोसिएशन की स्थापना इसके कुछ ही महीनों पहले हुई थी। सभा में उपस्थिति और उत्साह-दोनों खूब थे। मारवाड़ी एसोसिएशन को प्रारंभ से ही भारतमित्र-सम्पादक बाबू बालमुकुंद जी गुप्त का सहयोग प्राप्त था। एसोसिएशन के संस्थापक बाबू रंगलाल जी पोद्दार और बाबू मोतीलाल जी चांदगोठिया आदि से उनकी गहरी मित्रता थी। बाबू रंगलालजी के मकान पर ही उन दिनों एसोसिएशन के अधिवेशन हुआ करते थे। मकान का नंबर था 14, आरमेनियन स्ट्रीट। गुप्तजी ने बड़े प्रेम से उस दिन हरियाणवी लहजे में 'मेरे धोरे आजा' कहकर मुझे अपने पास बिठाया और परीक्षोत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में प्रशंसा कर उत्साहित किया। गुप्तजी ऐसोसिएशन के प्रायः सभी कामों में भाग लेते थे और उनकी राय की बड़ी कद्र की जाती थी। मेरा परिचय बढ़ते-बढ़ते आगे चलकर आत्मीयता में परिणत हो गया था। प्रसिद्ध विद्याव्यसनी स्वर्गीय रूड़मलजी गोयनका के स्थान पर हम लोग प्रायः मिलते थे और भारतमित्र-कार्यालय तो मिलने का केंद्र ही था। मारवाड़ी-समाज के सार्वजनिक जीवन को जगाने में भारतमित्र के द्वारा गुप्तजी जो कार्य कर गये हैं, वह अतुलनीय है। कुरीति-संशोधनपूर्ण सार्वजनिक सेवा और शिक्षा-प्रचार की लगन पैदा करना ही उनका लक्ष्य था। उस समय भारत-मित्र को पढ़ने के लिए लोग उत्सुक रहते थे और प्रतीक्षा किया करते थे कि देखें इस बार क्या नई बात निकलती है। व्याख्यान-वाचस्पति पं. दीन-दयालुजी शर्मा की प्रेरणा से विद्यालय स्थापित करने की गुप्तजी ने बात उठाई और उनके लिए मारवाड़ी समाज को निरंतर ध्यान दिलाया, जिसके फलस्वरूप सितम्बर सन् 1901

7 सितम्बर सन् 1908 को कलकत्ता में पहली वार्षिक स्मृति सभा

गुप्तजी का देहांत होने के पश्चात उनकी पहली वार्षिक स्मृति सभा 7 सितम्बर रविवार, सन् 1908 को सांयकाल 7 बजे स्थानीय श्रीविशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय में कलकत्ता हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधीश श्रीसारदाचरण मित्र महोदय के सभापतित्व में हुई थी। उस समय विद्यालय 153 हरिसन रोड स्थित मकान में था। उस अवसर पर व्याख्यान-वाचस्पति पंडित दीनदयालु जी शर्मा के हाथ से गुप्त जी का चित्रोद्घाटन कराया गया था। सभा में उपस्थिति असाधारण थी और उसमें पत्र-सम्पादकों और पत्र-प्रतिनिधियों के अतिरिक्त बड़ाबाजार के प्रायः सभी हिन्दी-प्रेमी सज्जन और सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकर्ता बड़ी संख्या में सम्मिलित थे। पंडित अमृतलालजी चक्रवर्ती का स्वागत भाषण होने के पश्चात् अध्यक्ष पद से अपने भाषण में माननीय जस्टिस मित्र ने स्वर्गीय गुप्तजी की गुणावली का वर्णन करते हुए कहा

-'मैं भारतमित्र में गुप्तजी के शिवशंभू के चिट्ठे बड़ी उत्सुकता से मन लगाकर पढ़ता था। उनका भाषा पर अधिकार, स्वदेशानुराग एवं हास्योद्रेक में क्षमता आदि गुण संस्मरणीय हैं। उनके प्रति सादर मैं अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूं।' पश्चात् कितने ही हिन्दी-समाचार पत्रों के जन्मदाता पंडित दुर्गाप्रसादजी मिश्र, कला-सम्पादक पं. जीवानंदजी शर्मा काव्यतीर्थ और गुप्तजी के अंतरंग मित्र पंडित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ने गुप्तजी की गुण-गाथा सुनाई और अंत में पंडित दीनदयालु जी ने गुप्त जी का चित्र उद्घाटनपूर्वक मर्मस्पर्शी वाणी में उनके जीवन की विशेषताएं धर्मभाव, लेखनशक्ति, हास्यप्रियता, उदारता और तेजस्विता का बखान करते हुए कहा था-'यद्यपि गुप्तजी का स्थूल शरीर अब नहीं रहा है, किंतु उनकी आत्मा अमर है और जब तक हिन्दी साहित्य रहेगा, तब तक उनकी कीर्ति की धवल पताका फहराती रहेगी।'

ई0 में श्रीविशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय स्थापित हुआ। विद्यालय के प्रथम हेडमास्टर श्री पंडित उमापतिदत्त शर्मा पांडेय बीए थे। वे भी गुप्तजी के मित्रों में थे। हम लोग विद्यालय संबंधी कार्य के लिए करीब-करीब प्रतिदिन ही मिलते थे। विद्यालय उस समय नं. 153, हरिसन रोड में था। उसी मकान में मारवाड़ी एसोसिएशन का कार्याल आ गया था। विद्यालय के मंत्री बाबू मोतीलाल जी चांदगोठिया थे और सहकारी मंत्री थे मेरे पूज्य पितृव्य श्रीहरमुख रायजी चोखानी।

एक चित्र सन् 1901 के अंत में श्रीविशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय के प्रांगण में लिया गया था, उसमें मारवाड़ी एसोसिएशन और विद्यालय के उस समय के प्रमुख कार्यकर्ताओं के बीच गुप्तजी भी विराजमान है। वह समय कितना सुखकर था, जब वहां छुट्टी के बाद बाबू बालमुकुंद जी गुप्त, पं. उमापतिदत्तजी पाण्डेय, पं. जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी और बाबू ईश्वरी प्रसादजी वर्मा आदि एकत्र होते थे और उस मित्र गोष्ठी में लोकहित की चर्चा के साथ-साथ साहित्यिक विनोद एवं पारस्परिक हंसी-मजाक का रंग जमता था। बड़ा बाजार लाइब्रेरी की स्थापना सन् 1902 ई0 में हुई थी। उसमें भी हमारी मित्र-मंडली का, जिसके गुप्तजी मुखिया थे, पूरा सहयोग रहा। यह लाइब्रेरी 'भारतमित्र' 'सार-सुधानिधि' 'उचितवक्ता' आदि पत्रों के जन्मदाता स्वर्गवासी पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के भतीजे स्वर्गीय पं. केशव प्रसाद मिश्र एवं बाबू मुरलीधर गोयनका (स्वर्गीय श्रीहरिरामजी गोयनका के ज्येष्ठ पुत्र) के उत्साह और उद्योग का फल है। गुप्तजी का नियम भारतमित्र कार्यालय से चलकर बड़ा बाजार लाइब्रेरी होते हुए विद्यालय में पहुंचने का था।

श्रीविशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय के लिए सन 1902 ई0 में स्थायी कोष एकत्रित करने की जब योजना बनी, तब मैं उसका मंत्री बनाया गया था। उस चन्दे के कार्य में बाबू बालमुकुंदजी की पूरी सहायता और सहानुभूति रही। उनकी कलम और शरीर दोनों से पूर्ण सहयोग मिला। दो लाख रुपए का स्थायी चन्दा एक वर्ष में एकत्र किया जाना निश्चित हुआ था, किंतु कार्यकर्ताओं के अनवरत् परिश्रम से इसके पहले ही यह सत्कार्य सम्पन्न हो गया। इसके लिए गुप्तजी ने उत्साहवर्धक शब्दों में 'भारतमित्र' द्वारा आनंद प्रकट करते हुए मारवाड़ी समाज को बधाई दी थी। गुप्तजी के इन सब उपकारों का मारवाड़ी समाज पर बड़ा अहसान है।

खरी समालोचना करना गुप्तजी के स्वभाव की विशेषता थी। भारत-मित्र की धाक जमाने में उनके इसी व्यक्तित्व का अधिक भाग है। रात-दिन मिलने-जुलने वालों के भी गुण-दोष प्रकट करने में वे नहीं चूकते थे। पत्रकार गुप्त जी का ही उस समय यह प्रभाव था कि अमर्यादित कार्य करने का कोई साहस नहीं कर सकता था। उन्होंने कभी किसी बड़े-से-बड़े आदमी के मुंह की ओर देखकर अपना सिद्धांत नहीं बनाया। वे निस्पृह और निर्लेप थे। उनमें उच्चकोटि की देशभक्ति और धर्मभीरुता थी। उनका जीवन सादगी और संयमशीलता का उदाहरण था। इसी में वे सदा मस्त रहे और कभी किसी से नहीं दबे। उनके जीवन में प्राइवेट और पब्लिक लाईफ का कोई भेद नहीं था। वे बात के बड़े धनी थे और जो व्यक्ति अपने वचन या सिद्धांत से गिरता दिखाई देता, उसकी उनके जी में रत्ती भर भी इज्जत नहीं रहती।

(लेखक का गुप्त जी से गहरा संपर्क रहा है)

बालमुकुंद गुप्त का चित्र लोकार्पण
42 वीं पुण्यतिथि के अवसर पर सन् 1949 में हिंदी-बंगीय परिषद , कलकत्ता ने

कलकत्ते के गणमान्य साहित्यिकों और साहित्यानुरागियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुई। उस सुंदर साहित्यिक समारोह में सभापति का आसन काशी निवासी प्राख्यात कलानुरागी एवं कलाविद् हिन्दी-सेवी श्री राय कृष्णदास जी ने सुशोभित किया था और कविवर श्रीरामधारी सिंह दिनकर जी ने चित्रोद्घाटन किया था। सभापति महादेय, प्रधान अतिथि श्रीदिनकर जी, पुरातत्ववित् डाक्टर श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, प्रो. लंलिताप्रसादजी मुकुल, बाबू मूलचंद जी अग्रवाल और पं. रामशंकरजी त्रिपाठी आदि के गुप्तजी की हिन्दी-सेवा पर समायिक भाषण होने के बाद गुप्तजी का चित्र परिषद् के स्थान में लगाया गया। बंगीय हिन्दी परिषद् हिन्दी साहित्य-सेवी विद्वानों की कलकत्ते में एक प्रतिष्ठित संस्था है।

गुप्तजी, गुड़ियानी तथा गुमनामी की पीर

□ सत्यवीर नाहड़िया

आज जब पत्रकारिता संक्रमण काल से गुजर रही है, पत्रकारिता मिशन की बजाए एक विकसित उद्योग का रूप ले चुकी है, पत्रकारिता में मूल्य हाशिए पर हैं, संपादक नाम की संस्था का अस्तित्व खतरे में है, अखबारों के मालिक ही संपादक बन बैठे हैं, समाचार-पत्र उत्पाद बन चुके हैं, समाचार पत्रों में पेड -न्यूज के पेड़ उगे हैं, तो अनायास याद आते हैं हिंदी पत्रकारिता के मसीहा तथा हिंदी गद्य के जनक स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त जी, जिन्होंने गुलामी के दौर में साहित्य व पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐसे आयाम रचे कि उनके जाने की एक सदी बीत जाने के बावजूद उनका बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व आज भी साहित्य एवं पत्रकारिता के लिए प्रेरणापुंज बना हुआ है।

हिंदी भाषा के उन्नायक तथा राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत गुप्त जी का जन्म तत्कालीन रोहतक तथा वर्तमान रेवाड़ी जिले के गांव गुड़ियानी में 14 नवम्बर, 1865 को हुआ। झज्जर जिले के गांव डीघल के बख्शीराम वालों के खानदान से ताल्लुक रखने वाले उनके बड़े कोसली होते हुए गुड़ियानी आए थे। गोयल गोत्र के लाला पूरणमल के घर जन्मे बालक बालमुकुंद तीन भाइयों तथा दो बहनों में सबसे बड़े थे। राकिम स्कूल से उर्दू की पढ़ाई करने वाले बालमुकुंद गुप्त ने कुशाग्र बुद्धि का परिचय पांचवी कक्षा की परीक्षा में दिया। सियालकोट से होडल तक फैले तत्कालीन महापंजाब की इस परीक्षा में वे पहले स्थान पर रहे। पहले पिता तथा फिर दादा के निधन के चलते होने पढ़ाई के साथ अपने पैतृक बही खाते भी उठाने पड़े। विषम तथा विकट परिस्थितियों के बावजूद उन्होंने अपना स्वाध्याय जारी रखा तथा बाल कवि के रूप में राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। 1880 में उनका विवाह रेवाड़ी के प्रसिद्ध छाजूराम खानदान के गंगाप्रसाद की पुत्री अनार देवी से हुआ।

झज्जर निवासी पंडित दीनदयालु शर्मा के कहने पर 1885 में गुप्तजी ने 'मथुरा' अखबार नामक मासिक पत्र की जिम्मेवारी संभाली तथा 1886 में 'अखबारे-चुनार' के संपादक के रूप में उर्दू की नई पारी की शुरुआत की। इसके बाद गुप्तजी ने 'ज़माना' तथा 'कोहेनूर' के संपादन मंडल में भी अनूठी छाप छोड़ी। 1889 में उन्होंने मदन मोहन मालवीय जी के आग्रह पर 'हिंदोस्थान' का प्रभार कालांकाकर जाकर संभाला तथा 1891 में हिंदी बंगवासी में अपने संपादन कौशल का लोहा मनवाया। 1899 में गुप्तजी ने कोलकाता जाकर 'भारतमित्र' को संभाला तथा अपने अंतिम दिनों तक वे भारतमित्र के संपादक रहे। 18 सितंबर 1907 को गांव लौटते वक्त दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने बनी धर्मशाला में उन्होंने अंतिम सांस ली।

छह भाषाओं में साधिकार लिखने वाले गुप्त जी को हिंदी पत्रकारिता, साहित्य एवं भाषा के निर्माता के रूप में से ससम्मान याद किया जाता है। पत्रकारिता के तत्कालीन गढ़ों लाहौर, बनारस तथा कोलकाता में उन दिनों गुप्त जी की तूती बोलती थी। उर्दू पत्रकारिता से हिंदी पत्रकारिता में आए गुप्तजी ने अपने सीखने की ललक के चलते हिंदी पत्रकारिता में उच्च आदर्श स्थापित किये। इतना ही नहीं उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ,पंडित मदन मोहन मालवीय, माधव प्रसाद मिश्र, प्रताप नारायण मिश्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त ,श्रीधर पाठक जैसे रचनाकारों के साथ हिंदी साहित्य तथा भाषा के परिमार्जन में निर्णायक भूमिका निभाई।'शिवशंभू के चिट्ठे' उनकी चर्चित रचनाओं में शुमार हैं। शब्दों की टकसाल कहे जाने वाले 'भारतमित्र' के संपादन के दौरान हुए बंग-भंग आंदोलन में उनकी पत्रकारिता एवं रचनाधर्मिता राष्ट्रीय चेतना एवं दायित्वबोध का प्रेरक प्रमाण है। अनेक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं भाषायी आंदोलनों के अगुवा रहे गुप्त जी ने आजीवन राष्ट्रीयता के पक्षधर, पोषक एवं सजग प्रहरी के रूप में कलम चलाई। यही कारण है कि आज भी उन्हें हिंदी पत्रकारिता के पितामह, राष्ट्रीयता के अग्रदूत, हिंदी के उन्नायक, हिंदी गद्य के जनक, कुशल संपादक, निर्भीक पत्रकार, ओजस्वी कवि, सतर्क समीक्षक, चिंतनशील निबंधकार, तटस्थ लेखक, चुटीले व्यंग्यकार तथा सहज अनुवादक के रूप में से सम्मान याद किया जाता है।

साहित्यिक तीर्थ है बाबू जी गुड़ियानी

बाबू बालमुकुंद गुप्त की जन्मस्थली गांव गुड़ियानी को अनमोल विरासत कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह साहित्यिक तीर्थ आज भी अपने आंचल में एक ओर जहां

राष्ट्रीयता के अग्रदूत, क्रांतिकारी स्वतंत्रता सेनानी तथा निर्भीक कलमकार बाबूजी से जुड़े विभिन्न स्थलों एवं अनमोल स्मृतियों को सहेजे है, वहीं अपने प्राचीन गौरवशाली इतिहास के चलते सांप्रदायिक सौहार्द के पर्याय के रूप में विख्यात है। प्राचीन कलात्मक कारीगरी के नायाब नमूने हवेलियां, मस्जिदें, सराय, ईदगाहें, ठाकुरद्वारे आज भी अनायास आकर्षित करते हैं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तथा आजादी की लड़ाई से जुड़ी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के साक्षी रहे इस गांव ने अनेक उतार-चढ़ाव देखें हैं तथा आजादी के बाद समय के साथ कदमताल करता हुआ गुड़ियानी ने आज अपने प्राचीन गौरवशाली इतिहास पर गर्व करता प्रतीत होता है।

गुड़ियानी गांव सांप्रदायिक सौहार्द ,हिंदू- मुस्लिम एकता का जीवंत उदाहरण है। गांव के हिंदू परिवार जहाँ यहाँ की मजारों, ईदगाहों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं, वहीं मुस्लिम परिवार भी ठाकुरद्वार एवं मंदिरों में श्रद्धा के साथ शीश झुकाते हैं। यहां प्राचीन समय से होने वाली रामलीला में मुस्लिम कलाकार भाग लेते रहे हैं। गुड़ियानी में स्थित मस्जिदों,मंदिरों ठाकुरद्वारों, ईदगाहों, मजारों तथा छतरियों की कलात्मक कारीगरी आज भी देखते ही बनती है।

हरियाणा प्रदेश के रेवाड़ी जिले के कोसली उपमंडल तथा नाहड़ खंड का ऐतिहासिक गांव गुड़ियानी जाटूसाना रेलवे स्टेशन से 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस गांव के नामकरण तथा बसासत के संदर्भ में अनेक मत प्रचलित हैं, किंतु इस मत को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है कि गुड़ियानी तथा इसके आसपास के गांव पठानों द्वारा बताए गए। गोरगानी प्रजाति से ताल्लुक रखने वाले अफगान मूल के पठानों द्वारा इस गांव को विक्रमी संवत 1458 में बसाया गया। समकालीन पठानों द्वारा ही गुड़ियानी के आस-पास के गांव जखाला, भूरियावास, रसूलपुर, शादीपुर, दोनों मूंदड़ा मलेसियावास बसाए गए। इतना ही नहीं इन गांव के साथ लगते नांगल पठानी ,जाटूसाना पुरुखोत्तमपुरा तथा छोटा नांगल मिलाकर बारहा(12 गांवों का समूह) समकालीन माना जाता है। पठान लोग घोड़ों की सौदागरी करते थे। कहते हैं कि पहले विश्व युद्ध में अंग्रेजी सेना को 50 फ़ीसदी घोड़े देने वाले गुड़ियानी इलाके के ये पठान ही थे। यही कारण है कि पुराने समय में गुड़ियानी को पठानों वाली गुडय़िानी या घोड़ों वाली गुड़ियानी के नाम से भी जाना जाता था। अपने मीठे बेरों तथा एक खास कुए के पानी के लिए दूर-दराज तक प्रसिद्ध गुड़ियानी के बारे में एक अन्य लोक कहावत चर्चित रही है-

चहार चीज तोहफा-ए- गुड़ियानी।
बेर ,घोड़े ,सौदागर अरु कोठी का पानी।।

कोसली विधानसभा क्षेत्र का गांव गुड़ियानी झज्जर तथा रेवाड़ी से करीब बराबर दूरी 40 किलोमीटर पर स्थित है। बढेरा, तिहाग, बहादुरवाड़ा तथा कालेवाड़ा नामक चार पुराने पान्नों में बंटा गुड़ियानी गांव सांप्रदायिक सौहार्द ,हिंदू- मुस्लिम एकता का जीवंत उदाहरण है। गांव के हिंदू परिवार जहाँ यहाँ की मजारों, ईदगाहों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं, वहीं मुस्लिम परिवार भी ठाकुरद्वार एवं मंदिरों में श्रद्धा के साथ शीश झुकाते हैं। यहां प्राचीन समय से होने वाली रामलीला में मुस्लिम कलाकार भाग लेते रहे हैं। गुड़ियानी में स्थित मस्जिदों,मंदिरों ठाकुरद्वारों, ईदगाहों, मजारों तथा छतरियों की कलात्मक कारीगरी आज भी देखते ही बनती है। गुड़ियानी को हवेलियों का गांव भी कहा जा सकता है। सभी मोहल्लों में खड़ी एक से बढ़कर एक कलात्मक हवेलियां अपने प्राचीन वैभव व गौरव की कहानियां कह रही हैं, जिनमें से तिहाग मोहल्ले की दो हवेलियां सबसे जुदा हैं। पहली हवेली, बाबू बालमुकुंद गुप्त जी का जन्म हुआ, खंडहर हो चुकी है। इसके पड़ोस में गुप्त जी द्वारा बनाई गई तिमंजिली हवेली आज भी उनसे जुड़ी अनमोल स्मृतियों को सहेजे है।

करीब तीन दशक पहले इस हवेली में गुप्त जी के पुरखों की याद में धर्मार्थ औषधालय भी चलाया गया, जिसे निकटवर्ती गांव दड़ौली के वैद्य रामचंद्र संभालते थे। सेठ मुखराम रामेश्वर दास आयुर्वेदिक औषधालय नामक इस संस्थान से क्षेत्र के गरीबों को काफी लाभ होता था। गुप्त जी के समग्र साहित्य में जिस खेत- खलियान, गांव-गलियों का बहुआयामी जिक्र हुआ है ,उसे गुड़ियानी में साक्षात रूप में देखा जा सकता है।

क्षेत्र के 50 गांव के लिए कभी प्रमुख बिक्री केंद्र रहा गुड़ियानी गांव का पुराना बाजार गांव के बीच में होता था, वह अब दम तोड़ चुका है तथा गांव के बाहर फिरनी पर मुख्य सड़क पर आ गया है। क्षेत्र के 20-25 गांवों के लोग अब भी इस नए बाजार से खरीदारी करते हैं। देश की राजधानी दिल्ली से 70 किलोमीटर की दूरी पर स्थित गांव गुड़ियानी में सभी जातियों के लोग रहते हैं, जिनमें अहीर, दलित, कुम्हार, मीणा माली, खटीक, बनिया आदि प्रमुख हैं। करीब चार हजार वोट तथा दस हजार जनसंख्या वाला गांव गुड़ियानी आज 18 वार्डों में विभाजित है। गांव के आसपास गांव की ही करीब 50 भी ढाणियां हैं।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गुड़ियानी क्षेत्र के पठानों ने

अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी तथा अपने प्राणों की आहुति दी। गुड़ियानी के निकटवर्ती गांव भूरियावास की पहाड़ी पर इन शहीदों की याद में बनाई गई एक मजार पर लिखा मार्मिक शेर अनायास भाव विभोर कर देता है...

अंग्रेजी सेना के खिलाफ लड़कर कुर्बानी देने वाले पठान मोहम्मद आजम खान की गुड़ियानी स्थित कब्र पर एक मार्मिक शेर ध्यान खींचता है...

है अरजे पाक तेरी, हुरमत पर कट मरे हम।
है खून तेरी रगों में, अब तक रवां हमारा।।

हमारा खूं भी शामिल है,तज इने गुलिस्तां में।
हमें भी याद कर लेना, चमन में जब बहार आए।।

इसी तरह अंग्रेजी सेना के खिलाफ लड़कर कुर्बानी देने वाले पठान मोहम्मद आजम खान की गुड़ियानी स्थित कब्र पर एक मार्मिक शेर ध्यान खींचता है...

है अरजे पाक तेरी, हुरमत पर कट मरे हम।
है खून तेरी रगों में, अब तक रवां हमारा।।

बुजुर्ग बताते हैं कि गुड़ियानी में फारसी तथा उर्दू के अनेक विद्वान एवं रचनाकार हुए हैं। गांव में हाथ की कारीगरी से जुड़े कलाकार एवं कारीगर दूरदराज तक विख्यात रहे हैं। गांव का भाईचारा इलाके के लिए मिसाल रहा है। गुप्तजी 100वीं पुण्यतिथि पर आदर्श गांव का दर्जा दिए जाने के बाद गांव में सभी मूलभूत सुविधाएं मिली हैं। अहमदपुर, जखाला ,जाटूसाना तथा मुरलीपुर से घिरा गांव गुड़ियानी आज भी अपने आंचल में एक ओर जहां पठानी-संस्कृति की वास्तुकला के खंडहर, अस्तबल तथा इमारतें संजोए है, वहीं दूसरी ओर हिंदी पत्रकारिता एवं साहित्य में अनूठा योगदान देने वाले क्रांतिकारी कलमकार गुप्तजी ज़ी अनमोल स्मृतियों को सहेजे है। पिछले दो ढाई दशकों में उनकी स्मृति को चिरस्थायी एवं प्रेरणापुंज बनाने के अभियान में गुड़ियानी को काफी पहचान मिली है , किन्तु इस यात्रा में अभी बहुत कुछ होना बाकी है। देखना है कि गुड़ियानी राष्ट्रीय मानचित्र पर कब अपना विशिष्ट स्थान बना पाता है?

गुमनामी की पीर

गुप्त जी के निधन के करीब 9 दशकों तक गुड़ियानी स्थित गुप्त जी की पैतृक हवेली पर ताला पड़ा रहा, जिसके चलते यह हवेली बंदरों तथा कबूतरों की सैरगाह बनी रही, इस के आंगन में आदमकद झाड़ियां उग आई तथा इसमें रखा गुप्त जी का अनमोल साहित्य दीमक की भेट चढ गया। इन पंक्तियों के लेखक की इस सचित्र पीड़ा को दैनिक ट्रिब्यून ने संपादकीय पृष्ठ पर न केवल प्रमुखता से स्थान दिया, अपितु दैनिक ट्रिब्यून के तत्कालीन संपादक विजय सहगल ने गुड़ियानी इस हवेली में पधारकर साहित्यिक रिपोर्टिंग की तथा गुड़ियानी को दैनिक जीवन की साहित्यिक डेटलाइन बनाया। बाद में क्षेत्र के जाने-माने स्वतंत्रता सेनानी हरिराम आर्य के संयोजन में गुप्त जी के भूले बिसरे व्यक्तित्व एवं कृतित्व को चिरस्थायी बनाने के लिए गठित की गई बाबू बालमुकुंद गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद् ने इस हवेली को केंद्र में रखकर दो दशकों से अनेक राज्य स्तरीय साहित्यिक कार्यक्रम इस प्रांगण में किए। कोलकाता से गुड़ियानी पधारकर गुप्त जी के पौत्र सेठ हरिकृष्ण तथा बाद में प्रपौत्र विमल गुप्त इस हवेली का रखरखाव करते रहे हैं।

परिषद् के साहित्यिक प्रयासों के चलते जहां गुप्त जी की 94वीं पुण्यतिथि के अवसर पर तत्कालीन मुख्यमंत्री चौधरी ओमप्रकाश चौटाला गुड़ियानी पधारे तथा प्रतिवर्ष हरियाणा साहित्य अकादमी की ओर से पत्रकारिता एवं साहित्य में दो पुरस्कार प्रदान किए जाने की घोषणा की। गुप्त जी की 100वीं पुण्यतिथि के अवसर पर प्रदेश की तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने एक और जहां इस गांव को आदर्श गांव का दर्जा दिया, वहीं गुड़ियानी के राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय का नामकरण गुप्त जी के नाम से किया गया। वर्तमान सरकार ने परिषद् की मांग पर रेवाड़ी जिले के गांव मीरपुर स्थित इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय में बाबू बालमुकुंद गुप्त पीठ की स्थापना की है। प्रदेश के मुख्यमंत्री मनोहर लाल ने 2 वर्ष पूर्व गुड़ियानी में गुप्तजी का भव्य स्मारक बनवाने की घोषणा की थी, जिस पर अभी काम होना बाकी है।

परिषद् के राज्यस्तरीय साहित्यिक आयोजनों में पुस्तक मेलों, विचार गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, साहित्यिक यात्राओं आदि के केंद्र में भी गुप्त जी की ही हवेली रही है। कुछ वर्ष पूर्व विमल गुप्तजी द्वारा हवेली में रखे भारतमित्र अखबार के दुर्लभ अंक गुप्त जी की पांडुलिपियां तथा अन्य सारा संबंधित साहित्य हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी को शोध हेतु दे दिया गया।

परिषद् द्वारा करीब दो दशकों से चलाए जा रहे स्मृति अभियान में प्रदेश सरकारों, हरियाणा साहित्य अकादमी, पत्रकारों, साहित्यकारों, साहित्य प्रेमियों तथा सामाजिक

कार्यकर्ताओं का सराहनीय बहुआयामी सहयोग मिला, जिसके चलते परिषद् ने सैंकड़ों छोटे-बड़े आयोजनों से निरंतर प्रदेशव्यापी स्मृति अलख की साधना जारी रखी। परिषद् ने प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि तथा जयंती के अलावा हिंदी सप्ताह के अंतर्गत शिक्षण संस्थानों में साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन किया, जिनमें शताधिक नवप्रकाशित कृतियों का लोकार्पण, पुस्तक चर्चा, पुस्तक मेले, विचार गोष्ठियां, कवि सम्मेलन, कवि गोष्ठियां, साहित्यिक चेतना यात्राएं आदि उनका भावपूर्ण स्मरण करने में सफल रही।

परिषद् संयोजक स्वतंत्रता सेनानी हरिराम आर्य, कारोली (रेवाड़ी) की प्रेरक पहल, संरक्षक 'रहट-चाल' के संपादक नरेश चौहान एडवोकेट (रेवाड़ी) की कोलकाता तक की शोध यात्रा, परिषद् मार्गदर्शक वरिष्ठ साहित्यकार डा. चंद्र त्रिखा एवं वरिष्ठ पत्रकार स्व विजय सहगल (चण्डीगढ़) का उत्कृष्ट बहुआयामी प्रेरक मार्गदर्शन, अध्यक्ष श्यामसुंदर सिंहल (रेवाड़ी) का निष्काम समर्पण, उपाध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार रोहित यादव (सैदपुर, मण्डी अटेली), समाजसेवी कृष्ण भगवान गोयल गुड़ियानी, श्याम बाबू गुप्त गुरुग्राम की हवेली प्रबंधन में समर्पित भूमिका, महासचिव पत्रकार डा. प्रवीण खुराना (झज्जर) का गुप्त जी पर शोध करना, दोहाकार पत्रकार रघुविंद्र यादव (नीरपुर, नारनौल) द्वारा परिषद् द्वारा प्रारंभ की गयी शोध एवं साहित्य की अर्धवार्षिक पत्रिका बाबू जी का भारतमित्र को अपने सीमित संसाधनों से राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट पहचान दिलवाना, सहसचिव कर्मठ कार्यकर्ता ईश्वर सिंह यादव (रेवाड़ी), लेखानिरीक्षक पत्रकार मनफूल शर्मा (मण्डी अटेली) के अलावा परिषद् कार्यकारिणी एवं सैंकड़ों आजीवन सदस्यों में भी प्रदेशभर के रचनाकार, पत्रकार एवं कार्यकर्ता का उत्कृष्ट योगदान रहा है। इस दौरान गुप्त जी के पौत्र सेठ हरिकृष्ण तथा प्रपौत्र विमल गुप्त ने निरंतर कोलकाता-गुड़ियानी को जोड़े रखा है। परिषद् के संस्थापक महासचिव के तौर पर इस पंक्तियों के लेखक का भी थोड़ा योगदान रहा है।

इस अभियान से जुड़कर गुप्त जी के बहुआयामी लेखन तथा गुड़ियानी पर शोधपरक लेखन करने वाले कलमकारों में श्री राजकिशन नैन, डा. संतराम देशवाल, डा. सावित्री वशिष्ठ, डा. केसी यादव, डा. सुभाष चंद्र तथा परिषद् पदाधिकारी रचनाकार शामिल हैं। इस अभियान के दौरान सरपंच राजेंद्र यादव, मीनाक्षी खन्ना का रचनात्मक सहयोग, सामाजिक कार्यकर्ता मनोज गोयल का योगदान प्रेरक रहा।

प्रदेश में अभी तक हिंदी पत्रकारिता के पितामह गुप्तजी के निधन के सौ वर्ष बीत जाने के बावजूद उनके नाम पर पत्रकारिता विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, डाक टिकट आदि का न होना कई यक्ष प्रश्न खड़े करता है। हरियाणा क्षेत्र में प्रारंभ किए गए दो वार्षिक पुरस्कारों में से साहित्य का पुरस्कार बंद कर देना समझ से परे है। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय द्वारा स्नातक पाठ्यक्रम हिंदी में शामिल किए गुप्त जी को अज्ञात कारणों से कुछ ही वर्षों से हटा देना पीड़ा देती है। रेवाड़ी जिले के प्रथम विश्वविद्यालय इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय, मीरपुर में गत तीन वर्षों से स्थापित बाबू बालमुकुंद गुप्त पीठ द्वारा अभी तक उनकी पुण्यतिथि जयंती या किसी अन्य अवसर पर कोई कार्यक्रम न किया जाना, शोध

कार्य में नवाचारी कदम उठाकर उनकी जन्मस्थली जिले के गांव गुड़ियानी को, उनकी हवेली को केंद्र में रखकर उनकी स्मृति को चिरस्थायी एवं प्रेरणापुंज बनाने का रत्तीभर प्रयास न करना पीर देता है।

प्रदेश सरकार के मुखिया द्वारा पंचकूला में आयोजित राज्यस्तरीय नारद जयंती समारोह में गुड़ियानी में गुप्त जी का भव्य स्मारक बनाए जाने की घोषणा पर दो वर्ष बीत जाने पर कोई कार्य नहीं होना प्रशासनिक कार्यशैली पर स्वाभाविक सवाल खड़ा करता है। प्रदेश के अन्य विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा भी वटवृक्षीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनछुए पहलुओं पर नये सिरे से शोधकार्यों की कमी अखरती है। एक ओर देशभर के विश्वविद्यालय गुप्त जी पर निरंतर बहुआयामी शोध पक्ष जारी रखे हुए हैं, वहीं उन्हें विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाता रहा है, वहीं उनकी जन्मस्थली हरियाणा प्रदेश द्वारा अभी तक गुप्त जी को वह मान-सम्मान नहीं मिल पाया है, जिसके वे सही मायनों में हकदार था। जिस प्रदेश के कलमकार ने हिंदी पत्रकारिता, साहित्य एवं भाषा के मोर्चे पर प्रारंभिक निर्णायक मानक स्थापित किए हों, उनको तथा उनके योगदान ससम्मान याद करना, नयी पीढ़ी तक उसे पहुंचाना नैतिक दायित्व एवं प्रदेश व देश के हित में है।

गुड़ियानी के गुड़ के आगे, चलती मिश्री सीस नवाके

राष्ट्रीयता एवं भारतीयता के पर्याय के रूप में लब्ध प्रतिष्ठ बाबू बालमुकुंद गुप्त जी पर अभी कुछ होना बाकी है। विश्वविद्यालयों से अपेक्षा है कि उनके विभिन्न रूपों (संपादक, पत्रकार, लेखक, कवि, निबंधकार, व्यंग्यकार, समीक्षक, भाषाविद्, समालोचक, अनुवादक आदि) के अनछुए पहलुओं पर बहुआयामी शोध हो, प्रदेश व देश के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रमों में उन्हें ससम्मान स्थान दिया जाए, उनके नाम पर पत्रकारिता शोध संस्थान तथा पत्रकारिता विश्वविद्यालयों में उनके स्मारक एवं संग्रहालय स्थापित किए जाएं। हरियाणा साहित्य अकादमी तथा केंद्रीय साहित्य अकादमी उनकी जयंती एवं पुण्यतिथि पर स्थायी कलेण्डर प्रारूप सुनिश्चित कर, साहित्यिक आयोजन करें। दूरदर्शन तथा इलैक्ट्रोनिक मीडिया को उनकी जन्मस्थली गुड़ियानी तथा कर्मस्थली बनारस, मथुरा, कालाकांकर, लाहौर तथा कोलकाता की पृष्ठ भूमि पर आधारित वृतचित्र बनाने चाहिए। हिंदी सिनेमा गुलामी के दौर की इस राष्ट्रभक्त क्रांतिकारी लेखनी पर अनूठी बायोपिक तैयार कर उन्हें सच्चा सिनेमा दे सकता है।

उनके वारिसों और साहित्यिक वारिसों को भी नए सिरे से कुछ नया करने का संकल्प लेना होगा। परिषद् तथा अकादमी की ओर से उनके नाम से अब तक जिन करीब दो दर्जन रचनाकारों को अलंकृत किया गया है, उनकी लेखनी से भी कुछ चिट्ठे अपेक्षित हैं ताकि साहित्य एवं पत्रकारिता के स्वर्णकाल के प्रणेता को प्रदेश व देश में कोई भूलकर भी न भुला पाए तथा उनके द्वारा हिंदी पत्रकारिता, साहित्य एवं भाषा के क्षेत्र में स्थापित किए गए उच्च आदर्श आने वाली पीढ़ियों, खासकर कलमकारों के लिए अक्षरश: पहुंचाया जा सके। पत्रकारिता एवं साहित्य के अलावा भी विभिन्न रूपों में उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनकी जीवन यात्रा एवं कर्मयात्रा भले ही छोटी रही, किंतु इसे सदैव हिंदी पत्रकारिता एवं साहित्य के सुनहरे अध्याय के रूप में याद किया जाएगा।

(लेखक बाबू बालमुकुंद गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद् रेवाड़ी के संस्थापक महासचिव हैं। संपर्क- 9416711141)

गुप्तजी की भाषा एवं शैली

गुप्तजी की भाषा बहुत चलती, सजीव, विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विषय हो, गुप्तजी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढ़ा देती थी। वे पहले उर्दू के एक अच्छे लेखक थे, इससे उनकी हिन्दी बहुत अच्छी चलती और फड़कती हुई होती थी। वे विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेट कर रखते थे कि उनका आभास बीच-बीच में मिलता था, उनके विनोदपूर्ण वर्णात्मक विधान के भीतर विचार और भाव लुके-छिपे से रहते थे। यह उनकी लिखावट की एक बड़ी विशेषता थी।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल

वर्तमान युग को सिडीशन का युग कहना चाहिए

□ झाबरमल शर्मा

(बालमुकुंद गुप्त मूलतः पत्रकार थे और राजनीतिक पत्र भारत मित्र के संपादक थे। अपने संपादकीय, लेखों व टिप्पणियों में बेबाकी से अपना मत रखते थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन शुरु हो गया था। और देश भक्तों तॉको अंग्रेजी दमन का सामना करना पड़ रहा था। राजद्रोह के नाम पर लोगों को जेलों में डाला जा रहा था। अनेक पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी इस काले कानून का शिकार हुए और जेल में गए। गुप्त जी ने इस पर जगह जगह लिखा है। यहां हम बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ में झाबरमल शर्मा द्वारा लिखित गुप्त जी के जीवन परिचय से साभार एक अंश दे रहे हैं। जब तक सरकारी दमन रहेगा तब तक इसकी प्रासंगिकता बनी रहेगी - सं.)

भारतवासियों की उत्कट देशभक्ति की बाढ़ को रोकने के लिए क्रुद्ध होकर अंगरेज सरकार, जिसको लोकमान्य तिलक ने 'नौकरशाही' आख्या प्रदान की थी, दमन पर उतारू हो गई थी। उस समय उसकी क्रूर दृष्टि जन-जागृति के आधार लोक-नायकों के साथ ही साथ पत्रों और पत्रकारों पर पड़ी थी। उसे सर्वत्र राजद्रोह का भूत दिखाई देने लगा था। अतएव अपने फैलाये हुए राजद्रोह के जाल में सबको फांस लेने के लिए वह पागल सी हो रही थी। दमन के पहले दौर की उस विकट स्थिति में गुप्त जी ने लिखा था:-

'वर्तमान युग को सिडीशन का युग कहना चाहिए। अखबारों के सिर पर इस समय सिडीशन की तलवार बनी हुई है। कब किस पर वार हो जाए सो भगवान ही जाने। मार्ली साहब से पंजाब के एक सम्पादक को सिडीशन में पकड़ने की आज्ञा ली गई थी। पर एक की जगह दो की सफाई हुई। 'इंडिया' का एडिटर पिण्डीदास सिडीशन के लिए पांच साल की जेल भेजा गया और कहा गया कि तुम पर दया की जाती है। और 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक यह कह कर फंसा दिया गया कि उसी के प्रेस में 'इंडिया' का सिडीशन वाला नंबर छपा था। जब इस तरह से एक ढेले में दो शिकार हों, तो अखबार लिखने वाले ईश्वर के सिवा और किसकी शरण में जाएं।

"वर्तमान युग को सिडीशन का युग कहना चाहिए। अखबारों के सिर पर इस समय सिडीशन की तलवार बनी हुई है। कब किस पर वार हो जाए सो भगवान ही जाने। मार्ली साहब से पंजाब के एक सम्पादक को सिडीशन में पकड़ने की आज्ञा ली गई थी। पर एक की जगह दो की सफाई हुई। 'इंडिया' का एडिटर पिण्डीदास सिडीशन के लिए पांच साल की जेल भेजा गया और कहा गया कि तुम पर दया की जाती है। और 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक यह कह कर फंसा दिया गया कि उसी के प्रेस में 'इंडिया' का सिडीशन वाला नंबर छपा था। जब इस तरह से एक ढेले में दो शिकार हों, तो अखबार लिखने वाले ईश्वर के सिवा और किसकी शरण में जाएं।"

लाहौर में जो दंगे का मुकद्दमा हुआ उसमें भी दो एक आदमी ऐसे फंसाये गए हैं, जो एकाध टूटे-फूटे अखबार के सम्पदक हैं या संवाददाता। कितने ही आदमी उनकी निर्दोषता सिद्ध करने आये पर किसी की बात पर कुछ ध्यान न दिया गया और वह नाहक जेल में भेज दिये गए। 'पंजाबी' के मालिक और सम्पादक के हाथ में हथकड़ियां ठोकने से एक बार भारत सचिव को लज्जा आई थी। पर इस बार लाहौर में हथकड़ियां भी ठोकी गई और वह सड़कों पर से पैदल निकाले गये और जो लोग दंगे के बहाने से जेल भेजे गये हैं, उनके साथ जेल तक वही गोरा पुलिस अफसर भेजा गया, जिसके लिए दंगा हुआ था।

इधर, बंगाल में देखिये तो यहां भी सिडीशन बेतरह चक्कर लगा रहा है, आगे कुछ न था। सिडीशन नाम-निशान न था। पर अब वह कलकत्ता में घर-घर गली-गली में मौजूद है। 'युगांतर' सम्पादक भूपेंद्रनाथ दत्त इस समय कड़ी जेल भोग रहे हैं। 'साधना-प्रेस' जिसमें वह छपता था, कुर्क कर लिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि सम्पादक का ही दोष न था, उसके प्रेस का भी था और मजा यह कि प्रेस सम्पादक का नहीं, किसी दूसरे का। इससे समझ लेना चाहिए कि आगे सम्पादक ही जेल न जाएंगे, उनके प्रेस भी एक-दो-तीन हो जायंगे।

पंजाब में प्रेस का कसूर बेतरह अधिक माना गया है। 'हिन्दुस्तान' सम्पादक लाला दीनानाथ पर जो अभियोग लगाया

गया है, यदि वह सत्य हो और वह वास्तव में हिन्दुस्तान प्रेस के मैनेजर हों तो कानूनन उनकी कितनी सजा होनी चाहिए थी? केवल 10-12 या 50-100 रुपए जुर्माना। पर जुर्माना कैसा? वह तो पांच साल के लिए जेल में ढकेले गये। वहां से उनका जीते लौटना कठिन जान पड़ता है और उनका 10-12 हजार का प्रेस भी कुर्क हो गया। यह न्याय, यह बर्ताव इस समय अखबार वालों के साथ किया जाने लगा है। युगान्तर-सम्पादक में समझ कुछ अधिक थी, इसी से वह अदालत से न्याय का प्रार्थी नहीं हुआ और उसने सीधी बात कह दी कि मैं न्याय की प्रार्थना नहीं करता, अपने देश की भलाई के लिए जो मुझे उचित मालूम हुआ वह मैंने किया, अब आपको जो भला लगे, वह आप कीजिए। पंजाब में जैसा न्याय हुआ है, उससे भूपेंद्र का विचार बिल्कुल ठीक निकला। पंजाब वालों ने इतने दिन मुकदमा चलाकर बहुत सा रुपया खर्च करके और बहुत से भले आदमियों को सफाई की गवाही के लिए बुलाकर क्या लिया? यदि वह भी विचार से हाथ उठाते तो जो कुछ उनका अब हुआ है, उससे बढ़कर और क्या होता?

इन मुकदमों की पैरवी के समय हाकिमों और सरकारी वकीलों के मुंह से जो बातें निकली हैं, वह बड़ी लज्जाजनक हैं। युगान्तर के मुकदमे के समय मैजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड ने भूपेंद्रनाथ की जमानत दस हजार से तोड़कर अधिक करना चाही और ताने की हंसी से कहा-'इनके लिए तो चंदा होता है न? हाकिम जानते थे कि किस तरह अंगरेज जरा सी बात पड़ने पर चंदा करते हैं। अभी डेलीन्यूज के मामले में चंदे की लिस्ट खुली है। तथापि हिन्दुस्तानी जब वैसा करते तो इन्हें बुरा लगता है।

इसी तरह लाहौर के मुकदमें से सरकारी वकील पेटमैन साहब ने अभियुक्तों की ओर के हर प्रतिष्ठित आदमी की बेइज्जती करने की चेष्टा की है और सरकारी गवाही में ऐसे लोगों की भी तारीफ की गई है, जिनके काम निंदा के योग्य हैं। साहब ने लज्जा छोड़कर अभियुक्तों के आर्यसमाजी गवाहों को नाहक 'रिवेल' यानी बागी कहा है और आश्चर्य की बात है कि अदालत में अक्षर-अक्षर उसकी बात को पूरा किया है, जो कुछ उनके मुंह से निकल गया वही हुआ। इसी कार्रवाई से अंदाजा कर लेना चाहिए कि आगे किस प्रकार का न्याय होगा।

इसी 'सिडीशनी युग' के दौरान पंजाब में लाला जसवंत राय जेल में डाल दिए थे। लाला लाजपतराय को निर्वासित कर दिया गया था और सरदार अजीत सिंह के देश निकाले की तैयारी हो रही थी। लाला लाजपत राय की गिरफ्तारी पर लाहौर के मुसलमानों ने दिवाली मनाई थी। यह संवाद पाकर गुप्तजी का हृदय तिलमिला उठा था। उन्होंने भारत-मित्र इस पर एक लंबा लेख लिखा था। उसी समय उनके स्नेहभाजन 'जमाना'-सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम साहब ने 'मीर तकी' के मरने की सूचना देने के साथ ही उनकी यादगार में एक विशेषांक निकालने की अनुमति चाही थी। इस पर गुप्त जी ने निगम साहब को जो उत्तर लिखा वह उनके व्याकुल हृदय की वेदना को प्रकट करने वाला है। पत्र के एक-एक शब्द से उनके अंतस्तल की व्यथा प्रकट होती है। वे 11-5-1907 के अपने पत्र में निगम साहब को लिखते हैं:-

'मुल्क की हालत बहुत तारीक होती जाती है। हमारी कौम के लाला जसवंतराय जेल में हैं और लाला लाजपतराय जलावतन। बेचारे रावलपिंडी के खतरी, वकील, बारिस्टर हवालात में। जाट अजीत सिंह पर जलावतनी का वारंट।.....इधर जमालपुर में क्या हो रहा है? सुना है, लाहौर के मुसलमानों ने लाजपतराय की गिरफ्तारी पर खुशी जाहिर की। जसवंतराय मुसलमानों के लिए जेल गया, मुसलमान खुश हैं। होश में आओ, जबादानी और शायरी पर लानत। कवाली और ढोलक का जमाना अब नहीं है। मर्द बनो, 'जमाना' से मुल्क की खिदमत करो। मीर के लिए ढोल-मजीरा बजाने वाले मीर पेटू बहुत हैं।

इस बार होली के अवसर पर लाहौर से समाचार आया कि 'पंजाबी' के स्वामी और संपादक श्री जसवंतराय एवं श्री अथावले जी को कठिन कारावास और जुर्माने की दण्डाज्ञा सुना दी गई और वे जमानत पर छूटे हैं। भारत मित्र की होली की संख्या निकालने की तैयारी थी। उसी समय गुप्त जी ने 'फूलों की वर्षा', शीर्षक लेख लिखा। वह लेख उनकी देशभक्ति और सहृदयता का चित्र है। एक शुष्क घटना को कितनी सरसता का रूप दे दिया था उन्होंने, देखिये —

बसंत ऋतु है, फूलों का मौसम है। होली का अवसर है। हिंदुओं के लिये यह बड़े ही आनंद और हर्ष का समय होता है। पर इस आनंद को मिटाने के लिये पंजाब के छोटे लाट रिवाज साहब एक अच्छा शगूफा छोड़े जाते हैं। पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे कि लाहौर के 'पंजाबी' नामक पत्र के मालिक और संपादक को कड़ी जेल और जुर्माने की सजा हुई है। इस देश के शिक्षित समाज के हृदय पर यह खबर पत्थर की भांति गिरी है।।

एक पुलिस कानिस्टबल बजीराबाद में मारा गया था, 'पंजाबी' के मालिक को खबर लगी कि वह पुलिस सुपरिटेंडट की गोली से मारा गया है, क्योंकि वह साहब के कहने से उनके मारे हुए सुअर को नहीं उठाता था। पंजाबी ने यह खबर लिखकर सरकार से चाहा था कि इसकी जुडीशल तहकीकात हो, पर सरकार ने उसकी जरुरत नहीं समझी। जरुरत समझी, इस बात की कि 'पंजाबी' को सजा दिलावे। उसने अपनी तरफ से नालिश की और 'पंजाबी' पर यह इलजाम लगाया कि यह अंग्रेज और हिंदुस्तानियों में विरोध फैलाने के लेख लिखता है। कई महीनों से यह मुकदमा लाहौर के

जिला हुजूर की अदालत में चलता था। गत पूर्व शुक्रवार को उसका फैसला हो गया है। पत्र के मालिक लाला जशवंतराय को मजिस्ट्रेट ने दो साल की कड़ी जेल और 1000 रुपए जुरमाने की सजा दी है। इससे अधिक सजा देने का उनको अधिकार ही न था, क्योंकि जिस धारा से यह मुकदमा चलाया गया था, उसमें इस अपराध के लिये अधिक-से-अधिक इतनी ही सजा लिखी है। संपादक को 6 महीने जेल और 200 रुपए जुरमाने की सजा दी।

मजिस्ट्रेट को कुछ और भी अधिकार था, वह भी आपने दिखाया। अर्थात एक ही जंजीर से बंधी हुई हथकड़ी का एक कड़ा मालिक के हाथ में था और दूसरा संपादक के हाथ में पहनाया गया। डाका डालने वालों के लिये भी इस देश की न्यायवान सरकार के पास इस हथकड़ी से बढ़कर और कुछ नहीं है।

यह तो मजिस्ट्रेट के अधिकार की बात हुई। अब आगे जेल की कैफियत सुनिये। कोई तीन घंटे ही उक्त दोनों सज्जन जेल में रहने पाये, इसके बाद वह जमानत पर छुड़वा लिये गए थे, पर इतनी देर में उन पर जेल के बड़े-बड़े अधिकार भी पूरे कर दिखाये गये। पत्र के मालिक लाला जशवंतराय की आंखें कमजोर हैं, चश्मे के बिना उनको दिखाई नहीं देता। जेल में उनके कपड़ों के साथ उनका चश्मा भी उतारा जाने लगा। उन्होंने जेलवालों से प्रार्थना की कि चश्मा उतार लिया जाएगा तो मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देगा। इसका उत्तर मिला कि 'चुप रहो' और चश्मा उतार लिया गया। पर यहीं तक अधिकार समाप्त नहीं हुआ। मालिक और संपादक दोनों के कपड़े उतरवा लिये गये और उनको जेल के निहायत सड़े और बदबूदार कपड़े पहना दिये गये। फिर लाला जशवंतराय जेल के एक पुराने कैदी के सुपुर्द किये गये। उसने उनको एक चक्की दिखाई और कई सेर मक्की लाकर उनके सामने रखी कि इसे खूब महीन पीसो। अच्छा न पीसोगे तो सुपरिटेंडंट तुम्हें सजा देगा। सभ्यता का कितना ऊंचा नमूना है। लार्ड मिंटो और मि. मार्ली देखें कि भारतवर्ष की जोलों में उनकी यूनिवर्सिटी की डिग्री पाये हुए एम. ए. से चक्की पिसवाई जाती है। इस विद्वान पुरुष ने किसी को मार नहीं डाला, किसी बादशाह पर बम का गोला नहीं फेंका, किसी का घर नहीं लूटा, कहीं आग नहीं लगाई, वरंच महाराज एडवर्ड की प्रजा में से एक गरीब मुसलमान के मारे जाने की खबर सरकार तक पहुंचाई थी कि उसके मारने का शक लोगों को किस पर है। इसका उसे यह इनाम मिला।

इतने कष्टों का सामना होने पर भी अभियुक्त घबराये नहीं और न उन्होंने माफी मांगकर अपनी सच्चाई को धूल में मिलाया। मजिस्ट्रेट की दी हुई सजा को उन्होंने धन्यवाद के साथ स्वीकार किया। इसी से जो लोग वहां खड़े थे उन्होंने अभियुक्तों के हथकड़ी में फंसे हुए हाथों से हाथ मिलाकर उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई और साबित किया कि अच्छे काम के लिये हथकड़ी हाथ में पड़े तो भी वह इज्जत की चीज है और दूसरे भी उसकी पैरवी करने को तैयार हैं। जिस समय पुलिस वाले सवारों के पहरे के साथ अभियुक्तों को गाड़ी में बिठाकर ले चले तो दूर तक उनकी गाड़ी पर लोग 'वंदेमातरम' की 'ध्वनि के साथ फूलों की वर्षा' करते चले गये। फिर जब वह जमानत पर जेल से छुड़ाये गये तो लोग वहीं फूलों की मालाएं और फूलों के टोकरे लेकर पहुंचे। उनके गले में फूलों की मालाएं पहिनाई और दूर तक उन पर फूलों की वर्षा करते चले गये।

***इतने कष्टों का सामना होने पर भी अभियुक्त घबराये नहीं और न उन्होंने माफी मांगकर अपनी सच्चाई को धूल में मिलाया। मजिस्ट्रेट की दी हुई सजा को उन्होंने धन्यवाद के साथ स्वीकार किया। इसी से जो लोग वहां खड़े थे उन्होंने अभियुक्तों के हथकड़ी में फंसे हुए हाथों से हाथ मिलाकर उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई और साबित किया कि अच्छे काम के लिये हथकड़ी हाथ में पड़े तो भी वह इज्जत की चीज है और दूसरे भी उसकी पैरवी करने को तैयार हैं।* जिस समय पुलिस वाले सवारों के पहरे के साथ अभियुक्तों को गाड़ी में बिठाकर ले चले तो दूर तक उनकी गाड़ी पर लोग 'वंदेमातरम' की 'ध्वनि के साथ फूलों की वर्षा' करते चले गये।**

यह वर्षा यहीं तक समाप्त नहीं हुई। पंजाबियों की उनके साथ यहां तक सहानुभूति है कि उसी दिन संध्या समय जब मि. गोखले रेलवे स्टेशन से स्वागत करके लाये गये तो उनको भी मि. गोखले की गाड़ी में बिठाया। कई घंटे तक यह जुलूस लाहौर के बाजारों में घूमा था। इस बीच में बराबर फूलों की वर्षा होती रही। छतों और खिड़कियों से स्त्रियां और लड़कियां उन पर फूल फेंकती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि जो उनके भारी से भारी कष्ट का दिन था, वही उन पर फूलों की वर्षा होने का ता। जेल आदि का कष्ट उन्होंने तीन घंटे सहा और फूलों की वर्षा उन पर कितने ही घंटे हुई। सज्जनों पर विपद सदा पड़ती आई है। घोर परीक्षा में पड़कर जो पूरे उतरते थे उन्हीं वीरों पर देवगण आकाश से फूल बरसाते थे। ... इससे पंजाबी के मालिक लाला जशवंतराय और संपादक श्रीमान् अथावले को हम बसंत की बधाई देते हैं। यह बसंत मानो उन्हीं के लिये है। समीर उन्हीं के यश का सौरभ चारों और फैला रहा है। कोकिल उन्हीं की कीर्ति के मीठे गीत गाती है।

(लेखक ने गुप्त स्मारक ग्रंथावली व निबंधावली का संपादित की हैं।)

गुप्त जी-कवि के रूप में

□ रामधारी सिंह 'दिनकर'

स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त का नाम कवि के रूप में कम, आलोचक और निबंधकार के रूप में अधिक विख्यात है। हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास में एक उच्चकोटि के पत्रकार के रूप में भी समाहित है। सुगठित एवं प्रांजल गद्य के वे एक ऐसे आचार्य हो गए हैं, जिनका लोहा आचार्य द्विवेदीजी को भी मानना पड़ा था। किंतु, पद्य भी उन्होंने कम नहीं लिखे और उनके समय में हिन्दी-कविता की जो अवस्था थी, उसे देखते हुए उनके पद्य उपेक्षणीय तो नहीं ही कहे जा सकते।

गुप्तजी की कविता के साथ न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनके समय को ध्यान में रखें तथा यह बात भी याद रखें कि प्राय, पच्चीस वर्ष की उम्र तक हिन्दी भाषा से उनका कोई विशेष संपर्क नहीं था। आरंभ में उन्होंने अपने लिए उर्दू-पत्रकार का जीवन चुना था। हिन्दी के क्षेत्र में तो वे बाद में आए और वह भी मालवीय जी के अनुल्लंघनीय आग्रह के कारण।

तुलसीदास के बाद हिन्दी-साहित्य में सबसे बड़ी क्रांति भारतेन्दु युग में हुई। साहित्य के अन्य क्षेत्रों की बात तो जाने दीजिए, एक कविता के ही क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने क्या परिवर्तन कर दिखाया। इसे वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने भारतेन्दु के पूर्ववर्ती कवि पजनेस और द्विजदेव की रचनाओं के साथ भारतेन्दु -काव्य का तुलनात्मक अध्ययन किया हो। यह ठीक है कि भारतेन्दु-काव्य सरसता उनके उत्तराधिकारियों की रचनाओं में नहीं मिलती, किंतु अपनी रचनाओं के द्वारा भारतेन्दु जी ने साहित्य की भूमि में जो अभिनव बीज गिराये थे, उनमें से एक भी विनष्ट नहीं हुआ तथा उनकी मृत्यु के पचास वर्ष बाद तक हिन्दी-साहित्य में जो भी हरीतिमा विकसित होती रही है, वह किसी न किसी रूप में भारतेन्दु-कालीन क्रांति से संबद्ध है। तफसील में न जाकर हम भारतेन्दु की दो बातों का उल्लेख यहां करना चाहते हैं। पहली बात तो यह है कि भारतेन्दु जी की कितनी ही कविताओं में हम एक ऐसा नवीन स्वर पाते हैं, जो पहले के सभी स्वरों से भिन्न है तथा जो हिन्दी कविता में आगे चलकर उत्पन्न होने वाले रोमांटिक आंदोलन की क्षीण, किंतु सुनिश्चित पूर्व सूचना देता है और दूसरी बात यह है कि भारतेन्दु जी ने पहले-पहल समकालीन दुरवस्थाओं को साहित्य के कोमल हृदय में स्थान देना आरंभ किया तथा कविता के माध्यम का उपयोग व जन-चेतना को जगाने के लिए करने लगे। इस प्रकार वे सिर्फ रोमांटिक आंदोलन के ही पूर्वपुरुष नहीं, बल्कि हिन्दी के प्रगतिवादी आंदोलन के भी पिता के समान हैं।

भारतेन्दु जी ने रोमांटिक धारा की जो सूचना दी थी, वह उनके बाद बहुत दिनों तक इतिवृत्तात्मकता के सिकता-समूह में विलीन-सी पड़ी रही और बीसवीं सदी के दूसरे दशक से पूर्व उसका स्पष्ट उद्रेक कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा। किंतु, प्रगतिवादी धारा का जो उत्स उनकी वाणी में फूटा था, उसने कभी विश्राम नहीं लिया तथा उनके उत्तराधिकारियों में से जो भी कवि कविता की ओर उन्मुख हुए, उन्होंने अपने समय की देश-दशा को जरूर प्रमुखता दी।

इस दृष्टि से बाबू बालमुकुंद गुप्त भारतेन्दु के सच्चे वारिसों में से थे। उनके पदों में सौंदर्य की सृष्टि कम, समय के चित्रण का प्रयास कहीं अधिक है। उनका काव्य-काल कांग्रेस के जन्म के तीन-चार साल बाद प्रारंभ होता है। अतएव हम देखते हैं कि राजनीति की ओर वे भारतेन्दु की तरह सावधान रहकर संकेत नहीं करते, बल्कि, उन्हें जो कुछ कहना होता है, उसे वे बड़ी ही निर्भीकता से कह जाते हैं। स्वदेशी आंदोलन के समय उन्होंने जो कविताएं लिखी थीं, वे तो प्रायः उतनी ही निर्भीक हैं, जितनी कांग्रेस आंदोलन के समय लिखी गई, अन्य कवियों की कविताएं मानी जा सकती हैं। इंग्लैंड में लिबरल पार्टी की जीत के समय 1906 ई0 में उनकी 'पालिटिकल होली' नामक जो रचना 'भारतमित्र' में छपी थी, उसमें उन्होंने बड़ी स्पष्टता के साथ उस सिद्धांत का निरूपण कर दिया था, जिस पर भारतवर्ष प्रायः सन् 42 तक चलता रहा:

ना कोई लिबरल न कोई टोरी,
जो परनाला सोही मोरी
दोनों का है पन्थ अघोरी
होली है, भई होली है।
करते फुलर विदेशी वर्जन
सब गोरे करते हैं गर्जन

जैसे मिण्टो वैसे कर्जन

होली है, भई होली है।

उन्नीसवीं सदी के अपरार्द्ध का भारतवर्ष एक अपमानित, प्रताड़ित, रुग्ण और दुर्भिक्ष-पीड़ित देश था। अंग्रेजों ने अपने शासन के साथ देश की छाती पर जो अनेक अभिशाप लादे थे, उनमें से दीनता, अकाल और प्लेग की भयंकरता अत्यंत विकराल थी तथा हिन्दी के तत्कालीन कवि शासकों को किसी भी प्रकार क्षमा करने की मुद्रा में नहीं थे। प्लेग को तो भारतवासी सीधे अंग्रेजों की देन समझते थे, जो बात बिल्कुल ठीक भी थी। गुप्तजी ने 'प्लेग की भुतनी' नामक जो विचित्र कविता लिखी थी, उसमें एक स्थान पर हम प्लेग को अंग्रेजों पर ही टूटते देखते हैं।

आवो आवो रे अंगरेज।

ठहरो ठहरो भागे कहां? करके रेजारेज।

प्लेग को, उसे भारत में लाने वाले अंगरेजों पर ललकारने में जो एक प्रतिशोधात्मक भाव है, वह सहज ही समझ में आ जाता है। इसी कविता में गुप्तजी ने बूढ़ों पर भी एक कटु व्यंग्य किया है, जैसा व्यंग्य प्रत्येग युग के अल्हड़ नौजवान अपने समय के सत्तारूढ़ व्यस्क लोगों को किया करते हैं। प्लेग कहती है:-

कच्चे कच्चे लड़के खाऊं, युवती और जवान,

बूढ़े को नहीं हाथ लगाऊं, बूढ़ा बेईमान।

जवानी का अर्थ है साहस, त्याग और प्रयोग करने की आकांक्षा है। बुढ़ापे की निशानी अगति, रक्षण और अनुदारता है। गुप्तजी का वोट जवानी के पक्ष में था। सर सैयद अहमद खां ने मुसलमानों को कांग्रेस से बचे रहने का जो उपदेश दिया था, उससे गुप्तजी तिलमिला उठे थे और अपना क्षोभ उन्होंने 'सर सैयद का बुढ़ापा' नामक लंबी कविता में प्रकट किया था, जिसकी आरंभिक पंक्तियां ही भयंकर प्रहार करने वाली थीं:-

बहुत जी चुके बूढ़े बाबा, चलिये मौत बुलाती है,

छोड़ सोच मौत से मिलो जो सबका सोच मिटाती है।

उन्नीसवीं सदी के अपरार्द्ध के कवि अपने देश की दरिद्रता और समाज में फैली हुई विषमता से किस प्रकार ऊबे हुए थे, यह बात भी 'सैयद का बुढ़ापा' शीर्षक कविता से स्पष्ट मालूम होती है। आश्चर्य यह है कि आज हम अपने को प्रगतिवादी सिद्ध करने के लिए कविता में जितनी दलीलों को एकत्र करने के आदी हो गए हैं, वे सारी दलीलें गुप्तजी ने बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ पहले ही उपस्थित कर दी थीं:-

'हे धनियो! क्या दीन-जनों की नहि सुनते हो हाहाकार?
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।'

'भूखों की सुधि उसके मन में महिये किस पथ से आवे,
जिसका पेट मिष्ट भोजन से ठीक नाक तक भर जावे।'

'फिर भी क्या नंगे-भूखों पर दृष्टि नहीं पड़ती होगी?
सड़क कूटने वालों से तो आंख कभी लड़ती होगी।'
'कभी ध्यान में उन दुखियों की दीन-दशा भी लाते हो?

उन्नीसवीं सदी के अपरार्द्ध का भारतवर्ष एक अपमानित, प्रताड़ित, रुग्ण और दुर्भिक्ष-पीड़ित देश था। अंग्रेजों ने अपने शासन के साथ देश की छाती पर जो अनेक अभिशाप लादे थे, उनमें से दीनता, अकाल और प्लेग की भयंकरता अत्यंत विकराल थी तथा हिन्दी के तत्कालीन कवि शासकों को किसी भी प्रकार क्षमा करने की मुद्रा में नहीं थे।

'जनको पहरों गाड़ी घोड़ों के पीछे दौड़ाते हो।'
'लू के मारे पंखे वाले की गति वह क्योंकर जाने?
शीतल खस की टट्टी में जो लेटा हो चादर ताने।'

'जिनके कारण सब सुख पाये जिनका बोया सब जन खाय,
हाय हाय नित उनके बालक भूख के मारे चिल्लाये।'
'हाय जो सबको गेहूं दे वे ज्वार बाजरा खाते हैं,
वह भी जब नहि मिलता तब वृक्षों की छाल चबाते हैं।'

इन पंक्तियों में शैली का निखार तो नहीं है, जो आज देखने में आता है, किंतु कौन कह सकता है कि इनमें निरूपित किया गया सत्य कहीं से भी कमजोर है?

सर सैयद की फिलासफी ने देश का सत्यानाश किया। अगर सर सैयद का जन्म इस देश में नहीं हुआ होता, तो संभव था मुसलमान कुछ अधिक हिम्मत से काम लेते और अपनी किस्मत की डोर कांग्रेस के साथ बांधकर राष्ट्रीयता को शक्ति पहुंचाते, जिसके लिए कांग्रेस उनसे बार-बार प्रार्थना कर रही थी। सर सैयद का विरोध उर्दू-साहित्य में महाकवि अकबर ने बड़े जोर से किया था। किंतु, हिन्दी-कविता में यह विरोध शायद गुप्तजी की ही कविता में ध्वनित हुआ है।

अकबर से गुप्त जी की समता और भी कई बातों को लेकर है। दोनों ही अंगरेजों के खिलाफ और उनके आलोचक थे। दोनों ही यूरोप से आने वाली रोशनी को नापसंद करते थे और दोनों ही

सुधारों के नारों से घबराते थे तथा दोनों ही ने अपने मतामत के प्रकाशनार्थ कटूक्तिपूर्ण प़द्यों का माध्यम चुना था। किचनर और कर्जन के झगड़े में जब कर्जन की हार हुई, तब अकबर ने चार पंक्तियों का एक बंद लिखा था, जिसकी 'देख लो यह जन पै नर गालिब हुआ।' नामक पंक्ति बहुत ही प्रसिद्ध है। उन्हीं दिनों गुप्तजी भी कितनी ही पंक्तियों में कर्जन की पूरी खबर ले रहे थे। किचनर सेनापति था और कर्जन वायसराय। अतएव वायसराय के हारने पर उन्होंने आनन-फानन में लिख दिया:-

'कलम करे कितनी ही चर-चर
भाले के वह नहीं बराबर।'

एक बार कर्जन ने हिन्दुस्तानियों को झूठ कह दिया था, जिस पर अकबर ने साहब ने लिखा था-

'हम झूठे हैं, तो आप हैं झूठों के बादशाह।'

अकबर साहब की पंक्ति बड़ी ही सटीक बैठती है, किंतु, इसी घटना पर गुप्तजी ने भी कर्जन की काफी खबर ली थी:-

'मन में कुछ मुंह में कुछ और-यही सत्य है कर लो गौर
झूठ को जो सचकर दिखलावे-सोही सच्चा साधु कहावे
मुंह जिसका हो सके न बंद-समझो उसे सच्चिदानंद।'

सुधारों के प्रति जिस अनास्था का परिचय अकबर ने दिया है, उसी से गुप्तजी भी आक्रांत थे। प्राचीन परंपरा के प्रतिनिधि होने के कारण वे सुधार के प्रत्येक आंदोलन को शंका की दृष्टि से देखते थे। कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होता है, मानो सुधारों के नारों के बीच वास्तविकता ही उन्हें लुप्त होती दिखाई दे रही हो:-

हाथी यह सुधार का लोगो, पूंछ उधर भई पूंछ इधर
आओ, आओ पता लगाओ, सूंड किधर भई सूंड किधर।
इधर को देखो, उधर को देखो, जिधर को देखो, तुम ही तुम
बोल रहा हूं, चाल रहा हूं, सूंड भी गुम भई मुंह भी गुम।

गुप्तजी ने प्रकृति-वर्णन और भक्ति के भी पद्य लिखे हैं। किंतु, साहित्य के इतिहास में उनका वैसा महत्व नहीं, जैस उनकी हास्य-मिश्रित कटुक्तियों का। ये कटुक्तियां ही उनका वह शस्त्र थीं, जिनके माध्यम से वे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर वार करते थे। आगे चलकर रूप तो इनका भी बदल गया। किंतु, यह धारा बहती ही गई और गुप्तजी से बाद वाला साहित्य इस धारा को अब तक भी पुष्ट ही करता आया है।

गुप्तजी ने काव्य की प्रेरणा पं. प्रतापनारायण जी मिश्र से ली थी और मिश्र जी के दृष्टिकोण का उन पर गहरा प्रभाव भी पड़ा था। इन महापुरुषों की कविताएं आज उतनी ही गंभीर भले ही न दीख पड़ें, पर उस समय समाज में जागरूकता तथा निर्भयता उत्पन्न करने में उन्होंने बड़ा काम किया था।

(लेखक ने संस्कृति के चार अध्याय पुस्तक लिखी है। राष्ट्र कवि हैं।)

ये शब्द वैसे के वैसे मेरे भीतर लिखे हैं

□ मैथिलीशरण गुप्त

स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्तजी उन दिनों असमय में ही अपनी जीवन यात्रा पूरी कर रहे थे, जिन दिनों मैंने अपनी साहित्य- सेवा आरंभ की थी। उनके लिए मेरे मन में तब भी बड़ा सम्मान था और वह आज भी वैसा ही बना है। उन दिनों वे 'भारतमित्र' का सम्पादन करते थे। हम लोग उत्सुकतापूर्वक प्रति सप्ताह उसकी प्रतीक्षा किया करते थे। यदि कभी उसके आने में एक-आध दिन का विलंब हो जाता था तो उस दिन की डाक सूनी-सूनी सी लगती थी।

'भारतमित्र' में भी अपनी रचना छपाने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका था। एक बार दिवाली के अवसर पर मैंने कुछ पद्य लक्ष्मी-पूजन पर लिखकर उन्हें भेजे थे। तब तक मैंने बोलचाल की भाषा में लिखने का प्रयास प्रारंभ नहीं किया था। परन्तु जो भाषा मैं पद्यों में व्यवहार करता था, उसे ब्रजभाषा भी कैसे कहूं? मुझे बड़ा भरोसा था कि मैंने गणवृत्तों का प्रयोग किया है। परन्तु बाबू बालमुकुंद जी पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने मुझे स्पष्ट लिख भेजा था कि 'कविता लिखने का यह ढंग बड़ा वाहियात है। देखूंगा, यदि छाप सका।' परन्तु दो-चार दिन पीछे बिना छापे ही उन्होंने वे पद्य एक लिफाफे में रखकर मुझे लौटा दिये। फिर कुछ लिखने का मुझे साहस न हुआ। वे पद्य न जाने कहां गये। एक चरण भी मुझे स्मरण नहीं। परन्तु ये शब्द वैसे के वैसे मेरे भीतर लिखे हैं-'कविता लिखने का यह ढंग बड़ा वाहियात है। - बात उनकी ठीक थी, यह मैं सच्चे मन से मानता हूं। तथापि यह भी यथार्थ है कि इससे मैंने अपना उत्साह नहीं छोड़ा, भले ही वह मेरा दुस्साहस रहा हो।

उन दिनों सनातन-धर्म और आर्य-समाज के वाद-विवाद भी हुआ करते थे। इस संबंध की उनकी एक हंसी की रचना इस प्रकार की है-

अल्ला गॉड औ निराकार में भेद न जानो भाई रे,
इन तीनों को अपने मन में मानो भाई-भाई रे।
गॉड कभी मूरत न पूजी अल्ला न तुडवाई रे,
निराकार ने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे।

हिंदी कविता के विकास में
बालमुकुंद गुप्त का योगदान

□ हरिमोहन शर्मा

भारतेंदुयुगीन प्रतिनिधि साहित्यकारों में बालमुकुंद गुप्त का महत्वपूर्ण स्थान है। आप अपने समय के बेहद सजग पत्रकार थे जो मुंशी प्रेमचंद की तरह उर्दू से हिंदी में आए थे। आपने संपादकीय लेख तो लिखे ही, इतिहास, राजनीति, लिपि तथा भाषा और व्याकरण विषयक निबंध भी लिखे। आपके 'शिवशंभु के चिट्ठे और खत' अत्यंत प्रसिद्ध हुए जो आपने भंगड़ ब्राह्मण शिवशंभु शर्मा के नाम से तत्कालीन वायसराय एवं गवर्नर लार्ड कर्जन (1899-1905) को संबोधित करके लिखे थे। 'भारतमित्र' अखबार में बालमुकुंद गुप्त ने अंग्रेजी राज्य की भारत विरोधी नीतियों की प्रखर आलोचना की है। गुप्त जी ने अनेक कविताएं भी लिखी हैं, जो इनके गद्य के सामने दब सी गई हैं। इनमें भी साम्राज्य विरोध की अनुगूंज और लोकजागरण के प्रति निष्ठा देखी जा सकती है। ठीक ही कहा गया है कि " गुप्त जी व्यंग्यकार, शब्दों के प्रयोग और व्याकरण के सूक्ष्म तत्त्वों के विशेषज्ञ, इतिहास और राजनीति के विद्वान, जीवनी-लेखक, हिंदी भाषा के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सैनिक और अपनी पत्रकार कला द्वारा जनता में नवीन राष्ट्रीय और जनतांत्रिक चेतना फैलाने वाले लेखक थे। " (रामविलास शर्मा) इसप्रकार बाबू बालमुकुंद गुप्त ने अपने युग के सजग प्रहरी के रूप में हिंदी साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया जो आज डेढ़ सौ साल बाद भी ज्यों का त्यों अक्षुण्ण है।

बालमुकुंद गुप्त ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत उर्दू में लेख लिखने, उर्दू में पत्रकारिता करने तथा उर्दू-फारसी में तुकबंदी करने से की। आप समस्यापूर्ति के माध्यम से उर्दू कविता की ओर बढ़े। इनकी उर्दू कविता पारंपरिक होते हुए भी उससे थोड़ी अलग थी। इस विषय में बालमुकुंद ग्रंथावली के संपादक डा. नत्थन सिंह लिखते हैं ''गुप्त जी का उर्दू-काव्य, उर्दू शायरी के परम्परागत रूप का एक सीमित मात्रा में स्पर्श करते हुए भी उससे अलग है। उसमें न मयखाने की बहुतायत है, न साकीवाला की, न उसमें माशूक की शोखियों का चित्रण है, न आशिक के शिकवे-शिकायत का बाहुल्य, उसमें न दजला-फरात तथा कोहकाफ की प्राकृतिक सुषमा का अंकन है, न युग यथार्थ से पलायन। उसमें प्रकृति के बिम्ब हैं और मानव की अनुभूति की अभिव्यंजना भी। वह न कोरी कल्पना का महल खड़ा करती है और न कला के उपयोगितावादी पक्ष से बचती है। वह नीति, संयम और विवेक के उपदेश भी देती है और राष्ट्र की प्रगति के साथ इन्सान को जोड़ना चाहती है।''

हिंदी पत्रकारिता में बालमुकुंद गुप्त सन 1889 में पं. मदन मोहन मालवीय की प्रेरणा से आए। 'हिंदोस्थान' अखबार में प्रतापनारायण मिश्र का सानिध्य मिला। हिंदी में लेखनी चल पड़ी। फिर तो हिंदी साहित्य की प्रत्येक विधा में कलम चलाई। इसी समय गुप्त जी ने हिंदी कविता लिखना आरंभ किया था। बालमुकुंद की कविताएं प्रकृतिपरक, देशभक्ति प्रधान, देवस्तुतियां तथा सामयिक राजनीति से जुड़ी हैं। लोक में प्रचलित होली, जोगीड़ा आदि भी आपने लिखे हैं। इन सभी में हास-परिहास के साथ व्यंग्य-विनोद और कहीं-कहीं तीक्ष्ण कटाक्ष मिलता है।

दरअसल बाबू बालमुकुंद गुप्त चाहे पत्रकारिता कर रहे हों, लेख या निबंध लिख रहे हों अथवा कविता, तत्कालीन भारत की दशा-दुर्दशा उसके केंद्र में रहती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समान ये लोक से संवाद करते हुए जनता को जाग्रत करना उसे सुधारना तथा शिक्षित करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उल्लेखनीय है कि उस समय आधुनिक हिंदी कविता का जन्म हो रहा था। ब्रज भाषा की भक्ति एवं श्रृंगार प्रधान काव्य-परंपरा तब विद्यमान थी। ये उस परंपरा में सेंध लगाते हुए अपना नया प्रयोग कर रहे थे तथा प्रचलित बोलचाल की हिंदी में अपने समय को अभिव्यक्त कर हिंदी कविता को नया स्वरूप प्रदान कर रहे थे। यह कहना अनुचित न होगा कि ये आधुनिक कविता को देश की बदली हुई स्थिति और मनोवृत्ति के मेल में लाने के लिए भारतेंदु मंडल के अन्य साहित्यकारों के साथ प्रयत्नशील थे। इसमें बालमुकुंद गुप्त जी को पर्याप्त सफलता भी मिली। अब इनकी कविता को थोड़ा विस्तार से देखते हैं।

बालमुकुंद गुप्त अपनी कविताओं को तुकबंदी का नाम देते हैं। जैसे कि कहा गया कि गुप्त जी की कविता लेखन का प्रारंभ कालाकांकर 'हिंदोस्थान' पत्र से होता है। इनके अनुसार प्रतापनारायण मिश्र ने इन्हें तुक लगाना सिखाया। इनकी पहली कविता 'भैंस का स्वर्ग', दूसरी 'वसंतोत्सव' और तीसरी 'सर सैयद का बुढ़ापा' है। बालमुकुंद गुप्त के अनुसार इनकी चौथी कविता 'पिता' है, जो ब्रज भाषा में लिखी गई है। ये सभी कविताएं 'हिंदोस्थान' में 1889-90 में छपी। 'भैंस का स्वर्ग' पहली कविता होने के बावजूद उसमें कच्चापन नहीं मिलता। उसमें भैंस के जीवन-संसार का भावपूर्ण चित्र है। वह भी गांव-ज्वार की भाषा का प्रयोग करते हुए । पड़िया, डाबर, खली-बिनौला, झड़बेरी, ग्वार जैसी पदावली में। नीचे दिए पदों से भैंस का साक्षात् बिंब उपस्थित हो जाता है –

डाबर की दलदल में घुटनों तक है दूब खड़ी।
वहां रौंथ करती फिरती है लिये सहेली बड़ी-बड़ी।
पूंछ हिलाती है प्रसन्न मन, मनो चंवर अभिराम।
मक्खी मच्छर आदि शत्रु की शंका का नहिं काम।।

***

पड़िया मुंह को डाल थनो में प्यार से दूध चुहकती है।
आप नेह से नितम्ब उसके चाटती है और तकती है।
दिव्य दशा अनुभव करती है करके आंखें बन्द।
महा तुच्छ है इसके आगे स्वर्ग का भी आनन्द।।

***

प्रकृति संबंधी अन्य कविताओं में भी प्रकृति के सौंदर्य का उद्घाटन कवि का अभीष्ट नहीं रहा है। 'वसंत्तोत्सव' कविता हो या 'मेघमनावनि' इन सब में साधारण भारतवासी की पीड़ा या दुख केंद्र में आ जाता है। देवस्तुतियों में भी भारतीयों की दीन दशा का वर्णन अभिव्यक्त होता है। दरअसल वे मानते हैं कि जैसे-जैसे इस तथाकथित सभ्यता (पश्चिमी सभ्यता) का विकास हुआ है प्रकृति-पर्यावरण में बदलाव आया है -

कटे पिटे मिट गये दह सब ढाकों के जंगल,
जिनमें करते थे पशु-पक्षी नित प्रति मंगल।
धरती के जी में छाई ऐसी निठुराई,
उपजीविका किसानों की सब भांति घटाई।

स्पष्ट है कि इस सबसे किसान का जीवन कष्टप्रद होता चला गया है। आज के उपभोक्तावादी समय में क्रमशः यह स्थिति और विस्फोटक और अधिक विकराल हो गई है। कथनीय है कि भारतवर्ष की इस दुर्दशा का कारण वे अंग्रेजों (और अंग्रेजों के द्वारा दी गई सभ्यता) को मानते हैं। उनकी नीतियां ही इस प्रकारकी थीं जिससे अंग्रेजों (अथवा आज के काले अंग्रेजों) का घर तो भरा, पर आम भारतवासी दुर्भिक्ष-पीड़ित, रोगग्रस्त, अभावग्रस्त होता चला गया। ऊपर से उस समय प्लेग आदि की मार उसकी भंयकरता तथा अंग्रेज शासकों की निष्कर्मण्यता बालमुकुंद गुप्त को क्रोधित करती है। भारतवर्ष की इस भंयकर विकरालता के लिए वे सीधे-सीधे अंग्रेजों को दोषी मानते हैं तथा कहीं-कहीं प्रतिशोधात्मक भाव भी रखते हैं। 'प्लेग की भूतनी' कविता के ये अंश पठनीय हैः

मेरे लगी पेट में आग।
हिन्दु-मुसलमान जो पाऊं सबको कच्चा आज चबाऊं।
आंवों आंवों धरूं पेट में जाओगे कहं भाग?
आंवों आंवों रे अंगरेज।।

***

घर आंगन दरवाजे खाऊं चींटी मच्छर डांस।
संप छिपकली मूस छछून्दर सबका चक्खूं मांस।।
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊं युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊं बूढ़ा बेईमान।।

***

यहां बूढ़े को बेईमान कहने का खास संदर्भ है। उनका मानना है कि बूढ़े लोग निर्भीक होकर सत्ता की आलोचना नहीं करते। स्वार्थपरता में लिप्त रहते हैं। दूसरे, अंग्रेजपरस्त मुसलमानों के नेता सर सैयद अहमद खां ने अंग्रेजों के प्रति निष्ठा रखने तथा मुसलमानों को कांग्रेस से दूर रहने की सलाह दी थी। उससे क्षुब्ध होकर 'सर सैयद का बुढ़ापा' कविता लिखी थी इस कविता में वे लिखते हैः

बहुत जी चुके बूढ़े बाबा चलिये मौत बुलाती है,
छोड़ सोच मौत से मिलो , जो सबका सोच मिटाती है।

***

करके द्रोह दीन दुखिया लोगों से क्या पद पाओगे,
अपना नाम बड़ा कर लोगे देश का नाम मिटाओगे।

***

भाई बंधु तुम्हारे सारे दुःख में डुबे रहते हैं
तुम स्वार्थपरता में डूबे क्या सुख इसको कहते हैं।

***

जीता रहना तुम ऐसों का मरजाने का ही सम है
वरंच जीते रहने से तो मर जाना भी उत्तम है।

***

इसे देख यह कहना अनुचित न होगा कि बालमुकन्द गुप्त मुख्यतः प्रखर राजनीतिक कवि हैं। अंग्रेजी शासन की चालबाजियों से जनता को अवगत कराना अपना परम ध्येय समझते हैं। वह भी जन साधारण की बोली-बानी में । इनके टेसु, होली, जोगीड़ा जैसे लोककाव्य रूपो में भी अंग्रेजों के कारनामों का ही उद्घाटन होता है। वे सामान्य जनता को समझाना चाहते हैं कि ब्रिटेन में कोई भी दल शासन

में आए – वे सभी भारतवासियों को गुलाम बनाए रखना चाहते हैं जिससे कि वे उसका दोहन कर सकें। इस लिए टोरी और लिबरल हमारे लिए दोनों एक ही हैं-

टोरी जावें लिबरल आवें। होली है, भई होली है।
भारतवासी खैर मनावें। होली है, भई होली है।

***

कवि की स्पष्ट राय है कि ब्रिटेन की शानो-शौकत हमारे बल पर चलती है। इसलिए उनके किसी प्रकार के झांसे में नहीं आना चाहिए।। 'ताऊ और हाऊ' कविता में उनका कहना है –

फंसे उसी को खूब फंसाओ, नहीं फंसे तो चुप हो जाओ।
देश वेश चूल्हे में जाय, 'सांसो म्हारी करै बलाय'।
खाओ पीओ मजे उड़ाओ, अकड़-अकड़ के शान दिखाओ।

***

अंग्रेज बार-बार यह दिखाते हैं कि हम सभ्य सुशिक्षित हैं तथा आपको भी सभ्य, सुसंस्कृत और सुशिक्षित बनाना चाहते हैं। परन्तु गुप्त जी की राय इसके विपरीत है। अंग्रेज स्वयं को सच्चा, सभ्य और न्याय का पक्षधर कहते हुए भी अन्दर से बहुत क्रूर और अन्यायी हैं। राज-काज में आते ही सब कुछ भूल जाते हैं। सब कायदे कानून दिखावे की चीज बन जाते हैं। 'सच्चाई' कविता में गुप्त जी लिखते हैं।

है कानून जबान हमारी, जो नहीं समझे वही अनारी।
हम जो कहें वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।
सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहां तमीज?
औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।
येही पक्का सच्चापन है, सच कहना है तो कच्चापन है।
बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तौर।
बोले और करे कुछ और, यही सत्य है करलो गौर।

अंग्रेजों की नृशंस व्यवस्था को देखकर बालमुकुंद गुप्त उनकी शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति को लेकर सशंकित हो जाते हैं और मान बैठते हैं कि ये सब हमारे अनुकूल नही हैं। यहां तक कि पश्चिमी शिक्षा के वैज्ञानिक पक्ष तथा उसकी प्रगतिशील मूल्यों को भी अपनी दृष्टि से ओझल कर देते हैं। यही कारण है कि हमारे समाज में फैली कुरीतियों, जात-पात के भेदभाव हटाने तथा समानता लाने को भी वे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। इसी से गुप्त जी शिक्षित स्त्रियों को भी अपनी सहानुभूति नहीं दे पाते तथा उपहास करते हुए उनको चित्रित करते हैं। विधवा विवाह को लेकर उनकी दृष्टि उदार नहीं है। 'सभ्य बीबी' नामक कविता में लिखते हैं -

एक पति मरे करो दूसरा पति विधवा नाम मिटाओ।
पति के मात-पिता को पति ही से पददलित कराओ।।

***

मिले शिक्षिता सभ्या जोरू सुख का सार यही है।

***

बालमुकुंद गुप्त की कविता मे समाज सुधार और स्त्री शिक्षा को लेकर उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत संकुचित दिखाई देता है। दरअसल वे समूची पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता-संस्कृति को अपने लिए अग्राह्य मान बैठते हैं। ऐसे में उसके प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक पक्ष भी उन्हें दिखाई नहीं देते।

कहा जा सकता है कि बालमुकुंद गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से अपने युग को शिक्षित एवं जागरूक करने में सफलता प्राप्त की। भले ही इसमें वे अपनी कविता के कलागत पक्ष को न साध पाए हों, किंतु कविता को नए-नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने तथा उसे बोलचाल की भाषा देने में अवश्य सफल हुए। आधुनिक हिंदी कविता के विकास में कवि बालमुकुंद गुप्त का यही योगदान माना जाएगा।

(लेखक दिल्ल विश्वविद्यालय, दिल्ली में हिंदी विभाग के प्रोफेसर पद से सेवानिवृत हुए हैं)

" गुप्त जी व्यंग्यकार, शब्दों के प्रयोग और व्याकरण के सूक्ष्म तत्त्वों के विशेषज्ञ, इतिहास और राजनीति के विद्वान, जीवनी-लेखक, हिंदी भाषा के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सैनिक और अपनी पत्रकार कला द्वारा जनता में नवीन राष्ट्रीय और जनतांत्रिक चेतना फैलाने वाले लेखक थे। "

\- रामविलास शर्मा

बालमुकुंद गुप्त के निबंधों में व्यंग्य और विनोद

□ गोपाल प्रधान

बाल मुकुंद गुप्त के लेखन के बारे में रामविलास शर्मा की किताब 'परंपरा का मूल्यांकन' में संकलित उनका लेख 'शैलीकार बालमुकुंद गुप्त' महत्वपूर्ण है। इस लेख में उन्होंने लिखा है 'व्यंग्यपूर्ण गद्य में उनके उपमान विरोधी पक्ष को परम हास्यास्पद बना देते हैं।' इस शैली की प्रशंसा करते हुए इसका सामाजिक उपयोग भी रामविलास जी के दिमाग में स्पष्ट था। गुलाम भारत में बालमुकुंद गुप्त के व्यंग्य-विनोद की भूमिका की निशानदेही करते हुए रामविलास जी लिखते हैं 'अपने व्यंग्य शरों से उन्होंने प्रतापी ब्रिटिश राज्य का आतंक छिन्न भिन्न कर दिया। साम्राज्यवादियों के तर्कजाल की तमाम असंगतियाँ उन्होंने जनता के सामने प्रकट कर दीं। अपनी निर्भीकता से उन्होंने दूसरों में यह मनोबल उत्पन्न किया कि वे भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बोलें।' गुप्त जी के निबंधों का संकलन 'निबंधों की दुनिया : बालमुकुन्द गुप्त' के नाम से वाणी प्रकाशन से 2009 में प्रकाशित हुआ। इसकी संपादक रेखा सेठी ने भी लिखा है 'गुप्त जी ने व्यंग्य का प्रयोग एक अस्त्र की तरह किया।उनके व्यंग्य में असहायता का उदघोष नहीं, सकर्मक चेतना है।' ध्यान देने की बात है कि व्यंग्य और विनोद से भरा हुआ लेखन गहरे क्रोध का परिचायक होता है।

अपने निबंध 'व्याकरण-विचार' में खुद गुप्त जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी से 'अनस्थिरता' शब्द के व्याकरणिक रूप से सही या गलत होने पर हुए विवाद के प्रसंग में अपनी विनोदी शैली के बारे में बताया है। किन्हीं लोगों को गुप्त जी द्वारा द्विवेदी जी की आलोचना बुरी लगी थी। उनका उत्तर देते हुए बाल मुकुंद गुप्त अपने आपको आत्माराम कहते हुए बताते हैं कि 'आत्माराम ने अपने लेखों में कटाक्ष से अधिक काम लिया है, पर उसके कटाक्ष हँसी से भरे हुए हैं, विषैला कटाक्ष उसने एक भी नहीं किया। कटाक्ष भी द्विवेदी जी पर नहीं हैं उनके किसी काम पर, या उनकी अगली पिछली दशा पर आत्माराम ने कोई कटाक्ष नहीं किया है।

'आत्माराम के कटाक्ष, उसकी चुलबुली दिल्लगियाँ, मीठी छेड़ जो कुछ है, द्विवेदी जी के लिखने के ढंग पर, उनकी भाषा की बनावट पर, उनके व्याकरण संबंधी ज्ञान पर, उनके दखदरमाकूलात पर, उनके गंभीरता के सीमा-लंघन करने आदि पर हैं।' द्विवेदी जी के प्रसंग में बालमुकुंद गुप्त ने जरूर व्यंग्य करने में लिहाज किया था, व्यंग्य से अधिक हास्य से कामलिया था लेकिन अंग्रेजी राज के प्रतिनिधि लार्ड कर्जन पर व्यंग्य करते हुए उन्हें किसी संकोच की जरूरत नहीं महसूस होती। वैसे भी रेखा सेठी के अनुसार मदन मोहन मालवीय के अखबार 'हिन्दोस्थान' में 'सरकार के विरुद्ध कड़ी टिप्पणियाँ लिखने के कारण उन्हें पत्र से अलग होना पड़ा' था। वे यह भी बताती हैं कि 'हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में यह पहला मौका था जब किसी लेखक को शासन के खिलाफ लिखने के कारण पत्र से अलग कर दिया गया हो। इस सबसे वे ज़रा भी विचलित नहीं हुए।' उनकी इस उग्र उपनिवेशवाद विरोधी स्वाधीनता प्रेमी चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति कलकत्ते के 'भारतमित्र' में छपे 'शिव शम्भु के चिट्ठे' में हुई।

'शिव शंभु के चिट्ठे' में बाल मुकुंद गुप्त का व्यंग्य अंग्रेजी राज के प्रति ऐसे ही क्रोध की अभिव्यक्ति है। इसी कारण यह किताब उनकी अक्षय कीर्ति का स्रोत है। इसके शुरुआत के निबंध 'बनाम लार्ड कर्जन' का आरंभ ही कर्जन से एक व्यंग्यात्मक सवाल से होती है 'आपने माई लार्ड ! जबसे भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करने के योग्य काम भी किया है ? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिये भी कुछ कर्तव्य पालन किया ?' यह उनके सीधे प्रहार की मुद्रा का व्यंग्य है। जब केवल इस व्यंग्य से ही बात पूरी नहीं हुई तो थोड़ा मजाक भी उड़ा लिया। कर्जन के बजट भाषण के बारे में कहा 'आप बारम्बार अपने दो अति तुमराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं।' कोई शासक अपनी उपलब्धियों की गिनती करा रहा है और बाल मुकुंद गुप्त उसे 'तुमतराक' भरे काम कह रहे हैं। सचमुच विक्टोरिया मेमोरियल और दिल्ली दरबार को इस एक वाक्य से गुप्त जी ने हास्यास्पद बना दिया। दिल्ली दरबार के तामझाम की खिल्ली उड़ाने में उनकी कलम बेहद सृजनात्मक हो जाती है। जुलूस के हाथियों का जिक्र करते हुए लिखते हैं 'जहां जहां से वह जुलूस के हाथी आये, वहीं वहीं सब लौट गये। जिस हाथी पर आप सुनहरी झूलें और सोने का हौदा लगवाकर छत्र-धारण-पूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब सहित जिसका था, उसके पास चला गया।' इसमें कर्जन की हाथी पर सोने के

हौदे और छत्र का जिक्र आडंबर की व्यर्थता को जाहिर करने के लिए हुआ है। दिल्ली दरबार को तमाशा साबित करते हुए दूसरे चिट्ठे में लिखा 'देखते देखते बड़े शौक से लार्ड कर्जन का हाथियों का जुलूस और दिल्ली दरबार देखा। अब गोरे पहलवान मिस्टर सेण्डो का छाती पर कितने ही मन बोझ उठाना देखने को टूट पड़ते हैं।' इसके बाद सीधे कर्जन का मजाक उड़ाते हैं 'लार्ड कर्जन भी अपनी शासित प्रजा का यह गुण जान गये थे, इसी से श्रीमान ने लीलामय रूप धारण करके कितनी ही लीलाएँ दिखाईं।' लीला शब्द का यह मारक व्यंग्यात्मक इस्तेमाल किया गया है।

मजाक उड़ाते हुए उनके भीतर का शुद्ध हिंदुस्तानी देहाती जाग उठता है जिसके लिए आडंबर का कोई मूल्य नहीं होता। शासकों द्वारा अपनी मूर्ति लगवाने के शौक पर उनकी टिप्पणी देखिए। मूर्तियों के बारे में कहते हैं 'एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है।' मूर्ति लगवाने की सारी गंभीरता पर यह दृश्यात्मक हास्य भारी पड़ता है। दिल्ली दरबार उनकी विनोद वृत्ति को बारंबार उकसाता है 'वह ऐसा तुमतराक और ठाठ-बाठ का समय था कि स्वयं श्रीमान वैसराय को पतलून तक का रचोबीकी पहनना और राजा महाराजों को काठ की तथा ड्यूक आफ कनाटको चांदी की कुरसी पर बिठाकर स्वयं सोने के सिंहासन पर बैठना पड़ा था।' वायसराय की कठिनाई का अनुमान तो कीजिए ! अपना वैभव इंग्लैंड में दिखाने की कर्जन की लालसा पर इस तंज की मार का अंदाजा लगाना कठिन है 'यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारत को विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायत वालों को समझा सकते कि भारत क्या है और श्रीमान का शासन क्या ? आश्चर्य नहीं, भविष्य में ऐसा कुछ उपाय निकल आवे। क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा।'

कर्जन के दूसरी बार नियुक्त होने के बाद के 'श्रीमान का स्वागत' शीर्षक चिट्ठे में तो शुरुआत ही विष बुझे व्यंग्य से होती है 'माई लार्ड ! आपने इस देश में फिर पदार्पण किया, इससे यह भूमि कृतार्थ हुई। विद्वान बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है। आपमें उक्त तीन गुणों के सिवा चौथा गुण राजशक्ति का है। अत: आपके श्रीचरण-स्पर्श से भारत भूमि तीर्थ से भी कुछ बढ़कर बन गई।'

मजाक उड़ाते हुए उनके भीतर का शुद्ध हिंदुस्तानी देहाती जाग उठता है जिसके लिए आडंबर का कोई मूल्य नहीं होता। शासकों द्वारा अपनी मूर्ति लगवाने के शौक पर उनकी टिप्पणी देखिए। मूर्तियों के बारे में कहते हैं 'एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है।'

शासक के समक्ष आम मनुष्य की हैसियत को व्यंग्यपूर्वक प्रस्तुत करते हुए लिखा 'शिवशम्भु को कोई नहीं जानता। जो जानते हैं, वह संसार में एकदम अनजान हैं। उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता।' भारत की सीमाओं की सुरक्षा की कर्जन की चिंता के सिलसिले में बाल मुकुंद गुप्त की भाषा ही मजाक उड़ाने वाली हो गई है। उसके लिए 'फौलादी दीवार' पदावली का इस्तेमाल ही बनने वाली चीज को हल्का साबित करने के लिए हुआ है। यहां तक कि सुरक्षा की जिस धारणा को शासन महिमा मंडित कर रहा था उसे 'इस देश की भूमि को कोई बाहरी शत्रु उठाकर अपने घर में न ले जावे' कहकर व्यर्थ करार दे दिया गया है। 'सरहद को लोहे की दीवार से मजबूत करने' की तुलना करते हुए लिखा कि 'यहां की प्रजा ने पढ़ा है कि एक राजा ने पृथिवी को काबू में करके स्वर्ग में सीढ़ी लगानी चाही थी'। तुलना के जरिए कर्जन के वांछित काम को महात्वाकांक्षा मात्र ठहरा दिया !

'पीछे मत फेंकिये' शीर्षक चिट्ठे में उनकी व्यंग्यपरक सृजनात्मकता चरम पर है। भारतीय मानस में एकछत्र मदांध शासन के रूप में रावण के शासन की छवि है। उसी याद को जगाते हुए वे अंग्रेजी राज की अतिशयोक्तिपरक प्रशंसा को रावण राज के बतौर सिद्ध कर देते हैं। यहां व्यंग्य के लिए अतिशयोक्ति का प्रयोग सर्वथा मौलिक है।

अंग्रेजी शासन के साथ साथ उसके देशी आधार स्थानीय राजे-रजवाड़ों पर भी व्यंग्य करते हुए लिखते हैं 'संसार में अब अंग्रेजी प्रताप अखण्ड है। भारत के राजा आपके हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं।' इसके बाद बेवकूफ बनाने वाली अतिशयोक्ति 'आपके हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ को पिघलाती है, फारिस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नर्म्म करती है। जल, स्थल, वायु और आकाशमण्डल में सर्वत्र आपकी विजय है। इस धरा धाम में अब अंग्रेजी प्रताप के आगे कोई उंगली उठानेवाला नहीं है।' इस अंश में व्यंग्य के लिए संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग ध्यान देने लायक है। आगे नाम लिए बिना रावण से तुलना 'इस देश में एक महाप्रतापी राजा के प्रताप का वर्णन इस प्रकार किया

जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चाँद सूरज उसके यहां रोशनी करते थे, इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकाएँ बैठने के लिए कुर्सी मूढ़े। बिजली कलें चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूती, इत्यादि इत्यादि।' बिना नाम लिए ही कुशलता के साथ कर्जन को रावण और अंग्रेजी राज को रावण राज कह दिया गया है। स्वाभाविक तौर पर ऐसी जहर में बुझी आलोचना ने अंग्रेजी शासन से मोहभंग में मदद की होगी।

'आशा का अन्त' में बाल मुकुंद गुप्त कर्जन से इस बात की आशा व्यक्त करते हैं कि वे ऐसे शासक हो जाएं जो इस देश के निवासियों की खोज खबर लेता रहे। इस आशा को अखबारी समाचारों के बहाने प्रकट करते हुए वे अखबारों की चाटुकारिता की भी खिल्ली उड़ाते हैं

'आशा का अन्त' में बाल मुकुंद गुप्त कर्जन से इस बात की आशा व्यक्त करते हैं कि वे ऐसे शासक हो जाएं जो इस देश के निवासियों की खोज खबर लेता रहे। इस आशा को अखबारी समाचारों के बहाने प्रकट करते हुए वे अखबारों की चाटुकारिता की भी खिल्ली उड़ाते हैं 'इस कलकत्ता महानगरी के समाचारपत्र कुछ दिन चौंक चौंक पड़ते थे कि आज बड़े लाट अमुक मोड़ पर वेश बदले एक गरीब काले आदमी से बातें कर रहे थे, परसों अमुक आफिस में जाकर काम की चक्की में पिसते हुए क्लर्कों की दशा देख रहे थे और उनसे कितनी ही बातें पूछते जाते थे।' इस तरह की खबरों के कारण हिंदुओं में 'विक्रमादित्य', मुसलमानों में 'खलीफा हारूंरशीद' और पारसियों में 'नौशीरवां' के पुनर्जन्म की बात होने लगी। लेकिन 'श्रीमान ने जल्द अपने कामों से ऐसे जल्दबाज लोगों को कष्ट-कल्पना करने के कष्ट से मुक्त कर दिया था। वह लोग थोड़े ही दिनों में इस बात के समझने के योग्य हो गये थे कि हमारा प्रधान शासक न विक्रम के रंग-ढंग का है, न हारूं या अकबर के, उसका रंग ही निराला है !' लोगों में भ्रम फैलाने में अखबार यानी उस जमाने के मिडिया की भूमिका की गहरी पहचान उक्त प्रसंग में स्वत:स्पष्ट है और ऐसे भ्रम के शीघ्रता से टूट जाने की विडंबना के प्रति लेखक की करुण व्यंग्योक्ति भी।

लार्ड कर्जन जब इंग्लैंड में थे तो भारत के कल्याण के बारे में भाषण दिया करते थे लेकिन भारत आते ही पुरानी बातें भूलने लगे। इसे भारत में नमक की अधिकता के कारण नमक की खान में पड़कर अपने कहे को भूल जाने के व्यंग्य में ढालते हुए बाल मुकुंद गुप्त लिखते हैं 'बम्बई में जहाज से उतरकर भूमि पर पाँव रखते ही यहाँ के जलवायु का प्रभाव आप पर आरम्भ हो गया था। उसके प्रथम फलस्वरूप कलकत्ते में पदार्पण करते ही आपने यहां के म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की स्वाधीनता की समाप्ति की। जब वह प्रभाव कुछ और बढ़ा तो अकाल पीड़ितों की सहायता करते समय आपकी समझ में आने लगा कि इस देश के कितने ही अभागे सचमुच अभागे नहीं, वरंच अच्छी मजदूरी के लालच से जबरदस्ती अकाल पीड़ितों में मिलकर दयालु सरकार को हैरान करते हैं ! 'इसी प्रकार जब प्रभाव तेज हुआ तो आपने अकाल की तरफ से आँखों पर पट्टी बाँधकर दिल्ली-दरबार किया।' किसी आपदा के समय जब सार्वजनिक कल्याण की जरूरत होती है तो उस समय अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिए आज भी सरकारें इसी तरह के बहाने बनाती हैं।

इसी संग्रह का निबंध 'एक दुराशा' तो व्यंग्य के सहारे शासक के ऊपर जनता से दूरी न रखने की जिम्मेदारी मढ़ने का बहाना खोज निकालता है। इसके लिए बालमुकुंद गुप्त ने पूरे निबंध को एक कहानी की शक्ल दी है। भांग खाकर शिव शंभु सो रहे थे कि उनके कानों में होली की आवाज आई। होली के बोल थे 'चलो-चलो आज, खेलें होली कन्हैया घर।' उनके मन में खयाल आया कि 'कन्हैया कौन ? ब्रज के राजकुमार और खेलने वाले कौन ? उनकी प्रजा-ग्वालबाल। 'क्या भारत में ऐसा समय भी था, जब प्रजा के लोग राजा के घर जाकर होली खेलते थे और राजा-प्रजा मिलकर आनन्द मनाते थे ! क्या इसी भारत में राजा लोग प्रजा के आनन्द को किसी समय अपना आनन्द समझते थे ?' आज हम राजा के पास होली खेलने कैसे जा सकते हैं क्योंकि 'राजा दूर सात समुद्र पार है'। उनका प्रतिनिधि वायसराय है लेकिन 'राजा है, राजप्रतिनिधि है, पर प्रजा की उन तक रसाई नहीं ! सूर्य्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चान्दनी नहीं।' ये सभी उपमान इस स्थिति के वर्णन के लिए कि 'माई लार्ड नगर ही में हैं, पर शिवशम्भु उसके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उसके घर चलकर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है।' उसे देखना तक मुहाल है 'उसका दर्शन दुर्लभ है। द्वीतीया के चन्द्र की भांति कभी-कभी बहुत देर तक नजर गड़ाने से उसका चन्द्रानन दिख जाता है, तो दिखजाता है।' दूज का चाँद होने के मुहावरे का बेहद सृजनात्मक प्रयोग हुआ है।

उनका क्रोध इतना गहरा है कि पानी की लहरों की तरह घूम फिर कर बार बार उभर आता है। सवाल उठाते हैं 'क्या कभी श्रीमान का जी होता होगा कि अपनी प्रजा में जिसके दण्ड-मुण्ड के विधाता होकर आए हैं किसी एक आदमी से मिलकर उसके

मन की बात पूछें या कुछ आमोद-प्रमोद की बातें करके उसके मन को टटोलें ?' दूसरी बार वही बात एक और तरीके से 'जो पहरेदार सिर पर फेंटा बाँधे हाथ में संगीनदार बन्दूक लिये काठ के पुतलों की भांति गवर्नमेण्ट हौस के द्वार पर दण्डायमान रहते हैं, या छाया की मूर्ति की भांति जरा इधर-उधर हिलते जुलते दिखाई देते हैं, कभी उनको भूले भटके आपने पूछा है कि कैसी गुजरती है ? किसी काले प्यादे चपरासी या खानसामा आदि से कभी आपने पूछा कि कैसे रहते हो ? तुम्हारे देश की क्या चाल-ढाल है ? तुम्हारे देश के लोग हमारे राज्य को कैसा समझते हैं ?' इन सवालों की भाषा में हिंदुस्तानियों के प्रति अंग्रेजों के नस्ली नजरिए की मुखालिफत है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के लेख 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' में भी आलोचना के लिए भारतीयों के बारे में गोरे अंग्रेजों की ऐसी राय को ही आधार बनाया गया था। अंत में बाल मुकुंद गुप्त के काल्पनिक पात्र शिव शंभु इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'अब राजा प्रजा के मिलकर होली खेलने का समय गया'। लेकिन यह दुर्भाग्य एकतरफा नहीं है क्योंकि 'साथ ही किसी राजपुरुष का भी ऐसा सौभाग्य नहीं है, जो यहां की प्रजा के अकिंचन प्रेम के प्राप्त करने की परवा करे'। शासक और शासित के बीच इस तरह के संबंध विच्छेद को कोई भी अच्छी बात नहीं कहेगा।

कर्जन की विदाई के निबंध 'विदाई सम्भाषण' में उनके अहंकार के कारण हुए अपमान की खिल्ली उड़ाते हुए लिखते हैं 'आपके शासन काल का नाटक घोर दु:खान्त है और अधिक आश्चर्य की बात यह है कि दर्शक तो क्या स्वयं सूत्रधार भी नहीं जानता था कि उसने जो खेल सुखान्त समझकर खेलना आरम्भ किया था, वह दु:खान्त हो जावेगा। जिसके आदि में सुख था, मध्य में सीमा से बाहर सुख था, उसका अन्त ऐसे घोर दु:ख के साथ कैसे हुआ ! आह !घमण्डी खिलाड़ी समझता है कि दूसरों को अपनी लीला दिखाता हूं, किन्तु परदे के पीछे एक और ही लीलामय की लीला हो रही है, वह उसे खबर नहीं।' मनुष्य के अहंकार का मजाक उड़ाने के लिए उसकी अधिकारहीनता को दिखा देने से अधिक सक्षम उपाय और क्या हो सकता है !कहते हैं 'इतने बड़े माई लार्ड का यह दरजा हुआ कि एक फौजी अफसर उनके इच्छित पद पर नियुक्त न हो सका। और उनको इसी गुस्से के मारे इस्तीफा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंजूर हो गया।' इसे ही मुहावरे में भिगो भिगो कर मारना कहते हैं।

वे भारत की जनता का हाल बयान करने के लिए एक कहानी सुनाते हैं। इस तत्व का उनके निबंधों में व्यंग्य और विनोद पैदा करने के लिए प्रचुरता से इस्तेमाल किया गया है क्योंकि भारतीय जन समुदाय उत्पीड़न का विरोध करने के लिए अक्सर इस हथियार का सहारा लेता रहा है। यह खजाना उस समय के लेखकों को सहज सुलभ था। जैसे जैसे लेखक जन समुदाय से दूर होते गए वैसे ही वैसे जनता के मन में रचा बसा प्रतिरोध का यह खजाना उनके लिए दुर्लभ होता गया।

कर्जन द्वारा जाते जाते भी बंगाल का बंटवारा कर जाना 'बंग विच्छेद' शीर्षक निबंध में उनके व्यंग्य-प्रहार का कारण बनता है। कर्जन की क्षुद्रता की तुलना दुर्योधन से करते हुए उन्होंने लिखा 'महाभारत में सबका संहार हो जाने पर भी घायल पड़े हुए दुर्म्मद दुर्योधन को अश्वत्थामा की यह वाणी सुनकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं पांचों पाण्डवों के सिर काटकर आपके पास लाया हूं। इसी प्रकार सेना सुधार रूपी महाभारत में जगीलाट किचनर रूपी भीम की विजय गदासे जर्जरित होकर पदच्युति-हृदय में पड़े इस देश के माई लार्ड को इस खबर ने बड़ा हर्ष पहुंचाया कि अपने हाथों से श्रीमान को बंगविच्छेद का अवसर मिला। इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान मोछों पर ताव देते चले जा सकते हैं।' लोक मन में प्रतिष्ठित दुर्योधन के अहंकार का उपयोग ही इस टुकड़े की विशेषता नहीं है, बल्कि भारी भरकम रूपक के प्रयोग से भी व्यंग्य में धार आ गई है। दुर्योधन के अलावा तुगलक की छवि का भी उपयोग करते हुए आगे जोड़ते हैं कि तुगलक ने 'दिल्ली की प्रजा को हुक्म दिया कि दौलताबाद में जाकर बसो। जब प्रजा बड़े कष्ट से दिल्ली को छोड़कर वहाँ जाकर बसी तो उसे फिर दिल्ली को लौट आने का हुक्म दिया।--हमारे इस समय के माई लार्ड ने केवल इतना ही किया है कि बंगाल के कुछ जिले आसाम में मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया है। कलकत्ते की प्रजा को कलकत्ता छोड़कर चटगांव में आबाद होने का हुक्म तो नहीं दिया !' कहने को तो कर्जन के काम को तुगलक के काम से कम कहा लेकिन ब्याज से निर्णय की बेवकूफी जाहिर कर दी। इसके लिए यह भी कह दिया कि 'कलकत्ता उठाकर चीरापूंजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच में कोई नहर नहीं खुद गयी और दोनों को अलग अलग करने के लिये बीच में कोई चीन की सी दीवार नहीं बन गई है। 'खाली खयाली लड़ाई है।' बिना कहे कर्जन को महत्वोन्मादी करार दे दिया गया है।

'लार्ड मिन्टो का स्वागत' शीर्षक निबंध में उन्होंने शासक की जनता से दूरी के सवाल को फिर उठाया है। लोगों ने अपने

नए शासक को देखने के लिए 'पुलिस पहरे वालों की गाली, घूंसे और धक्के भी बरदाश्त किये। बस, उन लोगों ने श्रीमान के श्रीमुख की एक झलक देख ली। कुछ कहने सुनने का अवसर उन्हें न मिला, न सहज में मिल सकता। हुजूर ने किसी को बुलाकर कुछ पूछताछ न की न सही, उसका कुछ अरमान नहीं, पर जो लोग दौड़कर कुछ कहने सुनने की आशा से हुजूर के द्वार तक गये थे, उन्हें भी उल्टे पांव लौट आना पड़ा।' बहुत कुछ वैसा ही दृश्य जैसा रूस में जार से मिलने की आशा में इसी समय अर्थात 1905 में उसके महल गए लोगों का सुनाई पड़ता है। इसी निबंध में वे भारत की जनता का हाल बयान करने के लिए एक कहानी सुनाते हैं। इस तत्व का उनके निबंधों में व्यंग्य और विनोद पैदा करने के लिए प्रचुरता से इस्तेमाल किया गया है क्योंकि भारतीय जन समुदाय उत्पीड़न का विरोध करने के लिए अक्सर इस हथियार का सहारा लेता रहा है। यह खजाना उस समय के लेखकों को सहज सुलभ था। जैसे जैसे लेखक जन समुदाय से दूर होते गए वैसे ही वैसे जनता के मन में रचा बसा प्रतिरोध का यह खजाना उनके लिए दुर्लभ होता गया। निबंधों में अभिव्यक्त गद्य की सृजनात्मकता का गहरा संबंध इस तथ्य से है कि लेखक की जनता के भीतर मौजूद इस स्रोत तक पहुंच आसान है या नहीं। कहानी यह है कि भूख से तंग आकर एक लड़का अपनी मां से लगातार रोटी मांग रहा था। मां किसी और काम में व्यस्त थी। उसने लड़के को एक बहुत ऊंचे ताक पर बिठा दिया। लड़के को डर लगने लगा और वह रोटी की बात भूलकर ताक से उतार दिये जाने की प्रार्थना करने लगा। बालमुकुंद गुप्त कहते हैं कि कर्जन के समय जो अत्याचार हुए हैं उसके चलते लोग ज्यादा कुछ नहीं बस उन्हीं के उलटने की आशा को बहुत बड़ा उपकार मान लेंगे। ध्यान देने की बात यह है कि आज भी शासक इस तरीके का प्रयोग करते हैं। चीजों के दाम इतना बढ़ने देते हैं कि उनमें की गई थोड़ी सी कमी भी बड़ा उपकार लगता है।

विनोद और हास्य को वे सैद्धांतिक रूप से उचित मानते थे। 'हँसी-खुशी' शीर्षक निबंध में वे शुरू में ही लिखते हैं 'हँसी भीतरी आनंद का बाहरी चिन्ह है'। रामचंद्र शुक्ल के निबंधों की तरह के वाक्य से शुरू करने के बाद उसकी तारीफ में आगे लिखते हैं 'जहाँ तक बने हँसी से आनंद प्राप्त करो। प्रसन्न लोग कोई बुरी बात नहीं करते। हँसी बैर और बदनामी की शत्रु है और भलाई की सखी। 'हँसने के लिए ही आदमी बना है। मनुष्य खूब जोर से हँस सकता है, पशु-पक्षी को वह शक्ति ईश्वर ने नहीं दी है।' हास्य को मनुष्य की विशेषता मानने के कारण ही लगभग सभी प्रसंगों में वे व्यंग्य और विनोद की जगह निकाल लेते हैं। इस मामले में वे किसी आदमी या विषय को नहीं छोड़ते।

'राजभक्ति' निबंध इसका उत्तम उदाहरण है। इसका आरंभ लगभग जर्मन कवि ब्रेष्ट की उस कविता की तरह होता है जिसमें ब्रेष्ट कहते हैं कि जनता ने सरकार का विश्वास खो दिया है। गुप्त जी का पहला वाक्य है 'हमारे शासकों का हमारे ऊपर कोप हुआ है कि हम लोगों में राजभक्ति नहीं रही और हम लोग अपनी सरकार से विद्रोह कर रहे हैं। इसके लिए हमें दंड भी दिया जा रहा है। हममें से एक को देश निकाला मिल गया है, दूसरे की खोज हो रही है,कितने ही हवालात में हैं और बहुत पकड़े जाते हैं। 'एक विपत्ति तो यह राजभक्ति के अभाव की है, इसके साथ साथ एक दूसरी और भी लगी हुई है। कितने ही साल हो गए, अकाल इस देश में बराबर विराजमान रहता है। 'फिर दस साल से प्लेग नाम की व्याधि ने यहाँ के निवासियों को घेरा है।' इन सबका मानवीकरण करुण व्यंग्य के लिए ही किया गया है। विपत्ति की स्थिति में भी हँसने का मौका निकालते हुए लिखते हैं 'यदि एक विपद होती तो यहाँ की प्रजा उससे बचने की चेष्टा करती अर्थात वह यदि बीमारियों और दु:खों से रहित होती तो अपने शासकों को खुश करने की चेष्टा करती और राजभक्ति प्रकाश के लिए रास्ता निकालती। या शासक उस पर नाराज न होते और उसे दंड देने की चेष्टा न करते तो अकालों और महामारियों के हाथ से रिहाई पाने की चेष्टा करती। पर उसके दोनों पथ रुके हुए हैं। न इधर भाग सकती है, न उधर।' मजबूरी का भी विनोदपूर्ण चित्रण !

'दिल्ली से कलकत्ता' है तो रेल की यात्रा का वर्णन लेकिन इसमें भी व्यंग्य-विनोद का मौका निकालते हुए वे ट्रेन के चौसा स्टेशन पर प्लेग की जाँच के लिए रुकने पर माहौल का जिक्र करते हैं। गाड़ी रोक ली गई 'इसके बाद खिड़की खुली और हमारे कमरेवालों को नीचे उतरने की आज्ञा हुई। हम लोग नीचे प्लेटफार्म पर उतरे। आज्ञा हुई कि कतार बाँधो। हमने कतार लगाई। इसके बाद गाड़ी की खिड़की में रस्से दोनों ओर डाले गए और उनमें हम लोग रोके गए। पशु रस्से से रोके जाते हैं परन्तु चौसे पर हम मनुष्य कहलाने वाले रस्से के घेरे में थे। 'पीछे जान पड़ा कि, हम लोगों को मोटा ताजा जानकर साहब ने दूर ही से धता किया था।'इस वर्णन को पढ़कर ही समझ में आता है कि क्यों बम्बई में प्लेग के अंग्रेज अफसर को चापेकर बंधुओं ने गोली मार दी थी।

बाल मुकुंद गुप्त का महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ 'अनस्थिरता' के व्याकरणिक रूप से सही या गलत होने को लेकर लंबा विवाद चला था। इसमें बाल मुकुंद गुप्त का मानना था कि सही शब्द 'अस्थिरता' होगा। इस क्रम में गुप्त जी ने 'भारतमित्र' में तो महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में एक

दूसरे के विरुद्ध दस दस लेख लिखे थे। व्याकरण जैसे विषय को सरस बनाने की परंपरा हिंदी में किशोरीदास वाजपेयी के 'हिंदी निरुक्त' से ही है। इसमें 'झा' शब्द की व्युत्पत्ति के सिलसिले में वाजपेयी जी ने लिखा कि बहुतों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति'अनुज्झटित' से है जिसका अर्थ काम न पूरा होना है लेकिन वाजपेयी जी ने मजा लेते हुए लिखा कि आज तक उन्होंने किसी झा पदवीधारी को काम अधूरा छोड़ते नहीं देखा इसलिए इसकी व्युत्पत्ति 'उपाध्याय' से होनी चाहिए। लगभग इसी तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा के प्रसंग में बाल मुकुंद गुप्त ने लिखा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी का वाक्य था 'मनुष्य और पशु-पक्षी आदि की उम्र देश, काल, अवस्था और शरीर-बंधन के अनुसार जुदा-जुदा होती है।' बाल मुकुंग गुप्त ने टिप्पणी करते हुए लिखा 'कोई पूछे कि जनाब व्याकरण-वीर साहब ! उम्र जुदा-जुदा होती है या उम्रें जुदा-जुदा होती हैं ? जुदा-जुदा होती है कि न्यूनाधिक होती है ? एक बार सिंहावलोकन तो कीजिए ! जरा अपनी कवाइदे हिंदी से मिलाकर तो देखिए कौन सी बात ठीक है ? क्या आपकी व्याकरणदानी की इज्जत रखने के लिए बेचारी उम्र के टुकड़े कर दिए जाते हैं।' संस्कृत में कहावत है कि वैयाकरण के लिए एक मात्रा की कमी भी पुत्रोत्सव जैसा सुख देती है। उसी तर्ज पर लिखने में सटीकता के वे इतने बड़े पक्षधर थे कि एक शब्द भी अतिरिक्त लिखना पसंद नहीं करते थे। द्विवेदी जी ने लिखा था 'मन में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं।' इस पर गुप्त जी की टिप्पणी है 'क्यों जनाब, भाषा की सहायता से मन के भाव दूसरों पर प्रगट किए जाते हैं या भाषा से? आप टाँगों की सहायता से चलते हैं या टाँगों से? आँखों की सहायता से देखते हैं या आँखों से?'

व्यंग्य और विनोद से भरी हुई ऐसी जीवंत भाषा के कारण ही उनकी मृत्यु पर खुद महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि विरोधी होने के बावजूद भाषा तो बाल मुकुंद गुप्त ही लिखते थे। भारतेंदु युग और द्विवेदी युग की संधि पर अवस्थित हिंदी नवजागरण के पुराधाओं में से एक श्री बाल मुकुंद गुप्त ने अपनी इसी जीवंत भाषा के बल पर उपनिवेशवाद विरोधी संग्राम में हिंदी लेखकों का एक तरह से प्रतिनिधित्व किया। उनके व्यंग्य और विनोद की कुछ झलकियों को ऊपर उनके ही लिखे के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

(लेखक आंबेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली में हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं।)

समालोचक-प्रतिभा और कर्तव्यनिष्ठा

□ **पंडित किशोरीदास वाजपेयी**

कलकत्ता हिन्दी-साहित्य के लिए उस समय अत्यंत उर्वर क्षेत्र था। हिन्दी-गद्य का वह गढ़ था। उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त होते-होते यह महानगर हिन्दी का प्रधान केंद्र बन गया था। उस समय तक काशी को भी वह साहित्यिक महत्व प्राप्त न हुआ था, यद्यपि भारतेन्दु के उद्यम का सौभाग्य वह प्राप्त कर चुकी थी।

कलकत्ते के वे पूज्यजन धन्य हैं, जिन्होंने 'भारतमित्र' समाचार पत्र प्रकाशित करने की कल्पना की और बड़ी-बड़ी कठिनाइयां झेलकर उसे आगे बढ़ाया। आगे चलकर यह 'भारतमित्र'' ही हिन्दी-जगत् की एक प्रधान संस्था बन गया। गुप्तजी के पहुंचने पर 'भारत-मित्र' का प्रभाव अत्यधिक बढ़ा। गुप्तजी ने इस पत्र के द्वारा सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् में राष्ट्रीय चेतना पैदा की, उमड़ती हुई विदेशी भावना को रोककर भारतीय संस्कृति की रक्षा की और अपने देश तथा धर्म के प्रति सम्मान की भावना पैदा की।

गुप्तजी की कलम मंजी हुई और सधी हुई थी। उनकी भाषा साफ-सुंदर और टकसाली होती थी। उसमें बनाव-चुनाव बिल्कुल न होता। बिल्कुल सीधी-सादी भाषा वे लिखते थे, पर जोरदार और चुस्त। उनके किसी भी निबंध में भरती का कोई एक भी वाक्य न मिलेगा और किसी भी वाक्य में कोई एक भी शब्द अनावश्यक न मिलेगा। नपे-तुले शब्दों में वे पूरा चित्र उतार देते थे। उनके उतारे जीवन-चित्र देखिये, देखते ही रह जाएंगे। दो-चार पृष्ठों में ही मजे के साथ वह सब कह जाते थे, जिसके लिए दूसरों को पोथे रंगने पड़े और फिर भी वह रस कहां?

गुप्तजी प्रकृति आलोचक थे। उनकी दृष्टि बहुत प्रखर थी। उनके तर्क अत्यंत सबल होते थे, पर वैसे कर्कश न होते थे। साहित्यिक रस से वे सराबोर होते थे। भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीयता के वे प्रबल पक्ष-पोषक थे।

बहुत साफ कहने की प्रकृति गुप्तजी ने पायी थी। वे वृद्धजनों का आदर करते थे और उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए सदा सचेष्ट रहते थे। सनातन धर्म के वे अनन्य व्रती थे, पर कूप-मंडूक न थे। अपनी प्रत्येक वस्तु को हीन समझने-समझाने वाली विदेशी भावना पर वे प्रबल प्रहार करते थे।

(लेखक प्रख्यात भाषा विद् व आलोचक हैं।)

बालमुकुन्द गुप्त की किसान-चेतना

□ कमलानंद झा

तब मैं भारत पुत्र कहाऊं
दुखमय दशा सुधारि देश को, उन्नति पथ पर लाऊँ
लखत विलखत कृषक बन्धु को आंसू पोछ हँसाऊँ
श्यामलाल गुप्त

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु और द्विवेदी युग का महत्व अपने समय को थाहने, मापने और उससे होड़ लेने में है। आशय यह कि इस युग की रचना समय-सचेत रचना है। दुःख की बात यह है कि आज का हिंदी साहित्य अपने समय का जायजा उस रूप में नहीं ले पा रहा। आज देश में सबसे बदतर स्थिति किसानों की है। अब तो उनकी आत्महत्या खबर भी नहीं बन पाती। मीडिया को इस तरह की ख़बरें प्रसारित करने की अप्रत्यक्ष मनाही है।किसानों के सरोकार और उनकी पीड़ा हिन्दी कविता, कहानी और उपन्यासों में कदाचित ही सुनने को मिले। चन्द रचनाकार ही इस गलियारे में जाने का जोखिम उठा पाते हैं। द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य का वैशिष्ट्य यह है कि वह अपने समय का अनुवाद है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उस समय के अधिकांश रचनाकार भी अलग-अलग तरह के द्वंद्व और द्विविधा में थे। ब्रितानी शासन के जुल्म और शोषण की आलोचना इस युग के साहित्य-लेखन का मुख्य स्वर है तथापि कुछ ही रचनाकार आर-पार की चुनौती स्वीकार करने का साहस जुटा पा रहे थे। बालमुकुन्द गुप्त का स्वर इनमें सबसे मुखर, प्रमुख और धारदार था।

सुधार के नाम पर ब्रिटिश शासन ने भारतीय कृषि-व्यवस्था की रीढ़ तोड़ डाली थी। उनके लिए देश की कृषि भूमि सोने का अंडा देने वाली मुर्गी के अतिरिक्त कुछ नहीं। यद्दपि मुग़ल शासन में भी किसानों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, कर का बोझ भी कम नहीं था, तथापि कर वसूली अमानवीय नहीं थी। अंग्रेजों ने भारतीय किसानों पर दोधारी तलवार चलाया। एक तो मालगुजारी कई गुनी बढ़ा दी और दूसरी तरफ़ उसकी वसूली में कोई मुरव्वत नहीं बरती। बालमुकुन्द गुप्त ने ब्रिटिश राज के इस छल-छद्म को अपनी रचनाओं में तीखी आलोचना की है। गुप्त जी की चेतना किसानों की दुर्दशा को बहुत करीब से देख पा रही थी। उनकी किसान-चेतना कहीं से भी हवाई, काल्पनिक और अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है, बल्कि यथार्थ और शोधानुकूल है। दादाभाई नरौजी से लेकर आरसी दत्ता जैसे अर्थशास्त्रियों के ब्रिटिश अर्थ-नीतियों के अध्ययन से इनकी चेतना पूर्णतः मेल खाती है। सर्वप्रथम नरौजी ने ब्रिटिश अर्थ-नीति की पोल अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मनी ड्रेन' में खोली और कहा कि 'इंगलैंड भारत का खून चूस रहा है।' इस दृष्टि का विकास आर.सी. दत्त ने अपनी पुस्तक में किया और कहा कि 1765 की तुलना में 1789 तक आते-आते भूराजस्व में 400% की वृद्धि हो चुकी थी। कल्पना की जा सकती है कि 24 वर्षों में 400% की वृद्धि! किसानों की क्या हालत हुई होगी इसके लिए इतने संकेत पर्याप्त हैं। जो भी अन्न वे उपजाते, उसे मालगुजारी में दे देने को वे विवश थे। क्योंकि अंग्रेजों द्वारा चलायी गई नीति स्थायी बंदोबस्त (परमानेंट सेटलमेंट) के तहत मालगुजारी की रकम उपज के अनुसार न होकर निर्धारित थी। इसलिए कई बार उपज से अधिक मालगुजारी की रकम हो जाया करती थी। ऐसी नाजुक स्थिति में अन्न उपजाने वाला किसान अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसने लगा था- 'पानी बीच मीन पियासी ...।' बालमुकुंद गुप्त की किसानों पर लिखी कविता इसी दारुण गाथा की करुण काव्यात्मक अभिव्यक्ति है-

तन सूख्यो मन मरयो प्रान चिंता लागि छीजै
छन छन बढ़त कलेस कहो कर जीजै
जरत अन्न बिन पेट देह बिन वस्त्र उघारी
भूख प्याससों व्याकुल ह्वै रोवत नर नारी

सूखा और अकाल में तो भारतीय किसान त्राहिमाम-त्राहिमाम करने लगते। यूनिवर्सिटी ऑफ़ साउथ कैरोलिना के विद्वान शिक्षक दिनयार पटेल ने ऐसी स्थितियों का अत्यंत मार्मिक विश्लेषण अपने एक आलेख 'जब ब्रितानी अफसरों ने मरने दिए दस लाख भारतीय' में किया है। सन 1866 के अकाल के बाबत वे लिखते हैं 'पुरी में बचे लोग लाशों के ढेर को दफनाने के लिए गड्ढे खोद रहे थे... एक प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार आप मीलों तक खाने की लिए उनकी चीत्कारें सुन

सकते थे।' (www.bbc.com, 11 जून 2016) पीड़ादायक तथ्य यह है कि जब भारत के किसान-जनता दाने-दाने को तरस रहे थे, बकौल नरौजी जी भारत ने 20 करोड़ पाउंड चावल ब्रिटेन को निर्यात किया। 1876 और 1878 के बीच पचास लाख लोग अकाल में मारे गए थे। ऐसी ही भयावह दशा का वृत्त-चित्र है बालमुकुन्द गुप्त की कविता। 'देव-देवी स्तुति' कविता में वे लिखते हैं कि एक मृत स्त्री को गिद्ध नोच रहा है और उस मृत स्त्री का बच्चा उसकी छाती से चिपका हुआ है-

मरी मात की देह को गीध रहे बहु खाल।
ताहीसों यक दूध को सिसू रहयो लपटाय।।

अकाल के गर्भ से प्लेग जैसी भीषण महामारी फैलती है। मर्माहत कर देने वाला यह दृश्य प्लेग जनित ही है। ऐसी डरावनी स्थिति को कुछ अंग्रेज अधिकारी भी रखांकित कर रहे थे, लेकिन ब्रितानी हुकूमत के कान पर जूँ तक नहीं रेंगता। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सम्पत्तिशास्त्र' में बताया है कि, "पंजाब के गवर्नमेंट के फाइनानशियल कमिश्नर एस एस थार्बन साहब ने लिखा था कि पंजाब में कितनी ही जगहों की प्रजा दरिद्रता में इतनी डूब गई है कि उसका उबार होना अब असम्भव है। सरकारी मालगुजारी देने की लिए महाजनों से कर्ज लेने ही के कारण प्रजा की यह दशा हुई है। विशेष करके गरीबी ही के कारण प्रजा उजड़ती जाती है और आजकल प्लेग से मरती जाती है। पर मालगुजारी कम नहीं होती। कम होना तो दूर रहा गत पंद्रह वर्षों में बढ़कर,2,25,00,000 रुपये से 2,88,75,000 हो गई है। अर्थात 30 रूपया प्रजा से अधिक वसूल किया गया है।''(संपत्तिशास्त्र-महावीर प्रसाद द्विवेदी, एनबीटी,2014, पृष्ठ 119-120)

अकाल किसानों की कमर तोड़ डालता है और उसे कहीं का नहीं छोड़ता। मध्यकाल में तुलसीदास ने अपनी कविता में अकाल और किसानों के हाहाकार को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। आधुनिक काल के आरंभिक समय में बालमुकुंद गुप्त ने ब्रिटिशकालीन अकाल जनित किसान-पीड़ा को अत्यंत संवेदशीलता के साथ उकेरा है-

बार बार मारी परत बारि बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पे खोले गाल कराल।।

मध्यकाल के भूख, अभाव और दारिद्र्य को अभिव्यक्त करने वाले सबसे बड़े कवि तुलसीदास हैं और द्विवेदीयुग के सबसे बड़े कवि बालमुकुन्द गुप्त। किसान से सम्बंधित कविता तो मध्यकाल के दूसरे कवियों ने भी लिखी है किन्तु किसान-चेतना के दर्शन तुलसीदास की कवितावली में ही होते हैं। द्विवेदीयुगीन रचनाकारों में गुप्तजी की कविता और निबंधों में किसान चेतना के कई रूपों की पड़ताल की जा सकती है। गुप्तजी की इस तरह की कविता किसानों की सारी उपजीविका के छिन जाने की त्रासद-गाथा है-

धरती के जी में छाइ ऐसी निठुराइ
उपजीविका किसानों की सब भाँति घटाई
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकों के घर में
पड़े ढोर उनके गोरक्षककुल के कर में

अभाव और दारिद्र्य इस सीमा तक थी कि किसानों को भीख माँगने की नौबत आ गई थी। सी जे ओडोनल पार्लियामेंट-'हाउस ऑफ़ कॉमन्स' के सदस्य थे। उन्होंने अपने एक लेख में भारतीय किसानों की दुर्दशा का जो चित्र उपस्थित किया है वह रोंगटे खड़े करने वाले हैं, "आप देहात में जाकर देखिए सौ पचास किसानों में कहीं एक-आध आपको ऐसा मिलेगा जिसे रोटी,कपड़े की तकलीफ न हो...सिर्फ दस वर्ष में मद्रास प्रान्त के कृषिजीवी लोगों को एक अष्टमांश, मालगुजारी न दे सकने के कारण, जमीन, घर-द्वार, बर्तन-भांडे बेचकर 'भिक्षां देहि' करने लगा। (संपत्तिशास्त्र-महावीर प्रसाद द्विवेदी, एनबीटी,2014, पृष्ठ 121-122) बालमुकुन्द गुप्त किसानों की इस बेबसी को अपना काव्य-विषय बनाते हैं। उन्हें यह बात अन्दर तक सालती है कि श्रम पर भरोसा करने वाले किसान समुदाय के लोगों को हाथ पसारने की नौबत आ गई है-

बारेक नयन उघारि देखि जननी निज भारत।
साक अन्न बिनु चहुँ दिस डोलै हाथ पसारत।।

गुप्तजी की चेतना अत्यंत व्यापक थी। किसानों के प्रति उपेक्षा भाव को लक्षित कर वे अंग्रेजों के अतिरिक्त बड़े और कद्दावर भारतीय नेताओं, बुद्धिजीवियों की भी आलोचना करने में हिचकते नहीं थे। सर सय्यद अहमद भारतीय मुस्लिम समाज के प्रतिनधि माने जाते थे, और नवजागरण के अग्रदूत। मुस्लिम समाज के अतिरिक्त भारतीय किसानों की समस्या उनके सरोकार में नहीं था। बल्कि इसके विपरीत वे अंग्रजों की नीति के प्रशंसक थे। गुप्तजी ने इनकी आलोचना करते हुए एक लम्बी कविता 'सर सय्यद का बुढापा' लिखी। इस कविता में उन्होंने कृषक समाज के महत्व को बताते हुए लिखा-

सय्यद बाबा! एक क्षण भर को ध्यान इधर भी कर लीजे,
इस सीधी सी बात का मेरे अवश्य ही उत्तर दीजे
जब यह कृषक समाज सर्वथा नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा

तब यह सुख लोलुप समाज क्या आप अन्न उपजावेगा।

बालमुकुन्द गुप्तजी की कविताओं में किसान और गाँव को लेकर नोस्टेल्जिया भी है। अंग्रेजों के आने के बाद उन्हें गाँव बदलता हुआ सा प्रतीत होता है। वसंतोत्सव शीर्षक कविता में गाँव के प्रति उनकी भावुक दृष्टि अधिक प्रभावी है-

कहाँ गए वह गाँव मनोहर परम सुहाने,

सबसे प्यारे परम शान्तिप्रद मनमाने।

कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्मल,

सीधे सादे लोग बसे जिनमें नाहि छल-बल।

बालमुकुन्द गुप्तजी ने देवी-देवता के प्रति कई स्तुतिपरक कविताएँ लिखी हैं। लेकिन यह भक्ति कम, देश के किसान और आमजन का आर्तनाद अधिक है। स्तुति-शैली में उन्होंने आमजन की पुकार को वाणी दी है। ये आर्तपुकार इतनी मार्मिक और हृदयस्पर्शी है कि हठात तुलसीदास की विनयपत्रिका याद आ जाती है-

गज रथ तुरंग बिहीन भये ताको डर नाहीं

चंवर छत्र चाव नहि हमरे उर माहीं

सिंहासन अरु राजपाट को नाहीं उर आनो

ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनों

पै हाथ जोरि हम आज यह

रोय रोय विनती करैं

या भूखे पेट पापी कहँ

मात कहो कैसे भरैं?

पशुपालन किसानी जीवन का आधार रहा है। गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि किसानों के प्राणाधार रहे हैं। किसान जीवन के प्रति विशेष लागव के कारण ही गुप्तजी भैंस जैसे विषय पर कविता लिखते हैं। कदाचित इसी भाव का विस्तार आगे चलकर नागार्जुन करते हैं, जब वे मादा सूअर को 'मादरे हिन्द की बेटी' से नवाजते हैं। गुप्तजी ने 'भैंस का स्वर्ग' नाम से 11 अंतरा की कविता लिखी है-

कभी कहीं कुछ चाहती है कभी कहीं कुछ खाती है

कभी सरपतों के झुंडों में जाकर सींग लगाती है।

आलेख का आरम्भ द्विवेदीयुगीन श्यामलाल गुप्त की जिस कविता से की गई है वह इस बात को रेखांकित करती है कि देश तभी उन्नति कर सकता है जब देश के किसान खुशहाल हों। कोई अपने को भारत पुत्र तभी कह सकता है जब वह किसानों के दुखों को समझे, उनके आंसू पोछे।

"आपकी भारत में स्थिति की अवधि पाँच वर्ष पूरे हो गए। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका है। हिसाब कीजिये नुमायशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की ओर आपका इस देश में कब ध्यान रहा है? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्तव्य काल की अंतिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ जाइये फिर उसमें आपकी पाँच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है।"

बनाम लार्ड कर्जन, शिवशम्भू के चिट्ठे-बालमुकुन्द गुप्त

आज देश में किसान थोक भाव में आत्महत्या कर रहे हैं, सडकों पर नारे लगा रहे हैं, मँहगाई की भीषण चक्की में पिस रहे हैं, लेकिन उनके आँसू पोछने की बात तो दूर, उनसे बात करने की फुर्सत भी किसी राजनेता को नहीं है। जिनकी बदौलत सभी भारतीयों की पाँचों उंगलियाँ मुँह में जाती हैं, उन्हीं का पेट खाली है, आँखें सूनी हैं। लेकिन हमारे 'भारत पुत्रों' को हिन्दू मुसलामन से फुर्सत कहाँ? 'भारत पुत्र' की परिभाषा अब बदल गई है, आज भारत पुत्र वह है जो बड़े-बड़े उद्योगपतियों, कम्पनियों की दशा सुधारने में लगे हैं। गुप्तजी के समय में भी ब्रिटिश अधिकारी इंग्लैंड की ओर आशा भरी नज़रो से ताकते। महारानी विक्टोरिया से वाहवाही की बाट जोहते। आज की तरह उस समय का प्रशासन काम कम और काम का ढिंढोरा अधिक पीटता था। ऐसी हालात का जायज़ा लेते हुए बालमुकुन्द गुप्त लार्ड कर्जन के निमित्त जो लिखते हैं उसे आप आज के 'पाठ' के रूप में भी पढ़ सकते हैं- "आपकी भारत में स्थिति की अवधि पाँच वर्ष पूरे हो गए। अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूद में, मूलधन समाप्त हो चुका है। हिसाब कीजिये नुमायशी कामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चले हैं और भड़कबाजी के सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की ओर आपका इस देश में कब ध्यान रहा है? इस बार के बजट की वक्तृता ही आपके कर्तव्य काल की अंतिम वक्तृता थी। जरा उसे पढ़ जाइये फिर उसमें आपकी पाँच साल की किस अच्छी करतूत का वर्णन है।" (बनाम लार्ड कर्जन, शिवशम्भू के चिट्ठे-बालमुकुन्द गुप्त, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 11)

(लेखक अलीगढ़ मस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ में हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं।)

एक महत्वपूर्ण बात

अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिखता था - बालमुकुंद गुप्त

हिन्दी जगत में आते ही, आरंभ से ही, गुप्त जी की लेखनी की धूम मच गई और उन्होंने अपना सिक्का जमा लिया। वे हिन्दी को जो नयापन प्रदान कर गये हैं—जिस शैली का निर्माण कर गये हैं, उसमें आज भी ताजगी है।

इस संबंध में एक महत्वपूर्ण बात याद आती है। उसे तनिक द्रविड़ प्राणायामपूर्वक कहना ठीक होगा -

गुप्त जी को गये तीन वर्ष बीत चुके थे, जब 1910 ई. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने हिन्दी-साहित्य -सम्मेलन का सभारम्भ किया। हिन्दी जगत एक अभूतपूर्व उत्साह और उद्वेलन से परिपूर्ण हो गया, उसी समय आचार्य द्विवेदी जी मेरे अतिथि होकर आये। मेरा अहोभाग्य था। सवेरे से शाम तक साहित्यकारों का तांता लगा रहता, मेरा घर एक साहित्यक तीर्थ बन गया।

मैंने इस सुयोग्य का लाभ उठाया। मैं आचार्य द्विवेदी जी के चरणों में एक जिज्ञासु के रूप में निरत रहता और अपनी जानकारी बढ़ाता। एक प्रसंगवश मैंने उनसे जिज्ञासा की—आपकी राय में सबसे अच्छी हिन्दी कौन लिखता है?

उन्होंने कहा - 'अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिखता था - बालमुकुंद गुप्त।'

रायकृष्ण दास

हिंदी भाषा की भूमिका

□ बालमुकुंद गुप्त

(बालमुकुंद गुप्त की 'हिंदी भाषा' के नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। बालमुकुंद गुप्त हिंदी भाषा का इतिहास लिख रहे थे। इसके लिए उन्होंने सामग्री एकत्रित कर ली थी और इसका मसौदा भी तैयार कर लिया था। इस संबंध में दो लेख भी लिखे, जिसमें हिंदी भाषा का विकास दर्शाया है। हिंदी साहित्य के आदिकाल के कवियों की बाषा के बारे में विचार करते हुए उन्होंने कबीर, नानक, मलिक मुहम्मद जायसी आदि की बाषा के बारे में लिखा है। लेकिन इससे पहले कि वे इसे अंतिम रूप देते उनका देहांत हो गया। हिंदी के साहित्यकारों की भाषा और साहित्य पर उनके विचार महत्वपूर्ण हैं और उनका ऐतिहासिक मूल्य है। पाठकों के लिए यहां इस पुस्तक की भूमिक प्रस्तुत कर रहे हैं।-सं.)

वर्तमान हिन्दी भाषा की जन्मभूमि दिल्ली है। वहीं ब्रज-भाषा से वह उत्पन्न हुई और वहीं उसका नाम हिन्दी रखा गया। आरंभ में उसका नाम रेखता पड़ा था। बहुत दिनों यही नाम रहा। पीछे हिन्दी कहलाई। कुछ और पीछे इसका नाम उर्दू हुआ। अब फारसी वेष में अपना उर्दू नाम ज्यों का त्यों बना हुआ रखकर देवनागरी वस्त्रों में हिन्दी-भाषा कहलाती है।

हिन्दी के जन्म-समय उसकी माता ब्रज-भाषा खाली भाषा कहलाती थी, क्योंकि वही उस समय उत्तर भारत की देश भाषा थी। पर बेटी का प्रताप शीघ्र ही इतना बढ़ा कि माता के नाम के साथ ब्रज शब्द जोड़ने की आवश्यकता पड़ी। क्योंकि कुछ बड़ी होकर बेटी भारतवर्ष की प्रधान भाषा बन गई और माता केवल एक प्रांत की भाषा रह गई। अब माता ब्रज भाषा और पुत्री हिन्दी -भाषा कहलाती है।

यद्यपि हिन्दी की नींव बहुत दिनों से पड़ गई थी, पर इसका जन्मकाल शाहजहां के समय से माना जाता है। मुगल सम्राट शाहजहां के बसाए शााहजहानाबाद के बाजार में इसका जन्म हुआ कुछ दिनों तक वह निरी बाजारी भाषा बनी रही। बाजार में जन्म ग्रहण करने से ही इसका नाम उर्दू हुआ। उर्दू तुर्की भाषा का शब्द है। तुर्की में उर्दू लश्कर या छावनी के बाजार को कहते हैं। शाहजहानी लश्कर के बाजार में उत्पन्न होने के कारण जन्म स्थान के नाम पर उसका नाम उर्दू हुआ।

उसका नाम हिन्दी भी मुसलमानों ने रखा हुआ है। हिन्दी फारसी भाषा का शब्द है। उसका अर्थ है हिन्द से संबंध रखने वाली, अर्थात् हिन्दुस्तान की भाषा। ब्रजभाषा में फारसी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओं के मिलने से हिन्दी की सृष्टि हुई। उक्त तीनों भाषाओं को विजेता मुसलमान अपने देशों से अपने साथ भारतवर्ष लाए थे। सैंकड़ों साल तक मुसलमान इस देश में फारसी बोलते रहे। फारिस के विजेताओं का ही इस देश में अधिक बल रहा है। अरबी, तुर्की बोलने वाले बहुत कम थे।

जब इन लोगों की कई पीढ़ियां इस देश में बस गई तो इस देश की भाषा का भी उन पर प्रभाव पड़ा। भारत की भाषा उनकी भाषा में मिलने लगी और उनकी भाषा भारत की भाषा में युक्त होने लगी। जिस समय यह मेल होने लगा था, उसे अब छः सौ वर्ष से अधिक हो गए। आरंभ में उक्त मेलजोल सामान्य-सा था। धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि फारसी और ब्रज भाषा दोनों के संयोग से एक तीसरी भाषा उत्पन्न हो गई। उसका नाम हिन्दी या उर्दू जो चाहिए, सो समझ लीजिए।

फारसी-भाषा के कवियों ने इस नई भाषा को शाहजहानी बाजार में अनाथावस्था में इधर-उधर फिरते देखा। उन्हें इसकी भोली-भाली सूरत बहुत पसंद आई। वह उसे अपने घर ले जाकर पालने लगे। उन्होंने उसका नामकरण किया और उसे रेखता कहकर पुकारने लगे। औरंगजेब के समय में उक्त भाषा में कविता होने लगी। मुहम्मदशाह के समय में उन्नति हुई और शाहआलम सानी के समय में यहां तक उन्नति हुई कि बहुत अच्छे-अच्छे कवियासें के सिवा स्वयं बादशाह उक्त भाषा में कविता करने

लगे और उक नामी कवि कहलाए। कितने ही हिन्दू कवि भी इस भाषा में कविता करने लगे। साधु-महात्माओं की कुटीर तक भी इसका प्रचार होने लगा, वह अपने भगवद्भक्ति के पद इस भाषा में रचने लगे। मुसलमानी अमलदारी में इस भाषा में केवल फारसी कविता के ढंग की कविता ही होती रही।

गद्य की उस समय तक कुछ जरूरत न पड़ी। जब अंग्रेजों के पांव इस देश में जम गये और मुसलमानी राज्य का चिराग ठंडा होने लगा, तब इस भाषा में गद्य की नींव पड़ी। गद्य की पहली पोथी सन् 1799 ई. में लिखी गई। सन् 1802 ई. में जब दिल्ली में 'बगोबहार', नाम की पोथी तैयार हुई, तो गद्य की चर्चा कुछ बढ़ी। यहां तक कि हिन्दुओं का भी इधर ध्यान हुआ। कविवर लल्लूलालजी आगरा निवासी ने अगले ही वर्ष सन् 1803 ई. में 'प्रेम सागर' लिखा। मुसलमान लोग अपनी पोथियां फारसी अक्षर में लिखते थे। लल्लूलालजी ने देवनागरी अक्षरों में अपनी पोथी लिखी। पर दुख की बात है, लल्लूजी के पीछे बहुत काल तक ऐसे लोग उत्पन्न न हुए जो उनके दिखाए मार्ग पर चलते और उनके किए काम की उन्न्ति करते। इसी से उनका काम जहां का तहां रह गया। देवनागरी अक्षरों में प्रेमससागर के ढंग की नई-नई रचनाएं करने वाले लोग साठ साल तक फिर न दिखाई दिए। फारसी अक्षरों वाले उन्नति करते गये। गद्य में उन्होंने और भी कितनी ही पोथियां लिखीं। पीछे सन् 1835 ई. में उनके सौभाग्य से सरकारी दफ्तरों में फारसी अक्षरों के साथ हिन्दी जारी हुई। इससे नागरी अक्षरों को बड़ा अधिक धक्का पहुंचा। उनका प्रचार बहुत कम हो चला। जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वह फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए। फल यह हुआ कि हिन्दी-भाषा न रहकर उर्दू बन गई।

हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी। न वह नियमपूर्वक सीखी जाती थी और न उसके लिखने का कोई अच्छा ढंग था। कविता करने वाले ब्रज भाषा में कविता करते हुए पुरानी चाल चले जाते थे, जो अब भी एकदम बन्द नहीं हो गई है। गद्य या तो आपस की चिट्ठी-पत्रियों में बड़े गंवारी ढंग से जारी था या कोई एक-आध गुनाम बेढंग पोथी में दिखाई देता था।

पचास साल से अधिक हिन्दी की यही दशा रही। उसका नाम-निशान मिटने का समय आ गया था। उसके साथ ही साथ देवनागरी अक्षरों का प्रचार एकदम उठ चला था। देवनागरी अक्षरों में एक छोटी-मोटी चिट्ठी भी शुद्ध लिखना लोग भूल चले थे। उर्दू का जोर बहुत बढ़ गया था।

अचानक समय ने पल्टा खाया। कुछ फारसी-अंग्रेजी पढ़े हुए हिन्दू सज्जनों के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि फारसी अक्षरों का चाहे कितना ही प्रचार हो जाए और सरकारी आफिसों में भी उनका कैसा ही आदर बढ़ जाये, सर्वसाधारण में फैलने योग्य देवनागरी अक्षर ही हैं। स्वर्गीय राजा शिवप्रसाद की चेष्टा से काशी से बनारस अखबार निकाला, उसकी भाषा उर्दू और लिपि देवनागरी थी। राजा शिवप्रसादजी द्वारा देवनागरी अक्षरों का और भी बहुत कुछ प्रचार हुआ। पीछे काशीवालों ने हिन्दी भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान दिया और 'सुधाकर-पत्र' निकाला। पर वह चेष्टा भी विफल हुई। अंत को आगरा निवासी स्वर्गीय लक्ष्मण सिंह जी ने शकुंतला का हिन्दी अनुवाद किया और अच्छी हिन्दी लिखने वालों को फिर से एक मार्ग दिखाया। यद्यपि उसका शुद्ध अनुवाद 25 साल पीछे सन् 1888 ई. में प्रकाशित हुआ, जबकि हिन्दी की चर्चा बहुत कुछ फैल चुकी थी-तथापि राजा शिवप्रसाद के गुटके में मिल जाने से उसके पहले अनुवाद का बहुत प्रचार हो चुका था। सन् 1878 ई. में उक्त राजा साहब ने रघुवंश का गद्य हिन्दी में अनुवाद किया। उसकी भूमिका में वह लिखते हैं:

'हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहां के मुसलमानों और पारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरब पारसी के। परन्तु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी पारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं, जिसमें अरबी पारसी के शब्द भरे हों। इस उल्था में यह भी नियम रखा गया है कि कोई पद अरबी पारसी न आवे।

राजा साहब उर्दू फारसी भली-भांति जानते थे, जिस पर भी हिन्दी और उर्दू को केवल इसलिए वह दो न्यारी-न्यारी बोली बताते थे कि एक में संस्कृत के शब्द अधिक होते थे और दूसरी में फारसी अरबी के शब्द। अस्तु, इस कथन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी और उर्दू में केवल संस्कृत और फारसी आदि के शब्दों के लिए अधिक भेद है और सब प्रकार दोनों एक हैं।

साथ ही यह भी विदित होता है कि उर्दू से उस समय कुछ शिक्षित हिन्दू घबराने लगे थे और समझाने लगे थे कि फारसी, अरबी शब्दों के बहुत मिल जाने से हिन्दी हिन्दी न रही, कुछ और ही हो गई, हिन्दुओं के काम वह नहीं आ सकती। ईश्वर की इच्छा थी कि हिन्दी की रक्षा हो, इसी से यह विचार कुछ शिक्षित हिन्दुओं के हृदय में उसने अंकुरित किया। गिरती हुई हिन्दी को उठाने के लिए उसकी प्रेरणा से स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ।

हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को फिर से प्राण-दान किया। उन्होंने हिन्दी में अच्छे-अच्छे समाचार पत्र, मासिक पत्र आदि निकाले

और उत्तम नाटकों और पुस्तकों से उसका गौरव बढ़ाना आरंभ किया। यद्यपि उन्होंने बहुत थोड़ी आयु पाई और सतरह-अठारह वर्ष से अधिक हिन्दी की सेवा न कर सके, तथापि इस अल्पकाल ही में हिन्दी-संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया। उनके सामने ही कितने ही हिन्दी के अच्छे लेखक हो गए थे। कितने ही समाचार पत्र निकलने लगे थे, वह सबकी आंखों का तारा हो चली थी। हरिश्चन्द्र ने हिन्दी के लिए क्या किया, यह बात आगे कही जाएगी। यहां केवल इतना ही कहना है कि आज उन्हीं की चलाई हिन्छी सब जगह फैल रही है। उन्हीं की हिन्दी में आजकल के सामयिक पत्र निकलते हैं और पुस्तकें बनती हैं। दिन पर दिन लोग शुद्ध हिन्दी लिखना और शुद्ध देवनागरी लिपि में पत्र व्यवहार करना सीखते जाते हैं।

यद्यपि बांग्ला, मराठी आदि भारतवर्ष की अन्य कई भाषाओं से हिन्दी अभी तक पीछे है, तथापि समस्त भारतवर्ष में यह विचार फैलता जाता है कि इस देश की प्रधान भाषा हिन्दी ही है और वही यहां की राष्ट्रभाषा होने के योग्य है। साथ ही साथ यह भी मानते जाते हैं कि सारे भारतवर्ष में देवनागरी अक्षरों का प्रचार होना उचित है। हरिश्चन्द्र के प्रसाद से यह सब हुआ और हिन्दी की चर्चा करने का अवसर मिला।

इस समय हिन्दी के दो रूप हैं एक उर्दू दूसरा हिन्दी। दोनों में केवल शब्दों का ही नहीं, लिपि-भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह भेद न होता तो दोनों रूप मिलकर एक हो जाते। यदि आदि से फारसी लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि रहती तो यह भेद ही न होता। अब भी लिपि एक होने से भेद मिट सकता है। पर जल्द ही ऐसा होने की आशा कम है। अभी दोनों रूप कुछ काल तक अलग-अलग अपनी-अपनी चमक-दमक दिखाने की चेष्टा करते हैं। इससे बड़ा भारी अंतर हो जाता है। जो लोग उर्दू के अच्छे कवि और ज्ञाता हैं, वह हिन्दी की ओर ध्यान देना कुछ आवश्यक नहीं समझते। इसी से देवनागरी अक्षर भी नहीं सीखते और भारतवर्ष के साहित्य से निरे अनभिज्ञ हैं अरब और फारिस के साहित्य की ओर खिंचते हैं। साथ-साथ भारतवर्ष के साहित्य से घृणा करते और जी चुराते हैं। उधर हिन्दी के प्रेमी भी उर्दू की ओर कम दृष्टि रखते हैं और उर्दू वालों को अपनी ओर की बातें ठीक-ठीक समझाने की चेष्टा नहीं करते। यदि दोनों ओर से चेष्टा हो तो इस भाषा की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। मैं इस पुस्तक द्वारा दोनों ओर के लोगों को एक-दूसरे की बातें ठीक-ठीक समझा देने की चेष्टा करूंगा। इसमें मेरा अधिक श्रम हिन्दी वालों के लिए होगा।

वे, जिन्होंने अलख जगाया

□ बालकृष्ण जी शर्मा 'नवीन'

बाबू बालमुकुंदजी वास्तव में हमारी भाषा के निर्माता, हमारे भावों के संमार्जक एवं हमारे लक्ष्य के निर्देशक थे। आज हम जो कुछ हैं, वह इन्हीं पूर्वजों के परिश्रम के फलस्वरूप है। जिस समय हमारे देश में स्तब्धता थी, जिस समय हमारी वाणी मूक थी, जिस समय हमारे हृदय स्पन्दन-हीन थे, उस समय इन अग्रजन्माओं ने एक शंख-ध्वनि की और उस ध्वनि से हमारा यह भारतीय आकाश प्रकम्पित हुआ। उस वायु-तरंग को आंदोलित करने वालों में बाबू बालमुकुंद जी गुप्त का विशेष स्थान था।

वह समय आज इतिहास के पृष्ठों के अध्ययन के द्वारा ही हृदयंगम किया जा सकता है। स्वतंत्रता के उन्मुक्त वातावरण में, स्वाधीनता के बाल-आतप के उदय से, वह तिमिरकाल आज अतीत के गर्भ में विलीन हो गया है। उस काल की विवशता, उस काल की आत्म-दीनता, तत्कालीन मानसिक ग्लानि आज विलुप्त हो चुकी है। अतः आज जिस समय हम गुप्त जी के तथा उनके समकालीन अन्य महानुभावों के भगीरथ प्रयत्नों का मूल्यांकन करने बैठते हैं तो तत्कालीन विवशता को बहुधा भूल जाते हैं और इस प्रकार हम उनके प्रयत्नों के मूल्य को ठीक-ठीक आंक नहीं पाते। पर, जब हम ऐसा करते हैं, तो अपने-आपको ऐतिहासिक समीक्षा के अयोग्य सिद्ध करते हैं। बालमुकुंदजी गुप्त ने जो कुछ लिखा, जो कुछ किया, जो कुछ हमें दिया, उसका वास्तविक मूल्य हम तभी समझेंगे, जब हम उनके समय की कठिनाओं को, उस काल की विडम्बनाओं को अपने सम्मुख रखे रहें।

(लेखक हिंदी के प्रसिद्ध कवि हैं)

हिन्दी की उन्नति

□ **बालमुकुंद गुप्त**

हिन्दी भाषा के संबंध में शुभ केवल इतना ही देखने में आता है कि कुछ लोगों को इसे उन्नत देखने की इच्छा हुई है। किंतु केवल इच्छा करने से कार्य सिद्ध नहीं होता है। यदि इच्छा करने ही से कार्य पूरा होता हो तो शायद पृथ्वी-लखपति, करोड़पति जमींदार, राजा-महाराजाओं से भर जाती। क्यासेंकि अपरमित धन की इच्छा न रखने वाला संसार में कोई भी मनुष्य नहीं है।

इच्छा होने से उसको पूरा करने के लिए इच्छा के साथ-साथ और भी एक वस्तु जरूरी है। उसका नाम है चेष्टा। किंतु हिन्दी की उन्नति की इच्छा रखने वालों में से आज तक कितने आदमियों ने कितनी चेष्टा की है? हम उन्नति-उन्नति चिल्लाने वालों से विनयपूर्वक पूछते हैं,-भाइयो, छाती पर हाथ रखकर कहिए तो सही, आपने मातृभाषा की उन्नति के लिए कितनी चेष्टा की है?

आप कहेंगे, यह देखो, हमने अखबार जारी किया है। आप कहेंगे यह देखो, हमने सरकारी अदालतों में नागरी अक्षर जारी कराए हैं। आप कहेंगे कि हमने बड़ी-बड़ी चेष्टा से बंगदेश की यूनिवर्सिटी की एलए परीक्षा में हिन्दी के लिए भी कुछ जगह देने के लिए शिक्षाधिकारियों को लाचार किया है। किंतु क्या यही सब हिन्दी की उन्नति के लक्षण हैं?

इस लेख के लेखक ने मिडल क्लास के अतिरिक्त हिन्दी नहीं पढ़ी थी, किंतु आज वह हिन्दी-साहित्य के लेख लिखने का दावा रखता है, बड़े-बड़े लोगों को हिन्दी के संबंध में दो बात कहकर लज्जित नहीं होता है। इसके क्या माने हैं? क्या इस लेखक की प्रकृति का दोष है अथवा मिडल क्लास तक पढ़ना ही हिन्दी-विद्या पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए यथेष्ट है? मालूम होता है कि यह पिछली बात सही है। किसी लाइब्रेरी में जाइए, देखेंगे कि अलमारी की अलमारी अंग्रेजी किताबों से भरी हुई है। काव्य, अलंकार, न्याय, दर्शन, विज्ञान प्रकृति में से चाहे जिस विषय की पुस्तकों की आलोचना करने में जीवन गंवा डालिए, किंतु किताबों का शेष नहीं होगा और संस्कृत विद्या? संस्कृत विद्या के हर एक विभाग में केश पकाए हुए कितने सुविज्ञ लोग आज तक काशी की विद्यापुरी में विद्यमान है, अब तक विद्या ही सीख रहे हैं, विद्या का पार नहीं देख सकते। किंतु हमारी हिन्दी-विद्या मिडल क्लास तक पढ़ने में प्रायः पूरी हो जाती है। आगे और किताब नहीं कि पढ़कर विद्या बढ़ावें।

पूर्वज कवियों के हिन्दी काव्य-साहित्य की बात नहीं करेंगे, प्रचलित गद्य पुस्तकें ही भाषा की उन्नति विचारने का निदान गिनी जाती हैं। यह किताबें हिन्दी में कितमनी हैं? यदि स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र की अमृतमयी लेखनी कुछ भिन्न भाषा की पुस्तकों के अनुवाद प्रभृति न रचती तो आज तक शायद हिन्दी-गद्य साहित्य का नाम तक सुनने में नहीं आता। वही आदि, वही अन्त। बाबू हरिश्चन्द्र के पीछे और किसी में हिन्दी की उन्नति के लिए उनके जैसा उत्साह दिखाय है? सिर्फ यही नहीं, उनकी किताबें ही कितनी बिकी हैं? जो लोग आज हिन्दी की उन्नति उन्नति पुकार रहे हैं, क्या उनमें से हर-एक को हरिश्चन्द्र ग्रंथावली की एक-एक प्रति अपने घर में देखने का सौभाग्य प्राप्त है?

केवल गाल बजाने से भाषा की उन्नति नहीं होती है। भाषा की उन्नति के लिए लेखक चाहिए। लेखक बनाने के लिए पाठक चाहिए और पाठक होने के लिए मातृभाषा पर अनन्त अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिए। जब तक इन वस्तुओं का अभाव रहेगा, तब तक मातृ-भाषा की उन्नति चिल्लाना केवल गाल बजाकर भूख बढ़ाना है।

यदि सचमुच हिन्दी की उन्नति की कामना आपके हृदय में चुभ गई है तो कमर कसकर खड़े हो जाइए। आप ही आप प्रतिज्ञा कीजिए-'यत्नं साधयं वा शरीरं पातयं वा।' वह देखिए प्रति वर्ष कितने ही युवक अंग्रेजी विद्या की बीए, एमए, परीक्षा पास कर रहे हैं। उनके हृदय में हिन्दी का रस प्रवेश कराइए। अब वह न हिन्दी पढ़ते हैं, उनमें से बहुत ही थोड़े लोग पढ़ी हुई बात को समझने की शक्ति रखते हैं। यदि सचमुच ही आप हिन्दी की उन्नति चाहते हैं, तो यह दोष दूर करने की चेष्टा कीजिए। दोष दूर करने का उपाय केवल पढ़े हुए लोगों से लिखाने के साथ उनकी लिखी हुई चीजें बिकवाने की चेष्टा करना है। वह चेष्टा धन के बिना नहीं हो सकती। यदि हिन्दी पर सचमुच अनुराग हुआ हो तो हिन्दी की उन्नति के लिए धन संग्रह कीजिए, सुयोग्य सुपंडितों से हिन्दी की प्रयोजनीय पुस्तकें लिखाकर संगृहीत धन से खरीद लीजिए। वह पुस्तकें देश में बांट कर देशवासियों में हिन्दी पढ़ने का शौक फैलाइए। तभी मातृभाषा की उन्नति होगी, तभी हिन्दी अपने उचित स्थान को प्राप्त कर देशवासियों को अपने फल-फूल -पत्र-पल्लवों से सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।

भारतमित्र 1901 ई.

निबंध

हँसी-खुशी

□ बालमुकुंद गुप्त

हँसी भीतर आनंद का बाहरी चिन्ह (चिह्न) है। जीवन की सबसे प्यारी और उत्तम से उत्तम वस्तु एक बार हँस लेना तथा शरीर के अच्छा रखने की अच्छी से अच्छी दवा एक बार खिलखिला उठना है। पुराने लोग कह गए हैं कि हँसो और पेट फुलाओ। हँसी कितने ही कला-कौशलों से भली है। जितना ही अधिक आनंद से हँसोगे, उतनी ही आयु बढ़ेगी। एक यूनानी विद्वान कहता है कि सदा अपने कर्मों को झीखने वाला हेरीक्लेस बहुत कम जिया, पर प्रसन्न मन डेमाकीटस 109 वर्ष तक जिया। हँसी-खुशी ही का नाम जीवन है। जो रोते हैं, उनका जीवन व्यर्थ है। कवि कहता है - 'जिंदगी जिंदादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं।'...

हँसने के लिए ही आदमी बना है। मनुष्य खूब जोर से हँस सकता है, पशु-पक्षी को वह शक्ति ईश्वर ने नहीं दी है। मनुष्य हँसने-मुस्काने, हो-हो करने, टोपी उछालने, गीत गाने और स्तुति करने के लिए बनाया गया है। हँसी भय भगाती है, दुःख मिटाती है, निराशा को घटाती है।

कारलाइल एक राजकुमार था। संसार त्यागी हो गया था। वह कहता है कि जो जी से हँसता है, वह कभी बुरा नहीं होता। जी से हँसो, तुम्हें अच्छा लगेगा। अपने मित्र को हँसाओ, वह अधिक प्रसन्न होगा। शत्रु को हँसाओ, तुमसे कम से कम घृणा करेगा। एक अनजान को हँसाओ, तुम पर भरोसा करेगा। उदास को हँसाओ, उसका दुःख घटेगा। एक निराश को हँसाओ, वह अपने को जवान समझने लगेगा। एक बालक को हँसाओ, उसका अच्छा स्वभाव, अच्छा स्वास्थ्य होगा। वह प्रसन्न और प्यारा बालक बनेगा। पर हमारे जीवन का उद्देश्य केवल हँसी ही नहीं है, हमको बहुत काम करने हैं। तथापि उन कामों में, कष्टों में और चिंताओं में एक सुंदर आतंरिक हँसी, बड़ी प्यारी वस्तु भगवान ने दी है। हँसी सबको भली लगती है। सभा में हँसी विशेषकर प्रिय लगती है। जो स्त्री नहीं करती और पुरुष हँसते नहीं उनसे ईश्वर बचावे। जहाँ तक बने हँसी से आनंद प्राप्त करो। प्रसन्न लोग कोई बुरी बात नहीं करते। हँसी बैर और बदनामी की शत्रु है और भलाई की सखी। हँसी स्वभाव को अच्छा करती है। जी बहलाती है और बुद्धि को निर्मल करती है। हँसी सजे-सजाये घर के समान है। मनुष्य रोने के लिए ही नहीं बनाया गया है। हँसने के लिए ही आदमी बना है। मनुष्य खूब जोर से हँस सकता है, पशु-पक्षी को वह शक्ति ईश्वर ने नहीं दी है। मनुष्य हँसने-मुस्काने, हो-हो करने, टोपी उछालने, गीत गाने और स्तुति करने के लिए बनाया गया है। हँसी भय भगाती है, दुःख मिटाती है, निराशा को घटाती है। कंगाली का आधा बोझ उड़ा देती है। उदास आदमी से दूर रहो। लड़कियों की हँसी संसार के सब प्रसन्नकारी स्वरों से मधुर है। जो हँसता है, वह आयु बढ़ाता है। प्रसन्नता उत्तम भोजन, लड्डू, पेड़ा, कलाकंद, पूरी, कचौरी हजम कराती है। संसार में फिराना समुद्र और पहाड़ों पर हवा खिलाना, सेनाओं का उत्साह बढ़ाना - सब प्रसन्नता का खेल है। मनुष्य को और दवा दरकार नहीं। उसे मित्रों में बैठाओ और खूब हँसाओ।

मेलबोर्न के डाक्टर ए. डब्लू. कोल ने डाक्टरी पर एक पुस्तक लिखी है। उसकी भूमिका में से यह सब बातें यूरोप के बड़े-बड़े बुद्धिमानों के लेखों से छाँटी है। इस विषय में वह एक कहानी लिखता है। एक डाक्टर अपने मित्रों सहित पहाड़ पर फिरता था। एक चट्टान पर उसे एक कौवे का घोंसला दिखाई दिया। डाक्टर ने कहा - आओ सब दौड़ो, देखें उस घोंसले के पास पहले कौन पहुँचता है। सब दौड़े। एक आदमी हाँफ कर बैठ गया। जब सब जमा हुए तो इतना हँसे कि पेट फूल गए। जब इन मित्रों को हँसना होता, तो उस घोंसले की कहानी को फिर दोहराते। कई साल पीछे उनमें से एक मित्र बीमार हो गया, मरने को था कि उस डाक्टर को खबर हुई। वह गया। लोगों ने कहा कि लो तुम्हारा मित्र आया, आँखें खोलो। पर वह कुछ न बोला। तब डाक्टर ने जोर-जोर से कौवे के घोंसले की कहानी सुनाई। कहानी सुन कर बीमार हँसा। यहाँ तक कि वह अच्छा हो गया और जीता है।

उसी हँसी को मनुष्य जीवन के साथ लगाये रखने के लिए हिन्दुओं ने होली का त्यौहार जारी किया था। होली की कृपा से अब भी हिंदू कुछ हँस लेते हैं। संसार में दुःख और उदासी अधिक है। उस दुःख और उदासी को दबा कर एक बार मनुष्य को हँसाना और प्रसन्न करना ही होली का उद्देश्य है। इसी से जानो कि होली हिंदू जीवन की कैसी प्यारी चीज है।

दिल्ली से कलकत्ता

□ बालमुकुंद गुप्त

(16 जनवरी 1899 को भारत मित्र अखबार बालमुकुंद गुप्त के संपादन में प्रकाशित हुआ। इस अंक में दिल्ली से कलकत्ता तक लेख में अपनी यात्रा का वर्णन किया है। इस वृतांत में बालमुकुंद गुप्त की विलक्षण वर्णन क्षमता, संवेदनशीलता और संवेदनशील दृष्टि के दर्शन होते हैं।)

'10 जनवरी की रात को मैं दिल्ली से कलकत्ता के लिए मेल ट्रेन में सवार हुआ। टिकट इण्टर का लिया। ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर लगी तो देखा कि इंटरमिडियट की गाड़ी केवल एक ही है। उसमें भी एक कमरा युरोपियन साहबों के लिए और एक युरोपियन लेडियों के लिए। शेष तीन कमरों में हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष सब। कड़कड़ाती सर्दी के मारे असबाब के गटुड भी लोगों के पास कम न थे। इससे उनकी वह बुरी नौबत हुई कि कुछ न पूछिये। बहुत लोग घबराकर तीसरे दरजे की गाड़ी में चले गये और जो भिच-भिचाकर रह सके, वह इंटर में पड़े रहे। ट्रेन को देखा तो उसमें दूसरे और पहले दरजे की गाड़ियां केवल चार ही नहीं थी, पांच थी, तीसरे दर्जे की भी दो थी। परन्तु इंटरमिडियट की जिसकी मेल में बड़ी जरूरत रहती है, केवल एक ही गाड़ी थी। भले मानुस हिन्दुस्तानी इसी दरजे में सिर छिपाया करते हैं। उनके भाग्य से रेल में उसकी एक ही गाड़ी रह गई। दूसरे और पहले दरजे की गाड़ियां मजे से खाली चली जा रही थी। उनमें कभी कोई एक-दो साहब-बीबी दिखाई देते थे।'

'इंटर का टिकट लिया था। इससे जी न हुआ कि तीसरे दरजे में बैठें। दबते-दबाते इंटरमिडियट ही मे पड़े चले आये। जैसी दुर्दशा भोगी वह जी ही जानता है। जहां रेल ठहरती, वहां यदि एक आदमी उतरता था, दस घुसने को दौड़ते थे। धक्कम-धक्का होकर कम से कम दो आदमी तो घुस ही जाते थे। इस प्रकार भीख बढ़ती ही जाती थी। रात जिस प्रकार कटी उसे शरीर का जोड़-जोड़ जानता है।

सवेरा हुआ। सूर्य चमका। सरद हवा सनसनाती थी, तो भी सूर्य की चमक से जरा मुंह निकालने का साहस हुआ। खिड़की खोलकर देखा तो गाड़ी के दोनों ओर हरी खेती लहलहाती थी। गाड़ी उस समय कानपुर के पास थी। दिल्ली से उस तरफ इस साल खेती कम है। चने की फसल तो है ही नहीं। फसल हो तो कहां से? कानपुर से बक्सर तक दिन था, खेती दिखाई देती थी। इतनी दूर में अबके चने की फसल अच्छी है और भी खेती अच्छी है। बिहार का जो अंश जलमग्न हुआ था, उसमें फसल खूब लहलहाती दिखाई दी। पंजाब का जंगल, दिल्ली का प्रांत, हरियाणा और शेखावटी में अबके खेती नहीं है। इस तरफ फसल अच्छी है। इतना भी भला।'

प्रयाग में मकर के स्नान के लिए यात्री जा रहे थे। दोनों ओर से ट्रेनें भरी आ रही थी। स्टेशन पर बड़ी भीड़भाड़ थी। कुछ कालेजों के विद्यार्थी परीक्षा देकर प्रयाग से लौट रहे थे। इनका भी एक रेला मेल ट्रेन पर अच्छा पड़ा। दो-चार को जगह मिली। कुछ मित्र लोग इनको पहुंचाने प्लेटफार्म तक आए थे। एक गोरे साहब ने उनको वक्फे लीगाकर बाहर निकाल दिया और उनका उजर कुछ भी न सुना। बेचारे पढ़े-लिखे लड़कों की यह खराबी देखकर अनपढ़ों को भी दुख हुआ।

यहां उतरकर मैंने फौजी ढंग का-सा स्नान किया परन्तु कुछ खा लेने को कहीं जगह न मिली। गाड़ी के भीतर की दशा तो सुना ही चुका हूं। बाहर भी स्थान न था। यात्री फिरते थे, साहब-मेम फिरते थे। कबाब रोटी वाले फिरते थे, असबाब वाले कुली फिरते थे और गोरे-काले पुलिस वाले फिरते थे। हिन्दू बेचारा कहां भोजन करे। खैर, खड़े-खड़े ही दो पेड़े मुंह में डाल पानी पी गाड़ी में बैठना पड़ा। गाड़ी चलीं सड़क के सहारे से नगर का जो भाग दिखता था, वह रमणीक मालूम होता था। पुल पर से देखा यमुनाजी की धारा बहुत ही क्षीण दशा में है। रेती चमकती थी। शायद इस मास से और सूख जायंगी। दिल्ली में यमुना की ऐसी दशा है, मानों वह दिल्ली से उठ जाने को है।'

'शाम होते-होते गाड़ी चौसा स्टेशन पर पहुंची, यह प्लेग की बीमारी की देखभाल का अड्डा है। यहां आकर ट्रेन ठहर गई। खिड़कियां पहले ही से बंद थी। पुलिस के दूत दौड़े आए और दरवाजे रोककर खड़े हो गए। ठीक इस प्रकार जैसे कैदियों को। मानो यात्री लोग भी गाड़ी से उतर कर भाग जाएंगे। इसके बाद खिड़की खुली और हमारे कमरे वाले को नीचे उतरने की आज्ञा

हुई। हम लोग नीचे प्लेटफार्म पर उतरे। आज्ञा हुई कि कतार बांधो। हमने कतार लगाई। इसके बाद गाड़ी की खिड़की में रस्से दोनों और डाले गए और उनमें हमलोग रोके गये। पशु रस्से से रोके जाते हैं, परन्तु चैसे पर हम मनुष्य कहलाने वाले रस्से के घेर में थे। दो गोरे साहब हमें देखने आये और दूर ही से देखकर चल दिये, परन्तु कई आदमियों की जो हमारे पास ही थे, खूब नाड टटोली गई। पीछे जान पड़ा कि हम लोगों को मोटा ताजा जानकर साहब ने दूर ही से बता दिया था।'

हमारी वाली गाड़ी के एक कमरे में दो गोरी मेम थी। उनको गाड़ी से उतरने का कष्ट न हुआ। गोरी डाक्टरनी ने उनकी गाड़ी के पास आकर कुछ पूछा और अलग हुई। परन्तु दो बगालिन स्त्रियां भी उसी गाड़ी में थी। उनको डाक्टरनी जी ने उतारा और देर तक उनकी नाड़ी पर हाथ धरे रहीं। उसी गाड़ी में दो साहब थे, वह भी नीचे उतरने के लिए कष्ट से बचे। ट्रेन से किसी दरजे के किसी साहब को नीचे न उतरना पड़ा और हिन्दुस्तानी कोई भी रेल के भीतर न रहने पाया।

'ट्रेन चली तो देखा कि तीन-चार आदमी उतार लिए गये। इनमें एक स्त्री थी और एक पुरुष कुछ दुर्बल। बेचारे कुछ बीमार भी न थे, कहा-सुनी भी उन्होंने बहुत की, परन्तु कुछ सुनाई न हुई। इनके चेहरे फीके पड़ गये थे। बेचारे हैरान थे कि क्या करें? प्लेटफार्म से नीचे उतारकर यह प्लेगी कान की ओर किये गये। वहां दो प्लेगी ठेले थे, उन पर डालकर घसीटे गये, मानो वह सचमुच ही बीमार थे, मानो सचमुच प्लेगग्रस्त थे। जब कलकत्ता में प्लेग कहा जाता था, तो कलकत्ता से जाने वाली ट्रेनें भी चैसे में रोकी जाती थी और उनमें से हकनाहक दस-बीस यात्रियों को उतारकर प्लेग-कैंप में सड़ाया जाता था। वही दशा अब कलकत्ता की ओर जाने वाली ट्रेनों की होती है।'

'जहां साहब लोगों का भोजन वही ट्रेन का मुकाम। पहले मेल ट्रेन मुकामा में ठहरती थी। परन्तु अब रात जल्दी होती है, इसी से दानापुर में तीस मिनट ठहरने लगी। आश्चर्य कुछ नहीं, रेल साहबों ही के लिए है। रेल में सुख पाना हो तो विलायत में पैदा होने की प्रार्थना करो।'

'हुगली से हावड़ा तक प्रभात समय था। रेल के दोनों ओर जल भरा था। उसमें से इतनी भाप उठ रही थी कि पेड़-पत्ते और भूमि आदि कुछ दिखाई न देते

प्रारंभिक शिक्षा के लिए पाठ्य सामग्री की गुणवत्ता पर गुप्त जी का अनुभव

सन 1875 के आखिर में राकिम (लेखक) स्कूल में दाखिल हुआ था, उस वक्त पंजाब के इब्तदाई मदरसे नीम मकतबोकी शकल में थे। उर्दू का फायदा मौजूद न था। कागजों पर 'अलिफ-बे' लिखकर पढ़ाई जाती थी। 'तहसील उलतालीम' नाम की एक किताब उर्दू की पहली किताब और उर्दू की पहली किताब और तीसरी किताब बनी जरूर थी, मगर वह सब स्कूलों तक नहीं पहुंच सकी थी। कुछ दिन बाद उर्दू की पहली और दूसरी किताब आई और 'तहसील-उल-तालीम' से लड़कों का पिंड छूटा। उर्दू की पहली किताब के दो हिस्से थे - पहले हिस्से में उर्दू का कायदा था और दूसरे में कुछ लतायफ। यह लतायफ ऐसे मुश्किल थे कि बाज तो उनमें से लाला जमायतों के लड़कों की समझ में भी मुश्किल से आते थे। मसलन एक मंन्तिकी और एक पीराक का लतीफा था जो दोनों एक साथ नाव में सवार हुए थे, उसी तरह एक मन्तिकी और एक मुल्ला तबलीका लतीफा था। मन्तिकी कौन होता है और इल्म मन्तिक क्या शै है? उर्दू का कायदा पढ़ने वाले लड़के भला क्या खाक समझेंगे? इसी तरह उर्दू की दूसरी भी ऐसे हिकायत और लताइफ से पुर थी जो और भी मुश्किल थे। मगर सबसे मुश्किल थी उर्दू की तीसरी किताब। उसे मिडल क्लास के लड़के भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते। खसूसन उसका हिस्सा नज्म बहुत ही सख्त था, एक दो शेर उसमें से याद है, मुलाहिजा हो-

जोफ से गर यह मुवहल वदम सर्द हुआ,
बावर आया हमें पानी का हवा हो जाना।
अशरते कतरह है दरिया में फना हो जाना,
दर्द का हदसे गुजरना है दवा हो जाना।
जो साया इस चमन में फिरा मैं तमाम उम्र,
शमि-दहपा नहीं मरा वर्ग ग्याह का?

उस वक्त यह तोते की तरह रट लिए थे। मानी तो बहुत दिन बाद मालूम हुए।

विधि का विधान बड़ा विचित्र है। मनुष्य जो सोचता है, वह नहीं होता। होता है वही जो जगत का नियन्ता ईश्वर चाहता है।

बालमुकुंद गुप्त ती ख्याति का आधार हैं 'शिवशंभु के चिट्ठे'। शिवशंभु के चिट्ठे तत्कालीन वायसराय को लिखी गई खुले पत्र हैं। ये शिवशंभु शर्मा के नाम से लिखे थे और भारतमित्र में छपे थे। इसमें अंग्रेजी शासन व उसके अधिकारियों के व्यवहार के संबंध में तीखी आलोचनाएं की हैं। इनमें से हम यहां दो लेख प्रस्तुत कर रहे हैं। 'पीछे मत फेंकिये' और 'बंग-विच्छेद'।

अंग्रेजी शासन ने भारतीयों में धर्ण के अदार पर फूट डालने और एकता को तोड़ने के लिए बंगाल को भागों में विभाजित कर दियाथा। इसके खिलाफ पूरे बंगाल के हिंदुओं और मुसलमानों ने विरोध प्रदर्शन किए। बंगभंग के विरूद्ध आंदोलन भारत के इतिहास मे एकता की मिसाल है। बालमुकुंद गुप्त ने आंदोलनकारियों की भावनाओं को अपने लेखों में अभिव्यक्त किया। - सं.

पीछे मत फेंकिये

□ **बालमुकुंद गुप्त**

माई लार्ड! सौ साल पूरे होनेमें अभी कई महीनोंकी कसर है। उस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीने लार्ड कार्नवालिसको दूसरी बार इस देशका गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा था। तबसे अब तक आपहीको भारतवर्षका फिरसे शासक बनकर आनेका अवसर मिला है। सौ वर्ष पहलेके उस समयकी ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तबमें और अबमें कितना अन्तर हो गया है, क्यासे क्या हो गया है? जागता हुआ रंक अति चिन्ताका मारा सोजावे और स्वप्नमें अपनेको राजा देखे, द्वारपर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैलाके अबुलहसनकी भांति कोई तरल युवक प्याले पर प्याला उड़ाता घरमें बेहोश हो और जागनेपर आंखें मलते-मलते अपनेको बगदादका खलीफा देखे, आलीशान सजे महलकी शोभा उसे चक्करमें डाल दे, सुन्दरी दासियोंके जेवर और कामदार वस्त्रोंकी चमक उसकी आंखोंमें चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतोंकी मधुरध्वनि उसके कानोंमें अमृत ढालने लगे, तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो जितना सौ साल पहलेकी भारतमें अंगरेजी राज्यकी दशाको आजकलकी दशाके साथ मिलानेसे हो सकता है।

जुलाई सन् 1805 ई. में लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारतके गवर्नर जनरल होकर कलकत्तेमें पधारे थे। उस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी सरकारपर चारों ओरसे चिन्ताओंकी भरमार हो रही थी, आशंकाएं उसे दम नहीं लेने देती थीं। हुलकरसे एक नई लड़ाई होनेकी थी, सेन्धियासे लड़ाई चलती थीं। खजानेमें बरकतही बरकत थीं। जमीनका कर वसूल होनेमें बहुत देर थी। युद्धस्थलमें लड़नेवाली सेनाओंको पांच पांच महीनेसे तनखाह नहीं मिली थी। विलायतके धनियोंमें कम्पनीका कुछ विश्वास न था। सत्तर सालका बूढ़ा गवर्नर जनरल यह सब बातें देखकर घबराया हुआ था। उससे केवल यही बन पड़ा कि दूसरी बार पदारूढ़ होनेके तीनही मास पीछे गाजीपुरमें जाकर प्राण देदिया। कई दिन तक इस बातकी खबर भी लोगोंने नहीं जानी। आज विलायतसे भारत तक दिनमें कई बार तार दौड़ जाता है। कई एक घंटोंमें शिमलेसे कलकत्ते तक स्पेशल ट्रेन पार हो जाती है। उस समय कलकत्तेसे गाजीपुर तक जाने में बड़ेलाटको कितनेही दिन लगे थे। गाजीपुरमें उनके लिये कलकत्तेसे जल्द किसी प्रकारकी सहायता पहुंचनेका कुछ उपाय न था।

किन्तु अब कुछ औरही समय है। माई लार्ड! लार्ड कार्नवालिसके दूसरी बार गवर्नर जनरल होकर भारतमें आने और आपके दूसरी बार आनेमें बड़ा अन्तर है। प्रताप आपके साथ साथ है। अंग्रेजी राज्यके भाग्यका सूर्य मध्यान्हमें है। उस समयके बड़ेलाटको जितने दिन कलकत्तेसे गाजीपुर जानेमें लगे होंगे, आप उनसे कम दिनोंमें विलायतसे भारतमें पहुंच गये। लार्ड कार्नवालिसको आतेही दो एक देशी रईसोंके साथ लड़ाई करनेकी चिन्ता थी, आपके स्वागतके लिये कोड़ियों राजा, रईस बम्बई दौड़े गये और जहाजसे उतरतेही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्यको धन्य समझा। कितनेही बधाई देने कलकत्ते पहुंचे और कितने और चलेआरहे हैं। प्रजाकी चाहे कैसीही दशा हो, पर खजानेमें रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिये चारों ओरसे आपकी बड़ाई होती है। साख इस समयकी गवर्नमेण्टकी इतनी है

कि विलायतमें या भारतमें एक बार 'हूं' करतेही रुपयेकी वर्षा होने लगती है। विलायती मन्त्री आपकी मुट्ठीमें हैं। विलायतकी जिस कन्सरवेटिव गवर्नमेण्टने आपको इस देशका वैसराय किया, वह अभी तक बराबर शासनकी मालिक है। लिबरल निर्जीव हैं। जान ब्राइट, ग्लाडष्टोन, ब्राडला, जैसे लोगोंसे विलायत शून्य है, इससे आप परम स्वतन्त्र हैं। इण्डिया आफिस आपके हाथकी पुतली है। विलायतके प्रधानमन्त्री आपके प्रियमित्र हैं। जो कुछ आपको करना है, वह विलायतमें कई मास रहकर पहलेही वहांके शासकोंसे निश्चय कर चुके हैं। अभी आपकी चढ़ती उमर है। चिन्ता कुछ नहीं है। जो कुछ चिन्ता थी, वह भी जल्द मिट गई। स्वयं आपकी विलायतके बड़े भारी बुद्धिमानों और राजनीति-विशारदोंमें गिनती है, वरंच कह सकते हैं कि विलायतके मन्त्री लोग आपके मुंहकी ओर ताकते हैं। सम्राट्का आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायतके प्रधान समाचारपत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच-बीचमें आपका गुणग्राम सुनाना पुण्यकार्य समझते हैं। सारांश यह कि लार्ड कार्नवालिसके समय और आपके समयमें बड़ाही भेद होगया है।

संसारमें अब अंग्रेजी प्रताप अखण्ड है। भारतके राजा अब आपके हुक्मके बन्द हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं। आपके हुक्मकी तेजी तिब्बतके पहाड़ोंकी बरफको पिघलाती है, फारिसकी खाड़ीका जल सुखाती है, काबुलके पहाड़ोंको नर्म करती है। जल, स्थल, वायु, और आकाशमण्डलमें सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाममें अब अंग्रेजी प्रतापके आगे कोई उंगुली उठानेवाला नहीं है। इस देशमें एक महाप्रतापी राजाके प्रतापका वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चांद सूरज उसके यहां रोशनी करते थे, इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्यका मल्लाह है, पहाड़ोंकी उपत्यकाएं बैठनेके लिए कुर्सी मूढ़े। बिजली कलें चलानेवाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़नेवाली दूती, इत्यादि इत्यादि।

आश्चर्य है माई लार्ड! एक सौ सालमें अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी प्रतापकी तो इतनी उन्नति हो पर उसी प्रतापी बृटिश राज्यके अधीन रहकर भारत अपनी रही सही हैसियत भी खो दे। इस अपार उन्नतिके समयमें आप जैसे शासकके जीमें भारतवासियोंको आगे बढ़ानेकी जगह पीछे धकेलनेकी इच्छा उत्पन्न हो। उनका हौंसला बढ़ानेकी जगह उनकी हिम्मत तोड़नेमें आप अपनी बुद्धिका अपव्यय करें। जिस जातिसे पुरानी कोई जाति इस धराधाम पर मौजूद नहीं, जो हजार सालसे अधिककी घोर परधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्याकी आलोचना करके विद्वान् और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं जिसने सदियों इस पृथिवीपर अखण्ड -शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्वका प्रचार किया, वह जाति क्या पीछे हटाने और धूलमें मिला देनेके योग्य है? आप जैसे उच्च श्रेणीके विद्वान्-के जीमें यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत-से काम करनेके योग्य नहीं और उनको आपके सजातीयही कर सकते हैं? आप परीक्षाकरके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊंचेसे ऊंचे कामों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं। श्रममें, बुद्धिमें, विद्यामें, काममें, वक्तृतामें, सहिष्णुतामें, किसी बातमें इस देशके निवासी संसारमें किसी जातिके आदमियोंसे पीछे रहनेवाले नहीं हैं। वरंच दो एक गुण भारतवासियोंमें ऐसे हैं कि संसार भरमें किसी जातिके लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्थानी फारसी पढ़के ठीक फारिसवालोंकी भांति बोल सकते हैं, कविता कर सकते हैं। अंग्रेजी बोलनेमें वह अंग्रेजोंकी पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठ तालूको अंग्रेजोंके सदृश बना सकते हैं। पर एक भी अंग्रेज ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्थानियोंकी भांति साफ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बातमें हिन्दुस्थानी पीछे रहनेवाले नहीं हैं। हां दो बातोंमें वह अंग्रेजोंकी नकल या बराबरी नहीं कर सकते हैं। एक तो अपने शरीरके काले रंगको अंग्रेजोंकी भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्यको उनके भाग्यमें रगड़कर बराबर नहीं कर सकते।

किन्तु इस संसारके आरम्भमें बड़ा भारी पार्थक्य होने पर भी अन्तमें बड़ी भारी एकता है। समय अन्तमें सबको अपने मार्ग पर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा माँगकर पेट भरनेवाले कंगालका परिणाम एकही होता है। मट्टी मट्टीमें मिल जाती है और यह जीतेजी लुभानेवाली दुनिया यहीं रह जाती है। कितनेही शासक और कितनेही नरेश इस पृथिवी पर होगये, आज उनका कहीं पता निशान नहीं है। थोड़े थोड़े दिन अपनी अपनी नौबत बजा गये चले गये। बड़ी तलाशसे इतिहासके पन्नों अथवा टूटे फूटे खण्डहरोंमें उनके दो चार चिह्न मिल जाते हैं। माई लार्ड! बीते हुए समयको फिर लौटा लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, आपमें भी नहीं है। दूरकी बात दूर रहे, इन पिछले सौ सालहीमें कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है? कदापि नहीं। विचारिये तो मानो कल आप आये थे, किन्तु छ: साल बीत गये। अब दूसरी बार आनेके बाद भी कितनेही दिन बीत गये तथा बीत जाते हैं। इसी प्रकार उमरें बीत जावेंगी, युग बीत जावेंगे। समयके महासमुद्रमें मनुष्यकी आयु एक छोटी-सी

बूँदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। आपमें शक्ति नहीं है कि पिछले छ: वर्षो को लौटा सकें या उनमें जो कुछ हुआ है उसे अन्यथा कर सकें। दो साल आपके हाथमें अवश्य हैं। इनमें जो चाहें कर सकते हैं। चाहें तो इस देश की 30 करोड़ प्रजाको अपनी अनुरक्त बना सकते हैं और इस देशके इतिहासमें अच्छे वैसरायोंमें अपना नाम छोड़ जा सकते हैं। नहीं तो यह समय भी बीत जावेगा और फिर आपका करने धरनेका अधिकारही कुछ न रहेगा।

विक्रम, अशोक अकबरके यह भूमि साथ नहीं गई। औरंगजेब, अलाउद्दीन इसे मुट्ठीमें दबा कर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर, इसे लूटके मालके साथ ऊंटों और हाथियोंपर लाद कर न ले जासके। आगे भी यह किसीके साथ न जावेगी, चाहे कोई कितनीही मजबूती क्यों न करे। इस समय भगवानसे इसे एक औरही जातिके हाथमें अर्पण किया है, जिसकी बुद्धि विद्या और प्रतापका संसार भरमें डंका बज रहा है। माई लार्ड! उसी जातिकी ओरसे आप इस देशकी 30 करोड़ प्रजाके शासक हैं।

अब यह विचारना आपही के जिम्मे है कि इस देशकी प्रजाके साथ आपका क्या कर्तव्य है। हजार सालसे यह प्रजा गिरी दशामें है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ पचास साल गिरती चली जावे? इसके गिरानेमें बड़ेसे बड़ा इतनाही लाभ है कि कुछ संकीर्णहृदय शासकोंकी यथेच्छाचारिता कुछ दिन और चल सकती है। किन्तु इसके उठाने और सम्हालनेमें जो लाभ हैं, उनकी तुलना नहीं हो सकती है। इतिहासमें सदा नाम रहेगा कि अंग्रेजोंने एक गिरी जातिके तीस करोड़ आदयियोंको उठाया था। माई लार्ड! दोनोंमे जो बात पसन्द हो, वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसन्द है? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना?

'भारतमित्र', 17 दिसम्बर,1904 ई.

बंग विच्छेद

□ **बालमुकुंद गुप्त**

गत 16 अक्टोबर को बंगविच्छेद या बंगालका पार्टीशन हो गया। पूर्व बंगाल और आसामका नया प्रान्त बनकर हमारे महाप्रभु माई लार्ड इंगलेण्डके महान राजप्रतिनिधिका तुगलकाबाद आबाद होगया। भंगड़ लोगोंके पिछले रगड़ेकी भांति यही माई लार्डकी सबसे पिछली प्यारी इच्छा थी। खूब अच्छी तरह भंग घुटकर तय्यार होजाने पर भंगड़ आनन्दसे उस पर एक और रगड़ लगाता है। भंगड़-जीवनमें उससे बढ़कर और कुछ आनन्द नहीं होता। माई लार्डके भारतशासन जीवनमें भी इससे अधिक आनन्दकी बात कदाचित् कोई न होगी, जिसे पूरी होते देखनेके लिए आप इस देशका सम्बन्ध-जाल छिन्न करडालने पर भी उससें अटके रहे।

माई लार्डको इस देशमें जो कुछ करना था, वह पूरा कर चुके थे। यहां तक कि अपने सब इरादोंको पूरा करते करते अपने शासनकालकी इतिश्री भी अपनेही करकमलसे कर चुके थे। जो कुछ करना बाकी था, वह यही बंगविच्छेद था। वह भी होगया। आप अपनी अन्तिम कीर्तिकी ध्वजा अपनेही हाथोंसे उड़ा चले और अपनी आंखोंको उसके प्रियदर्शनसे सुखी कर चले, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने शासनकालकी रकाबीमें बहुतसी कड़वी कसैली चीजें चख जाने पर भी आप अपने लिये 'मधुरेण समापयेत्' कर चले यही गनीमत है।

अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करनेकी शक्ति माई लार्डमें नहीं है। आपके हाथोंसे इस देशका जो बुरा भला होना था, वह हो चुका। एक ही तीर आपके तर्कशमें और बाकी था, उससे आप बंगभूमिका वक्षस्थल छेद चले। बस, यहां आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई। इस देशकी भलाईकी ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करनेकी शक्ति आपमें थी। पर अब कुछ बुराई करनेकी शक्ति भी आपमें नहीं रही, इससे यहांके लोगोंको बहुत ढाढस मिली है। अब आप हमारा कुछ नहीं कर सकते।

आपके शासनकालमें बंगविच्छेद इस देशके लिए अन्तिम विषाद और आपके लिए अन्तिम हर्ष है। इस प्रकारके विषाद और हर्ष, इस पृथिवीके सबसे पुराने देशकी प्रजाने बारम्बार देखे हैं। महाभारतमें सबका संहार होजाने पर भी घायल पड़े हुए दुर्मद दुर्योधनको अश्वत्थामाकी यह वाणी सुनकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं पांचों पाण्डवोंके सिर काटकर आपके पास लाया हूं। इसी प्रकार सेनासुधार रूपी महाभारतमें जंगीलाट किचनर रूपी भीमकी विजय-गदासे जर्जरित होकर पदच्युति-हृदमें पड़े इस देशके माई लार्डको इस खबरने बड़ा हर्ष पहुंचाया कि अपने हाथोंसे श्रीमान् को बंगविच्छेदका अवसर मिला। इसी महाहर्षको लेकर माई लार्ड इस

देशसे विदा होते हैं, यह बड़े सन्तोषकी बात है। अपनोंसे लड़कर श्रीमान्-की इज्जत गई या श्रीमान्-ही गये, उसका कुछ ख्याल नहीं है, भारतीय प्रजाके सामने आपकी इज्जत बनी रही, यही बड़ी बात है। इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान् मोछों पर ताव देते चले जासकते हैं।

श्रीमान्-के खयालके शासक इस देशने कई बार देखे हैं। पांच सौसे अधिक वर्ष हुए तुगलक वंशके एक बादशाहने दिल्लीको उजाड़ कर दौलताबाद बसाया था। पहले उसने दिल्लीकी प्रजाको हुक्म दिया कि दौलताबादमें जाकर बसो। जब प्रजा बड़े कष्टसे दिल्लीको छोड़कर वहां जाकर बसी तो उसे फिर दिल्लीको लौट आनेका हुक्म दिया। इस प्रकार दो तीन बार प्रजाको दिल्लीसे देवगिरि और देवगिरिसे दिल्ली अर्थात श्रीमान् मुहम्मद तुगलकके दौलताबाद और अपने वतनके बीचमें चकराना और तबाह होना पड़ा। हमारे इस समयके माई लार्डने केवल इतनाही किया है कि बंगाल के कुछ जिले आसाममें मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया है। कलकत्तेकी प्रजाको कलकत्ता छोड़कर चटगांवमें आबाद होनेका हुक्म तो नहीं दिया। जो प्रजा तुगलक जैसे शासकों का खयाल बरदाश्त कर गई, वह क्या आजकलके माई लार्डके एक खयालको बरदाश्त नहीं कर सकती है?

सब ज्योंका त्यों है। बंगदेशकी भूमि जहां थी वहीं है और उसका हरएक नगर और गांव जहां था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चीरापूँजीके पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगलीके पुलपर नहीं आबैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल बीचमें कोई नहर नहीं खुद गयी और दोनोंको अलग अलग करने के लिये बीचमें कोई चीनकीसी दीवार नहीं बन गई है। पूर्व बंगाल, पश्चिम बंगालसे अलग होजाने पर भी अंग्रेजी शासनहीमें बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहलेकी भांति उसी शासनमें है। किसी बातमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। बंगविच्छेद करके माई लार्डने अपना एक खयाल पूरा किया है। इस्तीफा देकर भी एक खयालही पूरा किया और इस्तीफा मंजूर होजाने पर इस देशमें पड़े रहकर भी श्रीमान्-का प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत तक ठहरना एक खयाल मात्र है।

कितनेही खयाली इस देशमें अपना खयाल पूरा करके चले गये। दो सवादो सौ साल पहले एक शासकने इस बंगदेशमें एक रुपयेके आठ मन धान बिकवाकर कहा था कि जो इससे सस्ता धान इस देशमें बिकवाकर इस देशके धनधान्य-पूर्ण होनेका परिचय देगा, उसको मैं अपनेसे अच्छा शासक समझूँगा। वह शासक भी नहीं है, उसका समय भी नहीं है। कई एक शताब्दियोंके भीतर इस भूमिने कितनेही रंग पलटे हैं, कितने ही इसकी सीमाएं हो चुकी हैं। कितनेही नगर इसकी राजधानी बनकर उजड़ गये। गौड़के जिन खण्डहरोंमें अब उल्लू बोलते और गीदड़ चिल्लाते हैं, वहां कभी बांके महल खड़े थे और वहीं बंगदेशका शासक रहता था। मुर्शिदाबाद जो आज एक लुटाहुआसा शहर दिखाई देता है, कुछ दिन पहले इसी बंगदेशकी राजधानी था और उसकी चहल-पहलका कुछ ठिकाना न था। जहां घसियारे घास खोदा करते थे, वहां आज कलकत्ता जैसा महानगर बसा हुआ है, जिसके जोड़का एशियामें एकआध नगरही निकल सकता है। अब माई लार्डके बंगविच्छेदसे ढाका, शिलांग और चटगांवमेंसे हरेक राजधानीका सेहरा बंधवानेके लिये सिर आगे बढ़ाता है। कौन जाने इनमेंसे किसके नसीबमें क्या लिखा है और भविष्य क्या क्या दिखायेगा।

दो हजार वर्ष नहीं हुए इस देशका एक शासक कह गया है

"सैकड़ों राजा जिसे अपनी-अपनी समझकर चले गये, परन्तु वह किसीके भी साथ नहीं गई, ऐसी पृथिवीके पानेसे क्या राजाओंको अभिमान करना चाहिये? अब तो लोग इसके अंशके अंशको पाकर भी अपनेको भूपति मानते हैं। ओहो। जिसपर पश्चाताप करना चाहिये उसके लिये मूर्ख उल्टा आनन्द करते है।" वही राजा और कहता है - "यह पृथिवी मट्टीका एक छोटा-सा ढेला है जो चारों तरफसे समुद्ररूपी पानीकी रेखासे घिरा हुआ है। राजा लोग आपसमें लड़भिड़कर इस छोटेसे ढेलेके छोटे-छोटे अंशों पर अपना अधिकार जमाकर राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र और दरिद्री राजाओंको लोग दानी कहकर जांचने जाते हैं। ऐसे नीचोंसे धनकी आशा करनेवाले अधम पुरुषोंको धिक्कार है।" यह वह शासक था कि इस देश का चक्रवर्ती अधीश्वर होनेपर भी एक दिन राजपाटको लात मारकर जंगलों और बनोंमें चला गया था। आज वही भारत एक ऐसे शासकका शासनकाल देख रहा है जो यहांका अधीश्वर नहीं है, कुछ नियत समयके लिये उसके हाथमें यहांका शासनभार दिया गया था, तो भी इतना मोहमें डूबा हुआ है कि स्वयं इस देशको त्यागकर भी इसे कुछ दिन और न त्यागनेका लोभ संवरण न कर सका।

यह बंगविच्छेद बंगका विच्छेद नहीं है। बंगनिवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए, वरंच और युक्त हो गये। जिन्होंने गत 16 अक्टोबरका दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंगदेश या भारतवर्षमें नहीं, पृथिवी भरमें वह अपूर्व दृश्य था। आर्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन वेशमें विचरण करती थी। बंगभूमि ऋषि-मुनियोंके समयकी आर्यभूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्तिने उसको उस दिन एक राखीसे बांध दिया था। बहुत कालके पश्चात भारत सन्तानको होश हुआ कि भारतकी मट्टी वन्दनाके योग्य है। इसीसे वह एक स्वरसे "बन्दे मातरम्" कहकर चिल्ला उठे। बंगालके टुकड़े नहीं हुए, वरंच भारतके अन्यान्य टुकड़े भी बंगदेशसे आकर चिमटे जाते हैं।

हां, एक बड़ेही पवित्र मेलको हमारे माई लार्ड विच्छिन्न किये

जाते हैं। वह इस देशके राजा प्रजाका मेल है। स्वर्गीया विक्टोरिया महारानीके घोषणापत्र और शासनकालने इस देशकी प्रजाके जीमें यह बात जमादी थी कि अंग्रेज, प्रजाकी बात सुनकर और उसका मन रखकर शासन करना जानते हैं और वह रंगके नहीं, योग्यता के पक्षपाती हैं। केनिंग और रिपन आदि उदारहृदय शासकोंने अपने सुशासनसे इस भावकी पुष्टि की थी। इस समयके महाप्रभु ने दिखा दिया कि वह पवित्र घोषणापत्र समय पड़ेकी चाल मात्र था। अंग्रेज अपने खयालके सामने किसीकी नहीं सुनते। विशेषकर दुर्बल भारतवासियोंकी चिल्लाहटका उनके जीमें कुछ भी वजन नहीं है। इससे आठ करोड़ बंगालियोंके एक स्वर होकर दिन रात महीनों रोने-गानेपर भी अंग्रेजी सरकारने कुछ न सुना। बंगालके दो टुकड़े कर डाले। उसी माई लार्डके हाथसे दो टुकड़े कराये, जिसके कहनेसे उसने केवल एक मिलिटरी मेम्बर रखना भी मंजूर नहीं किया और उसके लिये माई लार्डको नौकरीसे अलग करना भी पसन्द किया। भारतवासियोंके जीमें यह बात जम गई कि अंग्रेजोंसे भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना गाना वृथा है। दुर्बलकी वह नहीं सुनते।

बंग विच्छेद से हमारे महाप्रभु सरदस्त राजा प्रजामें यही भाव उत्पन्न करा चले हैं। किन्तु हाय। इस समय इसपर महाप्रभुके देशमें कोई ध्यान देनेवाला तक नहीं है, महाप्रभु तो ध्यान देनेके योग्यही कहां?

'भारतमित्र', 21 अक्तूबर, 1905 ई.

श्रद्धांजलि

पं. माधवप्रसाद मिश्र

भिवानी निवासी पंडितवर माधवप्रसाद मिश्र इस संसार में नहीं हैं। गत 16 अप्रैल 1907 को प्लेग रोग से उन्होंने शरीर त्याग दिया। भिवानी में अबके फिर प्लेग का बहुत जोर हुआ था। उसके कारण आप सकुटुम्ब भिवानी के निकट 'कुंगड़' गांव में चले गये थे, जो आपके बड़ों का निवास स्थान है और जहां का निवास अब भी एकदम छोड़ नहीं दिया गया है। वहीं आपकी मृत्यु हुई। इस खबर ने कलेजा हिला दिया। विश्वास हुआ कि कल तक जिसकी लेखनी से भारी-भारी लेख निकल रहे थे, आज वह नहीं है। पर खबर तो सच थी! बुरी खबरें झूठ क्यों होने लगी! संध्या तक बड़े बाजार में यह खबर फैल गई। जिसने सुना, दुख प्रकाश किया। विशेषकर उनके इस जवान उमर में मरने का ख्याल करके लोग अधिक अफसोस करते थे। अपने जीवन के पिछले तीन-चार सालों में उन्होंने कलकत्ते का आना-जाना बहुत बढ़ा लिया था और कई-कई माह तक लगातार यहां रहते और सभा-समाजों और लेखों की बड़ी धूम रखते थे। इससे बड़ा बाजार (कलकत्ता) के लोग उनसे बहुत परिचित हो गए थे। यहां तक कि कितनों ही से उनकी मित्रता भी हो गई थी। इसी से इस खबर ने बहुत लोगों को विकल और विह्वल कर दिया।

मिश्र माधवप्रसाद हिन्दी के एक बड़े नामी लेखक थे। यदि वह कुछ दिन बच जाते और अपनी शक्ति को उचित रूप से व्यवहार करने का समय उन्हें मिलता, तो न जाने कैसी-कैसी उत्तम चीजें हिन्दी में लिख जाते। उनके हिन्दी में लेखनी उठाने की अवधि दस साल से अधिक है। उसमें भी आठ ही साल से वह अखबारों में लिखने-पढ़ने लगे थे। इस थोड़े ही काल में उन्होंने दिखा दिया कि वह उत्तम पुस्तकें लिख सकते हैं, सुंदर कविता बना सकते हैं और अच्छे युक्ति-पूर्ण लेख लिख सकते हैं। कड़ी समालोचना लिखने में वह बड़े ही कुशल-हस्त थे। अति तीव्र और जहर में बुझे लेख लिखने पर भी वह हंसी के लेख लिखकर पाठकों के चेहरों पर खुशी ला सकते थें लिखने में वह बड़े ही निडर और निर्भीक थे। हिन्दी इतनी अच्छी लिखते थे कि दूसरा कोई उनके जोड़ का दिखाई नहीं देता।

माधवप्रसाद जी ने उम्र कुछ न पाई, पर इस थोड़ी ही उम्र में उन्होंने भारतवर्ष के सब प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों का चक्कर लगा डाला था। बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था। संस्कृत पुस्तकों और अपने शास्त्रों की खोज में भी उन्होंने बड़ा मन लगाया था और कुछ काम भी किया था। बड़े इरादे और उत्साह के आदमी थे। पर हाय! कुछ न होने पाया! असमय मृत्यु ने सब जहां का तहां रखवा दिया।

भारतमित्र-सम्पादक से उनका बड़ा प्रेम था। इतना प्रेम कि कदाचित ही कभी दूसरे किसी से उतना हुआ हो। बातें करते-करते दिन बीत जाते थे, रातें ढल जाती थी, पर बातें पूरी न होती थी। गत दो साल से वह नाराज थे। नाराजगी मिटाने की चेष्टा भी कई बार की गई, पर न मिटी। यही ख्याल था कि कभी न कभी मिट जाएगी। पर मौत ने आकर वह आशा धूल में मिटा दी। इतना अवसर भी न दिया कि एक बार उनको फिर प्रसन्न कर लेते। उनका और भारतमित्र-सम्पादक का एक ही देश है। बहुत पुराना साथ था। इससे उनके साथ ठीक स्वजनों का सा नाता था। इस नाराजगी के दिनों में कभी-कभी मिला करते तो कहते—'बस, अब यही बाकी है कि तू मर जाय तो एक बार तुझे खूब रोलें और हम मर गये तो हम जानते हैं कि पीछे तू रोवेगा।' आज पहली तो नहीं, - पिछली बात हुई। याद करते-करते आंसू निकल पड़े। अब नहीं लिखा जाता।' - **बालमुकुंद गुप्त**

कविता - खंड

निवेदन

यह मेरी हिन्दी भाषा की तुकबन्दियों का संग्रह है। हिन्दी में मैंने आरंभ से आज तक जो फुटकर तुकबन्दियां की हैं वह सब इसमें हैं। भारत में अब कवि भी नहीं हैं, कविता भी नहीं हैं। कारण यह कि कविता देश और जाति की स्वाधीनता से संबंध रखती हैं। जब यह देश, देश था और यहां के लोग स्वाधीन थे, तब यहां कविता भी होती थी। उस समय की जो कुछ बची खुची कविता अब तक मिलती है, वह आदर की वस्तु है और उसका आदर होता है। कविता के लिए अपने देश की बातें, अपने देश के भाव और अपने मन की मौज दरकार है। हम पराधीनों में यह बातें कहां? फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरुत्व क्या? इससे इस तुकबन्दी में कुछ तो अपने दुःख का रोना होता है और कुछ अपनी गिरी दशा पर पराई हंसी होती है, वही दोनों बातें इस तुकबंदी में हैं।

मेरी हिन्दी कविता का आरंभ सन् 1889 ई. के अंत से हुआ है। 'भैंस का स्वर्ग' मेरी सबसे पहली तुकबन्दी है, दूसरी 'वसन्तोत्सव' और तीसरी 'सर सैयद का बुढ़ापा'। यह तीनों प्रचलित हिन्दी में हैं। चौथी 'पिता' नाम की कविता बृजभाषा में है। यह मेरी बृजभाषा की पहली कविता है। यह चारों कविताएं कालाकांकर के दैनिक पत्र 'हिन्दोस्थान' में छपी थी। उस समय मेरा उक्त पत्र से संबंध था। दो-चार छोटी-मोटी कविताएं उसमें और भी छपी थी, वह मिल न सकीं। 'वसन्तोत्सव' वाली कविता अधूरी है। यह पीछे पूरी की गई थी और कुछ संशोधित कापी नहीं मिलती, इससे पहले वाली अधूरी ही शामिल की गई।

इससे आगे सन् 1896 के अंत तक की जितनी कविताएं हैं वह सब समय-समय पर 'हिन्दी बंगवासी' में छपी हैं। तब मेरा उक्त पत्र से संबंध था। इसके पीछे आज तक की कविताएं 'भारतमित्र' से उद्धृत की गई हैं, जिस पत्र से मेरा संबंध अब तक बना हुआ है।

इससे पहले सन् 1884 ई. से सन् 1889 ई. तक, मैंने जो कुछ तुकबन्दी की थी, वह सब उर्दू और फारसी में है। उस समय मैं हिन्दी नहीं जानता था। वह कविता हिन्दी कविता से अधिक है। उसमें हंसी दिल्लगी की अधिक बातें हैं। उनमें से एक इस पुस्तक के अंत में जोड़ दी गई है।

हिन्दी मुझे कालेकांकर में स्व. पंडित प्रतापनारायण मिश्र के सत्संग से आई। उन्हीं की कृपा से यह कुछ तुक मिलाना भी आया। इससे यह पोथी बड़ी श्रद्धा के साथ उन्हीं की पवित्र आत्मा के चरणकमल में अर्पण की जाती है।

बालमुकुन्द गुप्त,कलकत्ता,17 दिसम्बर 1905

कविता देश और जाति की स्वाधीनता से संबंध रखती हैं

(सन् 1905 में 'स्फुट कविताएं' नाम से बालमुकुंद गुप्त की कविताओं का संग्रह प्रकाशित हुआ। जिसमें उनकी समस्त कविताएं संकलित हैं। उस कविता की भूमिका में 'निवेदन' के रूप में बालमुकुंद गुप्त ने अपनी कविताओं के बारे में जानकारी दी है और कविता के बारे में अपनी धारणा प्रकट करते हुए कविता को स्वाधीनता के साथ जोड़ा है। ये गुप्त जी की विनम्रता ही कही जाएगी कि उन्होंने अपनी कविताओं को तुकबंदियों का संग्रह कहा है। ये कविताएं उस समय का इतिहास अपने में समेटे हुए हैं। इस खंड में बालमकुंद गुप्त की कविताएं प्रस्तुत हैं।- सं.)

भैंस का स्वर्ग

1

भैंस के आगे बीन बजाई भैंस खड़ी पगुराती है।
कुछ कुछ पूंछ उठाती है और कुछ कुछ कान हिलाती है।
हुई मग्न आनन्द कुण्ड में बंधा स्वर्ग का ध्यान।
दीख पड़ा मन की आंखों से एक दिव्य अस्थान।।

2

केसों तक का जंगल है और हरी घास लहराती है।
हरयाली ही दीख पड़ै है दृष्टि जहां तक जाती है।
कहीं लगी है झड़बेरी और कहीं उगी है ग्वार।
कहीं खड़ा है मोठ बाजरा कहीं घनी सी है ज्वार।।

3

कहीं पे सरसों की क्यारी है कहिं कपास के खेत घने।
जिसमें निकले मनों बिनौले अथवा धड़ियों खली बने।
मूंग मोठ की पड़ी पतोरन और चने का खार।
कहीं पड़े चौले के डंठल कहीं उड़द का न्यार।।

4

कहीं सैंकड़ों मन भूसा है कहीं पे रक्खी सानी है।
कच्चे तालाबों में आधा कीचड़ आधा पानी है।
धरी हैं वां भीगे दाने से भरी सैंकड़ों नांद।
करते हैं भैंसे और भैंसें उछल-कूद और फांद।

5

वहां नहीं है मनुष्य कोई बन्धन ताड़न करने को।
है सब विधि सुविधा स्वच्छन्द विचरने को और करने को।
वहां करे है भैंस हमारी क्रीड़ केलि किलोल।
पूंछ उठाये भ्यां भ्यां रिड़के मधुर मनोहर बोल।।

6

कभी कहीं कुछ चरती है और कभी कहीं कुछ खाती है।
कभी सरपतों के झुण्डों में जाकर सींग लगाती है।
कभी मस्त होकर लोटे है तालाबों के बीच।
देह डबोये थूथन काढ़े तन लपटाये कीच।।

7

कभी वेग से फदड़क-फदड़क करके दौड़ी जाती है।
हलकी क्षीण कटीका सबको नाजुकपन दिखलाती है।
सींग अड़ाकर टीले में करती है रेत उछाल।
देखते ही बन आता है बस उस शोभा का हाल।।

8

पीठ के ऊपर झांपल बैठी चुन चुन चिचड़ी खाती है।
मेरी प्यारी महिषी उससे और मुदित हो जाती है।
अपने को समझे है वह सब भैंसों की सरदार।
आगे पीछे चलती है जिस दम पड़िया दो चार।।

9

सब भैंसें आदर देती हैं सब भैंसे करते हैं स्नेह।
महिषि राज्ञि का एक अर्थ है तब खुलता है निस्सन्देह।
तिस पर वर्षा की बूंदें जो पड़ती हैं दो एक।
तब तो मानो इन्द्र करे है स्वयं राज अभिषेक।।

10

डाबर की दलदल में घुटनों तक है दूब खड़ी।
वहां रौंथ करती फिरती है लिये सहेली बड़ी-बड़ी।
पूंछ हिलाती है प्रसन्न मन, मनो चंवर अभिराम।
मक्खी मच्छर आदि शत्रु की शंका का नहिं काम।।

11

पड़िया मुंह को डाल थनो में प्यार से दूध चुहकती है।
आप नेह से नितम्ब उसके चाटती है और तकती है।
दिव्य दशा अनुभव करती है करके आंखें बन्द।
महा तुच्छ है इसके आगे स्वर्ग का भी आनन्द।।

पिता

1

एहौ जगतपिता के प्रतिनिधि पिता पियारे!
मोहि जन्म दै जगत हास्य दरसावन हारे!
तव पद पंकज मैं करौं हौं बारहिं बार प्रनाम,
निज पवित्र गुनगान की मोहि दीजै बुद्धि ललाम।।

2

यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परसाद तिहारो।
प्रेम-नेम तैं तदपि चहौं तव चरननि धारो।
गंगाजूकों अर्घ सब, हैं गंगहि जलसों देत,
ऐसो बालचरित्र मम लखि रीझौ मया समेत।।

3

बन्दौं निहछल नेह रावरे उर पुर केरो।
लालन पालन भयो सबै विधि जासों मेरो।
उलटै-पुलटै काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल।
निपट अटपटे ढगहूं नित लखि लखि रहे निहाल।

4

कहौं कहां लगे अहौ आपनी निपट ढिठाई।
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई।
सुद्ध स्वच्छ कपड़ान पर बहु बार कियो मल मूत।
तबहुं कबहुं रिस नहिं करी मोहि जान पियारो पूत।।

5

लाखन अवगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो।
हंसि हंसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहि जान्यो।
कोटि कष्ट सुखसों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि।
कस न करौं तिहि प्रेम को नित प्रनति जोरि जुगपानि।।

6

बन्दौं तव मुखकमल मोहिं लखि नित्य विकासित।
मो संग विद्या आछतहूं तुतराई भासित।
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित लै लै मेरे नाम।
सुधा सरिस रस बैन सों जो पूरित आठौं याम।।

7

खेलत-खेलत कबहु धाय तव गरै लपटतो।
लरिकाई चंचलताई कै खरो चमटतो
लटकि-लटकि कै आप ही हौं सम्मुख जातो घूमि।
बन्दौं सो श्रीमुख कमल जो लेतो मो मुख चूमि।।

8

जब तब जो कछु बाल बुद्धि मेरी में आयो।
अनुचित उचित न जान तुमहिं सुनायो।
हंसि-हंसि ताहू पै दिये उचित जवाब मोहि जान।
बन्दौं अति श्रद्धा सहित सो मधुर-मधुर मुसकान।।

9

बन्दौं तुम्हरे तरुन अरुन पंकजदल लोचन।
दयादृष्टि सों हेरि सहज सब सोच विमोचन।
मेरे औगुन पै कबहुं जिन करि न तनिक निगाह।
सबहि दसा सब ठौर में नित बकस्यो अमित उछाह।।

10

मोहिं मुरझान्यो तुरत जल सों भरि आये।
कहूं रुष्ट हूं भये तहं तहूं ममता सों छाये।
तरजन बरजन करत हूं हो पूरित पावन प्रेम।
सब दिन जो तकते हुते बहु ममता सों मम छेम।।

11

खेलन हेत कबहु जब निज मीतन संग जातो।
जब फिरकै आतो मार्ग तकते ही पातो।
आवत मोहिं निहारिकै हो हरे भरे ह्वै जात।
युगल नैन बन्दौं सोई मैं नित प्रति सांझ प्रभात।।

12

जिन नैन कै त्रास रह्यो मेरे मन खटको।
पै वह खटको रह्यो पन्थ सुख सागर तटको।
अगनित दुरगुन दुखन ते जिन राख्यो रक्षित मोहिं!
काहे न वे दृग कमल मम श्रद्धा-सर-सोभा होहिं?

13

करौं बन्दना हाथ जोरि तव कर कमलन की।
सब बिधि जिनसो पुष्टि-तुष्टि भई या तन-मन की।
दूध भात की कौरियां सुचि रुचि से सदा खवाय।
इतने ते इतनो कियो जिन मोहिं मया सरसाय।।

14.

बड़े चाव सों केस संवारत पट पहिरावत।
जूठे कर मुख धोवत नित निज संग अन्हवावत।
कहूं सिसुता बस याहू मैं जब रोय उठो अनखाय।
तब रिझवत हंसि गोद लै कै देत खिलौना लाय।।

सभ्य बीबी की चिट्ठी

1

बताओ आके मेरे पास, किस तरह पूरी होगी आस?
छुएगा कैसे बौना चन्द, बुद्धि कैसी है उसकी मन्द?
हंसी आती है सुन सुनकर, बताता नहीं कहां है घर?

कहां है ऊंचा चोबारा, संगमरमर का फव्वारा?
चमन फूला है किस जा पर, कहां है बेलों का 'बावर'?
कहां झाऊ की सदा बहार, कहां सरवों की साफ कतार?
हवाघर कहां है उसके पास, किस तरह होगी पूरी आस?

2

कहां है 'टेनिसघर' दिखलाव, कहां मछली का बना तलाब?
बात वह अगली सब सटकी, बहू मैं जब थी घूंघट की?
मजा अब सुख का पाया है, स्वाद भिक्षा का आया है?
खुले अब नैन नींद गई टूट? बुद्धि के पर आये हैं फूट।
घुटावे क्यों पिंजरे में दम? नहीं कुछ अन्धी चिड़िया हम।
न लें क्यों खुली हवा में सांस? किस तरह पूरी होगी आस।

3

पढ़ें हम सुख से 'लिटरेचर', सैंकड़ों कविता 'शेक्सपियर'।
गिबन ग्रेटो के सब इतिहास, पढ़ी पाई सब की बू बास।
पढ़े हैं कितने ही दर्शन, लाक मिल बेन्थम हेमिल्टन।
पढ़े हैं बहुत विवर्त्तनवाद, डारविन इस्पन्सर का नाद।
सुने सीखे कितने लेक्चर, लिबरटी लाजिक और कलचर।
किये कितने ही हासिल पास, किस तरह होगी पूरी आस?

4

फराडे हरशल का विज्ञान, हेक्सली टेण्डल करके ध्यान।
सभी को कर डाला है पार, पढ़े हैं नावेल कई हजार।
लिटन थेकर डिकन्स इस्काट, डियूमा एंटानी लिये चाट।
टरोलिप रिचर्डसन रेनल्ड, फील्डिंग मंडे भी किये हल्ड।
हुई हम विदुषी निकला नाम! फकत अब शोहर से है काम।
पश्चिमी विद्या आई रास, किस तरह पूरी होगी आस?

5

लिखे मैंने 'डान्सिंग' के ढंग, और 'सिंगिग' है उसके संग।
बस अब देखूं दिखलाऊंगी, और सीखूं सिखलाऊंगी।
सदा सुन्दर तितली बनकर, उडूंगी फूलों फूलों पर।
कभी थियेटर में जाऊंगी, फूल तुर्रे ले आऊंगी।
सभा में परीजान बनकर, डटूंगी कुरसी के ऊपर।
सुना भी लाला मौधूदास, किस तरह पूरी होगी आस?

प्लेग की भूतनी

सूं सूं सूं मानस की सी बूं।
बम्बई से आई भूख से सताई।
क्या खाऊं, क्या खाऊं हाऊं हाऊं हाऊं।।

मेरे लगी पेट में आग।
हिन्दु-मुसलमान जो पाऊं सबको कच्चा आज चबाऊं।
आंवों आंवों धरूं पेट में जाओगे कहं भाग?
आंवों आंवों रे अंगरेज।।
ठहरो ठहरो भागे कहां? खाऊंगी पाऊंगी जहां।
फोड़ खोपड़ी भेजा खाऊं, करके रेजारेज।।
कण्ठ तोड़ चूसूंगी हाड़, अंतड़ी खेचूं पेटहिं फाड़,
भीरु भागि बचोगे कैसे? बड़े अकल के तेज।।

हाथी खाऊं घोड़े खाऊं खाऊं पेड़ पहाड़।
सागर नदी पेट में झोंको सब बन करो उजाड़।।
घर आंगन दरवाजे खाऊं चींटी मच्छर डांस।
संप छिपकली मूस छछून्दर सबका चक्खूं मांस।।
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊं युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊं बूढ़ा बेईमान।।

थेई थेई नाचे पलेग, पेट बना ख्वाजे की देग,
नरि पुरुष सब करके पिचड़ी, डाल पकावे सबकी खिचड़ी।।
हा हा हो हो शोर मचावे, जिसको पकड़े तिसको खावे,
लाखों पकड़े लाखों खाय, जो भागे तेहि पकड़े धाय,
कूदे नाचे भुजा पसार, थरथर कांपे सब संसार।।
हुआ हिन्द में लंकाकांड, धरती धंसी खसा ब्रह्मांड,
छार रही चारों दिसा छाय, मिची आंख कुछ नहीं सुझाय।।

पंचानन्द सदा निरद्वन्द, नाचे कूदें करे अनन्द।
भूत-प्रेत बेताल पिशाच, ताली पीट दिखावें नाच।।
बम बम बोल फुलावें गाल, पेट बजावें तोड़ें ताल।
बड़ा मजा भई बड़ा मजा, सबकी आई साथ कजा।।
किसकी रानी किसका राजा, पीटो पेट बजाओ बाजा,
पंचानन्द सदा इक रंग, जैसी मदिरा तैसी भंग,
पंचानंद एक समान, स्वर्ग होय या होय मसान।।

मरदानी स्त्रियां

लहंगे से छूटीं हम सारी से छूटीं।
खाना पकाने की चौका लगाने की,
भोजन जिमाने की खारी से छूटीं।
घोड़ा दौड़ाये चाहे टट्टू कुदायें,
डोली फिनिस की सवारी से छूटीं।।

मरदाना कुरती देखो तो फुरती,
ओ हो हो! चल गंवारी से छूटी।
थियेटर में जायेंगे लेक्चर उड़ायेंगे,
छुट्टी हुई ताबेदारी से छूटी।।

कहीं जनने जानने का झगड़ा मिटे।
गर्भ रखाने का बोझ उठाने का,
कष्टों के पाने का झगड़ा मिटे।।
डाढ़ी भी पावें मोछें भी आवें,
छाती तनाने का रगड़ा मिटे।
बाबू कहावे कचहरी को जावें,
बीबी कहाने का झगड़ा मिटे।।

जोरूदास

अपना कोई नाहीं रे,
बिन जोरू सिरताज जगत में कोई नाहीं रे।
मात पिता निज सुख लगि जायो अपने सुख के भाई,
एक जोरू ही संग चलेगी ऐसी शिक्षा पाई।

मिले शिक्षिता सभ्या जोरू सुख का सार यही है।
राखे सदा ताहि कान्धे पर सुख का सार यही है।
मूरख मात-पिता ने पहले बहु सुख आदर पायो।
पै इस सभ्यकाल में सो सब चालै नाहिं चलायो।

पीसें और पकावें परसें चैका देहिं लगाई।
हमरे चरन कमल के नीचे राखें पीठ लगाई।
थरकें पैर पीठ पे देके सुख से होली गांवें।
उसी ताल पे नाचें जो गुर डोरी खेंच नचावें।

सभ्य बीबी

सैंया हमारे सांचे कन्धैया,
नित राखैं कांधे पै लेवें बलैया।
सारी उठाय पिया साया पिन्हावें,
मेमनमां हमका नचावें ताथैया।

सास मोरी पीसे ससुर भरे पानी,
हम भैलें कुरसी के नाविल पढ़ैया।।
आपै सिखाय सैंया लेक्चर दिवावैं,
जलसनमां हमरी करावैं बड़ैया।।

सबै मिल पतिव्रत पन्थ चलाओ।
एक पति मरे करो दूसरा पति विधवा नाम मिटाओ।
पति के मात-पिता को पति ही से पददलित कराओ।।
प्रेम दिखाय लुभाय कन्त के कांधे पै चढ़ि जाओ।
सभा समाजन और जलसन में लेकचर सब सुनाओ।।
चीज बजारू कुछ दिखाय निज कारीगरी बताओ।
नित नवपती प्रेम की सबको सूधी गैल बताओ।।
पतियन संग नाचो मद ढालो हंस-हंस होली गाओ।।

विधवा विवाह

बालक विधवा की शादी में करते हैं जो चूक।
ऐसे मूरख भ्रातगण के फिट्टे मुंह पर थूक।।
भला हम विधवा मा का ब्याह करें।।
माता दादी नानी चाची फूफी घर की नार।
कोई विधवा हो हम उसकी शादी पर तैयार।।
भला हम बीज न छोड़े विधवा का।।

अबला विलाप

1

नारि मात तुम नारि हम, बसत तुम्हारे राज,
नारि राज महं नारिकी हाय जात है लाज।
हाय जात है लाज दुहाई मातु दुहाई,
अबला पीड़न हेत बढ़े चहुंदिस अन्याई।
राछस सम व्यवहार करत चहुंदिसतें धावैं,
मन भावै सो करहिं पकरि अबलहिं जो पावैं।

2

तुम नारि, नारीन के मन की जानत पीर,
डूबत नवका लाज की केहि विधि राखैं धीर?
केहि विधि राखैं धीर लाजकी डूबत बेरो,
चहुंदिस हमरे भाग माहिं लखि परत अंधेरो।
अन्यायी अन्याय करैं अरु दण्ड न पावैं,
अबला लाज गंवाय प्राणहू साथ गंवावैं!

3

ब्रह्मदेश की नारि सब रोवत भरि भरि नैन,
बंगदेश की नारि के चित महं कबहु न चैन।
चित महं कबहु न चैन बेंतसी कांपै थर थर,
ब्रह्मदेश की नारि मरत नित गोरन के डर।
गोरन मा! सत लियो प्रान नारी को खोयो,
हाकिम अरु जूरीन न्याय को नाम डबोयो।।

बिकट बिरहनी

मोटी बिरहन मोटा पेट, उसे बिरह की लगी चपेट।
होली आई कन्त न आया, रोष बड़ा बिरहन को आया।।
खड़ी हुई आंगन में आय, कमर देख के भैंस लजाय।
दो सतूनसी जंघा थरकें, मोटे होठ क्रोध से फरकें।।
बोली दुलहा कतेक बुलावा, होली आई तूं नहिं आवा।।
जोहत जोहत तोहरी बाट, फाटी सारी टूटी खाट।।
टजहुं न आवा निपट गंवार, नहिं आवा तो मर दहिजार।

विज्ञ बिरहनी

होली आई कन्त बिदेश, बिरहन के मन अधिक कलेश।
आये कन्त न भेजी पाती, जल जल उठै बिरह से छाती।
बिरह उदधि में उठै तरंग, बिरहन बदले नाना रंग।
पकड़ा कलम दवात निकाली, कार्ड पर लिख चिट्ठी डाली।
जो प्यारे छुट्टी नहिं पाओ, तो यह सब चीजें भिजवाओ।
चमचम पौडर सुन्दर सारी, लाल दुपट्टा जर्द किनारी।
हिन्दू बिसकुट साबुन पोमेटम, तेल सफाचट औ अरबी गम।
हम तुम जिनको करते प्यार, वह तसवीरें भेजो चार।
दो या चार ताश हों वैसे, उस दिन तुम कहते थे जैसे।
आपकी भेजी जो यह पाऊं, तो जी की कुछ तपत बुझाऊं।
कुरसी मेज है काटे खाती, नाविल पोथी नहीं सुहाती।
तुम चाहे आओ मत आओ, यह सब चीजें झट भिजवाओ।

बिरहनी की दस दशा

प्रथम दशा सारे दिन रोवे, दूजे दशा लंबी हो सोवे।
तीज दशा मल तेल नहावे, चढ़ कोठे पे बाल सुखावे।।
चौथी दशा करे कुछ भोजन, पर क्या करे फंसा पिय में मन।
लड्डू पूड़ी दूध मलाई, माखन मिश्री खीर मिठाई।।
खूब खाय मन नहीं अघावे, पिय को याद करे पछतावे।
नींबू केले सेब अनार, पेठे चटनी आम अचार।।
मन मारे सब ही को चक्खे, पीतम की भी जी में रक्खे।
दशा पांचवीं कंघी चोटी, सेज गुदगुदी चिकनी मोटी।।
छटी दशा झरोखे झांके, पीतम को चारों दिस ताके।
दशा सातवीं सुन मेरे भाई, जाको पूछो घर की दाई।।
दशा आठवीं किसे सुनावें, हंसें, पड़ोसिन गाल बजावें।
नवीं दशा जब पड़ी सुनाई, तब पीतम ने छुट्टी पाई।।
दसवीं दशा सुनो मन लाय, सास बहू को रही जगाय।
पिया आय आंगन में खड़े, सोवे बहू किवाड़े जड़े।।

क्यों लड़की यह कैसी भई? लाओ तागा लाओ सुई।
बाबू की सीओ पतूलन, कल चलना है देहरादून।।

होली

उछलो कूदो धूम मचाओ, होली है भई होली है।
ढोल नहीं तो पेट बजाओ, होली है भई होली है।।

पी-पी लोटे पड़े सड़क पर, आते-आते मारें ठोकर।
कुत्ता मूते टांग उठाकर, होली है भई होली है।।
पगड़ी उछले जूता चटके, कोई थरके कोई मटके।
कोई झूमे कोई लटके, होली है भई होली है।।

ठिर्रा पीकर जो मर जाये, सीधा स्वर्ग लोक को जावे।
रोग-भोग दुख पास न आवे, होली है भई होली है।।
चांडू मदक अफीम चरस हो, व्हिस्की रम से कभी न बस को।
ताड़ी सेंधी भी चैकस हो, होली है भई होली है।।
चूर नशे में मुंह में फिनफिन, मक्खी आकर बोले भिनभिन।
कय करने की जरा न हो घिन, होली है भई होली है।।
लाल धोती फेंक के आये, सड़क पे खड़े कबीर उड़ाये।
बके नशे में आयें बायें, होली है भई होली है।।

सबके मुंह पर जरदी छाई, चोखी सरसों फूली भाई।
आम नहीं दुनिया बौराई, होली है भई होली है।।
खूब चढ़ाओ भंगम भंगा, बम बम शिव शिव हर हर गंगा।
ज्ल गई धोती हो गये नंगा, होली है भई होली है।।

बम प्लेग होली चढ़ आई, देश देश में फिरी दुहाई।
उठ भागे सब ले अंगड़ाई, होली है भई होली है।।
ले ले धूल अबीर उड़ाया, चेहरे फक हो बुक्का छाया।
रंग उड़ा, यह रंग उड़ाया, होली है भई होली है।।

गिलटी के कुमकुमे बनाये, गाल बगल सब ठौर जमाये।
जंघा के भीतर पहुंचाये, होली है भई होली है।।
झूठा किसका स्वांग बनावे, सच्चे मुरदे ले ले धावें।
श्राम नाम की टेर सुनावें, होली है भई होली है।।

चढ़े डाक्टर ले पिचकारी, घर में खूब हुई भरमारी।
शराबोर सब लहंगे सी, होली है भई होली है।।
कपड़े सपड़े जो कुछ पाये, घर के बाहर ढेर लगाये।

डाल मसाला फूंक जलाये, होली है भई होली है॥
धूंआ उठा मचा धुम धूसड़, चारों ओर पड़ा हू हुल्लड़।
घर में रोवैं मार दुहत्थड़, होली है भई होली है॥
क्रें सफाई घर के भीतर, बाहर देखो छीछालेदर।
कूड़ा कीचड़ मट्टी गोबर, होली है भई होली है॥

कूड़े के अम्बार बडे हैं, कीचड़ कादा ढेर पड़े हैं।
गड्डे वाले अड़े खड़े हैं, होली है भई होली है॥
मोरी नाली सड़ी गंधावै, दूर-दूर बदबू फैलावै।
साहब देखें चुप चल जावैं, होली है भई होली है॥

चिमनी धूम निकालें फकफक, इंजन करें रातदिन धकधक।
चांद छिपे तारे जावें ढक, होली है भई होली है।
जिसे घसीटें उसकी खारी, होली है भई होली है॥

जिसको पकड़े कान्ह बनावें, मन भावै सो नाच नचावें।
आंख दिखावें लात चलावें, होली है भई होली है॥
पकड़ करें दड़बे के अंदर, जैसे बाजीकर के बन्दर।
बीच में आकर बने कलन्दर, होली है भई होली है॥

घर में रोवें मात लुगाई, कलकत्ते में चाचा भाई।
टाप रहे चैसे में छाई, होली है भई होली है॥
गीली धरती फूसका छप्पर, घोर अंधेरा बाहर भीतर।
फूस चटाई खाट न बिस्तर, होली है भई होली है॥

कम्प में बैठे मौज मनाओ, चाहे रोओ चाहे गाओ।
थप्पड़ से मुंह लाल बनाओ, होली है भाई होली है॥
बड़े बाजार की यहीं निशानी, जहां न कल में पावे पानी।
टिक्कस की जहां धर्म कहानी, होली है भई होली है॥

पचपन ने यह मजे दिखाये, अधर धार बीचहि अकये।
देखें छप्पन कैस आये, होली है भई होली है॥

देशोद्धार की तान

बम बम बोलो, ईसा ईसा बोला, मुहम्मद भजो भाई रे।
भजो निराकार, भजो रे साकार, हरिपद भजो भाई रे॥
कभी फैया बुद्ध नेमिनाथ शुद्ध, कभी भजो गॉड भाई रे।
सोई है कुक्कुट, सोई है बिस्कुट, हाड़ भाई रे॥

सोई गंगाजल, सोई तुलसी दल, सोडावाटर सोई भाई रे।
सोई है गुलाब, सोई है पेशाब, भेद नहीं कोई भाई रे॥
बाम्हन चमार, मोची कलवार, सब एक सब एक भाई रे
ढाड़ी डोम नाई सब एक भाई यही टेक यही टेक भाई रे।

बड़वे शर्मा मोची वर्मा अरु वर्मा कलवार बने रे।
डोम म्लेच्छ कसाई कुंजड़े शुद्ध सरे दरबार बने रे॥
बाम्हन बने शहीद ईद में यवन जनेऊदार बने रे।
धन्य धन्य! सब मिल भये आरज उन्नति पर तैयार बने रे॥

अल्ला गॉड अरु निराकार में भेद न जानो भाई रे।
इन तीनों को जी में अपने जानो भाई भाई रे॥
गॉड कभी मूरत नहिं पूजी अल्ला ने तुड़वाई रे।
निराकार ने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे॥

अल्ला करें न चौका चूल्हा गॉड मेज बिछवाई रे।
निराकार ने देखादेखी अपनी जाति मिटाई रे॥
तहमद अरु पतलून एक भये एक कोट मिरजाई रे।
चोटी डाढ़ी क्रूस जनेऊ गड्डमगड्ड मचाई रे॥

अल्ला करे ब्याह विधवन का गॉडहु के मनभाई रे।
निराकार ने सात चार की चोखी चाल चलाई रे॥
अड्का तारे बड्का तारे, तारे सजन कसाई रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सच्ची बात सुनाई रे॥

दिन नहीं कटता

दिन कटंत नहीं क्या कीजे रे?
घर की हवा सांस सो रोके, छन छन काया छीजे रे॥
तास तड़ातड़ पीटत पीटत चिलम सड़ासड़ पीजे रे।
पौबारा पच्चीस उड़ावत कैसे संध्या कीजे रे॥
खेल चुके शतरंज गंजफा बाजी ऊपर बाजी रे।
पर निंदा भी करते करते दिन नहीं कटता पाजी रे।
तब लाचार चरस गांजे गोली से प्रीत लगाई रे।
ब्राण्डी व्हिस्की बीयर ताड़ी पी पी सांझ बनाई रे॥
बेवकूफ ब्रह्मा ने दिन को इतना बड़ा बनाया रे।
आयु बनाई इतनी छोटी दो दिन बीच सफाया रे!

कविताएं

चूहों का मातम

कपड़े काटे रुई बिगारी, नाश किये सन्दूक पिटारी।
बिबिर सब घर थुथरायो, चौपट कियो जो आगे पायो।
कबहु कोऊ बस्तु गिराई, कुछ खाई कुछ धूरि मिलाई।
ऐसे दोष तुम्हारे भाई, जानत हैं सब लोग लुगाई।
ऐसे ही लाखन बरस बिताने और दोष हम सुने न जाने।
पर अब दोष कियो तुम भारी, बम्बई से लाये महमारी।
विघ्नविनासन-वाहन भाई, अब चल सकत नहिं चतुराई।
जैसो कियों सोहि फल पाओ, मरि मरि प्लेगलोक कहं जाओ।

जीवित रहते बिल्ली खाती, अथवा चील झपट ले जाती।
तासौं मौत देख क्या डरना? 'उभय प्रकार दुहुंदिस मरना।'
चले जाहु यमपुर को झटके, धांगड़ की लाठी सों लटके।

सुधार

हाथी हूं सुधार का लोगो पूंछ उधर भई पूंछ इधर।
आओ आओ पता लगाओ सूंड किधर है मूंड किधर?
इधर को देखो उधर को देखो जिधर को देखो दुम ही दुम।
बोल रहा हूं चाल रहा हूं सूंड भी गुम है मूंड भी गुम।।
ऐसा हो कोई हरजनमोदी सिर पर सूंड जमावेगा।
लेके आंकुस सीस पै चढ़के सीधी राह चलावेगा।।

कविता की उन्नति

कविता की उन्नति महं अब जिन देर लगावहु,
धावहु-धावहु बेग मित्रगन धावहु-धावहु।
अपनी कविता कहं पहुंचावहु आज सिखर पर।
जिमि नट उन्नत होय बांस के ऊपर चढ़कर।
कितने ही कवि केसव तुलसी सूर बिहारी।
भये मर गये छटा दिखा गये न्यारी-न्यारी।
तुम उनहूं से बढ़ो हाथ दो चार अंगारी।
धराधाम महं धूमधाम मचि जाय तुम्हारी।
निरस सरस तुक जोरहु जो तुमससों बनि आवै,
जाकी तुक जुरिजाय सोई कविता कहलावै।
सीढ़ी माता सरस्वती के सीस बंधावहु,
बेगि दौरि खटखट करते तापर चढ़ि जावहु।।

पंजाब में लायल्टी

सबके सब पंजाबी अब हैं, लायल्टी में चकनाचूर,
सारा ही पंजाब देश बन जाने को है लायलपुर।
लायल हैं सब सिक्ख अरोड़े खत्री भी सब लायल हैं,
मेढ़ रहतिये बनिये धुनिये लायल्टी के कायल हैं।
धर्म-समाजी पक्के लायल, लायल है अखबारे आम,
दयानंदियों का तो है लायल्टी से ही काम तमाम।
लायल लाला हंसराज हैं लायल लाला रोशनलाल,
लायल्टी ही जिनका सुर है, लायल्टी ही जिनकी ताल।
पोथी लेकर इन्हें पड़ी, अपनी लायल्टी दिखलाना,
लाट इबटसन देंगे उनको लायल्टी का परवाना।
मुसलमान साहब तो इससे कभी नहीं थे छुट्टी में।
पैदा होते ही पीते हैं, वह लायल्टी घुट्टी में।

'वतन' सदा से लायल ही था और अब है 'पैसा अखबार'
लायल्टी के मारे ही हैं वह अब जीने से बेजार।
लायल सब वकील बारिस्टर जमींदार और लाला हैं,
म्युनिसिपाल्टी वाले तो लायल्टी परनाला हैं।

खान-बहादुर राय-बहादुर कितने ही सरदार नवाब,
सब मिल-जुलकर लूट रहे हैं, लायल्टी का खूब सबाब।
ऐरा गैरा नत्थू खैरा सब पर इसकी मस्ती है,
लायल्टी लाहौर में अब भूसे से भी कुछ सस्ती है।

केवल दो डिस लायल थे, वो एक लाजपत, एक अजीत,
दोनों गये निकाले उनसे नहीं किसी को है कुछ प्रीत।
हां, कुछ डिसलायल थे रावलपिंडी के पंडित लाले,
वह सब पकड़, दिये फाटक में बाहर लगा दिये ताले।

फिर एक और मिला था डिसलायल का बच्चा पिण्डी दास,
सोते उसे उठाकर घर से फाटक में करवाया वास।
और दिखाई दिया एक डिसलायल लाला दीनानाथ,
उसको भी एक जुर्म लगाकर पिण्डी के करवाया साथ।

इन सबसे लाला लोगों का कुछ भी नहीं इलाका है,
लायल लोगों के घर में डिस-लायल्टी का फाका है।
पेट बन गये हैं इन सबके लायल्टी के गुब्बारे,
चला नहीं जाता है, थककर हांप रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जाने से डर है फट न पड़ें यह इनके पेट,
इसी पेट के लिये लगी है, लायल्टी की इन्हें चपेट।
सुनते हैं पंजाब देश सीधा सुरपुर को जावेगा,
डिस लायल भारत में रहकर इज्जत नहीं गंवावेगा।

पोलिटिकल होली

टोरी जावें लिबरल आवें। होली है, भई होली है।
भारतवासी खैर मनावें। होली है, भई होली है।
लिबरल जीते टोरी हारे। हुए मार्ली सचिव हमारे।
भारत में तब बजे नकारे। होली है, भई होली है।
लिबरल दल की हुई बहाली। खुशी हुए तब सब बंगाली।
पीटें ढोल बजावें ताली। होली है, भई होली है।
हुए मार्ली पद पर पक्के। बराडरिक को पड़ गये धक्के।
बंगाली समझे पौ छक्के। होली है, भई होली है।
बंग भंग की बात चलाई। काटन ने तकरीर सुनाई।
तब मुर्ली ने तान लगाई। होली है, भई होली है।
बंग भंग का हमको गम है। तुमसे जरा नहीं वह कम है।
पर अब उसमें नहिं कुछ दम है। होली है, भई होली है।
होना था सो हो गया भइया। अब न मचाओ तौबा दइया।
घरको जाओ लेह बिलइया। होली है, भई होली है।
नहिं कोई लिबरल नहिं कोई टोरी। जो परनाला सोही मोरी।
दोनों का है पंथ अघोरी। होली है, भई होली है।
अब भी समझो भारत भाई, तुम्हें तुम्हारी दशा जनाई।
आप सहो जो सिर पर आई। होली है, भई होली है।
करते फुलर विदेशी बर्जन। सब गोरे करते हैं गर्जन।
जैसे मिण्टो वैसे कर्जन। होली है, भई होली है।
बराडरिक ने हुक्म चलाया। कर्जन ने दो टूक कराया।
मार्ली ने अफसोस सुनाया। होली है, भई होली है।

वसन्त

फिर सेमर पलास बन फूले, फिर फूले कचनार।
बौरे आम कोइलिया कूकी, आई बहुरि बहार।।
बन उपबन में फूले केते, भांति-भांति के फूल।
प्रकृति रूप धार्यो कछु और, बयार बही अनुकूल।।
फिर खेतन में सरसों फूली शोभा छायी अपार।
फिर फुलवारिन में गेंदन की लगी अनेक कतार।।
चटकत बहु गुलाब की कलियां सौरभ बिखरी जाय।
मधु लम्पट मधुपन ता ऊपर राखी लूट मचाय।।
निर्मल चन्द चान्दनी, चारहुं ओर दई छिटकाय।
रैन दिवस सम भये शीतको, कोमल भयो सुभाय।।

गुप्त जी के कवि और लेखक का श्रीगणेश उर्दू कविता तथा गद्य से होता है। प्रारम्भिक शिक्षार्जन के पश्चात् उनका सम्पर्क झज्जर की संस्था 'रिफाहे आम सोसाइटी' के साथ हुआ। यह संस्था समस्यापूर्ति का केन्द्र स्थल थी। गुप्त जी भी समस्यापूर्ति करने लगे और शनैः शनैः उर्दू में काव्य रचना की ओर बढ़े। उनके अध्यापक मौलवी बरकतअली और मुंशी वजीर मुहम्मद साहब उनकी उर्दू कविता का संशोधन कर दिया करते थे। उनका उर्दू काव्य परम्परागत अधिक है, किन्तु हिन्दी-काव्य परम्परा से एक कदम आगे की चीज है। इतने पर भी कविता के कलापरक निकष पर परखने पर निराशा हाथ लग सकती है, कारण केवल यह है कि कला की निरपेक्ष साधना उनका अभिप्रेत न था। यह काव्य के माध्यम से अपनी समाज-सापेक्ष विचारधारा को वाणी देने के पक्षधर थे।

गुप्त जी का यह अभिप्रेत उनके उर्दू-काव्य से भी व्यक्त होता है और हिन्दी कविता से भी। उर्दू कविता अधिकाशंतः शराब, साकी, मयखाना तक सीमित रहती है। गुप्त जी का मार्ग इससे कुछ भिन्न था। इश्क के विषय में उनकी धारणा एक शे'र से प्रकट होती है -

अजायब है ए शाद! नैरंगे इश्क, लिखी खूब हैरत ने यह जंगे इश्क।
मजामीन ताजाब सरगूद है। खयालात पाकीजा और खूब है।

....

''गुप्त जी का उर्दू-काव्य, उर्दू शायरी के परम्परागत रूप का एक सीमित मात्रा में स्पर्श करते हुए भी उससे अलग है। उसमें न मयखाने की बहुतायत है, न साकीवाला की, न उसमें माशूक की शोखियों का चित्रण है, न आशिक के शिकवे-शिकायत का बाहुल्य, उसमें न दजला-फरात तथा कोहकाफ की प्राकृतिक सुषमा का अंकन है, न युग यथार्थ से पलायन। उसमें प्रकृति के बिम्ब हैं और मानव की अनुभूति की अभिव्यंजना भी। वह न कोरी कल्पना का महल खड़ा करती है और न कला के उपयोगितावादी पक्ष से बचती है। वह नीति, संयम और विवेक के उपदेश भी देती है और राष्ट्र की प्रगति के साथ इन्सान को जोड़ना चाहती है।''

- नत्थन सिंह; बालमुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली

(लेखक ने गुप्त जी के साहित्य पर शोध कार्य किया है।)

बालमुकुंद गुप्त के जोगीड़ा और टेसू

□ डा. सुभाष चंद्र

जोगीड़ा होली के समय गाये जाने वाले देहाती या ग्राम गीत का एक रूप है। यह सामूहिक तौर पर गाया जाता है। इसके गाने वालों का एक दल होता है। जिसमें आमतौर पर एक गानेवाला, एक ढोलक बजानेवाला और दो सारंगी बजानेवाले होते हैं। गानेवाले का वेश योगियों की तरह का होता है। वह देहात में पहने जाने वाले आभूषण भी पहन लेता है, जो आमतौर पर नकली होते हैं। देहात में इसे खूब सुना व पसंद किया जाता है।

उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य में इसका ज्यादा प्रचलन है। यह बिहार के सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्यों में से एक है। लोग परस्पर रंग, गुलाल और अबीर लगाते हैं तथा अपने-अपने ढंग से जोगीड़ा पर आधारित दोहों को बनाते हैं। होली के दिनों की मस्ती और उन्मुक्तता इसके विषयवस्तु व रूप में होती है। इसमें नाच भी होता है। बीच-बीच में टेक के तौर पर 'जोगीड़ा सारा.. रारा.. रारा.. रारा.. रारा... रा रा' का प्रयोग करते हैं। यह टेक एक मस्ती और जोश भरती है। इसका सामूहिक नाद एक आल्हाद पैदा करता है।

जोगीड़ा शब्द जोगी या योगी का ही रूप है, जो योगी नहीं है, लेकिन उस जैसा है। इसकी जड़ें मुख्यधारा के समानांतर लोक में चली आ रही नाथों और सिद्धों की परंपराओं में हैं। जिस तरह से नाथों और योगियों की भाषा में प्रतीक और उलटबांसियां होती हैं उसी की झलक यहां भी दिखाई देती है। पंजाब के सूफी बुल्लेशाह ने भी योगियों से संबंध जोड़ा है कि

रांझा जोगीड़ा, बन आया नी,
वाह सांगी सांग रचाया नी

इसमें देहाती किस्म का भदेसपन भी रहता है, बिल्कुल उसी तरह जैसे देहात के जीवन के हर क्षेत्र में रहती है। इसे लोग अश्लीलता की संज्ञा भी देते हैं। देहाती जीवन में प्रेम, श्रृंगार और देह को रहस्य नहीं बनाया जाता। और न ही दैहिक जरूरतों का रहस्यीकरण किया जाता है। उसे भक्ति की चाशनी में नहीं लपेटा जाता। काम और देह यहां किसी देवी-देवता के नाम से नहीं, बल्कि अपने परिवेश के जीते-जागते चरित्र होते हैं। होली का उल्लास इसको अलग ऊंचाई प्रदान करता है।

जोगीड़ा हास्य और व्यंग्य प्रधान है। हंसते हैं साधारण लोग और व्यंग्य होता है समाज के आभिजात्य पर। समाज के वर्चस्वी लोगों की खिल्ली भी उड़ाई जाती है। गांव के चौधरी-मुखियाओं के चाल-चलन, उनके शोषण आदि पर तीखे कटाक्ष किए जाते हैं। और साथ में कह दिया जाता है कि बुरा ना मानो ये होली की मस्ती है।

जोगीड़ा में प्रयोग होते गए हैं अमीर खुसरो की पहेलियों की तरह से। अनेक किस्म के जोगीड़ा गीत हैं। सीधे-सादे विवरण देते जोगीड़ा हैं और प्रश्नों-उत्तरों के साथ भी हैं। अनेक तरह की कला-युक्तियां इसमें जुड़ती चली गई हैं। हिंदी फिल्मों में होली के गीतों में जोगीरा को शामिल किया जाता रहा है। जन आंदोलनों को समर्थन करने वाले नुक्कड़ नाटकों में भी इस शैली का भरपूर प्रयोग होता रहा है। यह ऐसी जोशीली शैली है कि उपस्थित सभी को लोगों को शामिल कर लेती है।

बालमुकुंद गुप्त ने हिंदी में जोगीड़ा लिखे हैं। जिसमें तत्कालीन शासकों पर करारे प्रहार किये गए हैं। उस समय की राजनीति की विद्रुपताओं और उसके जन विरोधी चरित्र को इनमें समाहित कर दिया है।

बालमुकुंद गुप्त ने जोगीड़ा लोक शैली में धार्मिक क्षेत्र में फैली कुप्रथाओं पर तीखे कटाक्ष किए हैं। बाबा जी, चेला, चेली के संवादों के माध्यम से यह प्रहार किए हैं।

ये प्रहार उन्होंने सनातन हिंदू धर्म के समानांतर चल रही परंपराओं पर किए हैं। धर्म संबंधी तत्कालीन विमर्श के अनेक पहलू इनमें मिलते हैं। यद्यपि सनातनी कर्मकांडों और बाह्याडंबरों पर उतने तीखे प्रहार नहीं दिखाई देते। सनातनी दुराचार और धार्मिक शोषण उनकी आंखों से लगभग ओझल ही रहा। असल में गुप्त जी भारतीय सस्कृति व आत्मा पर दो खतरे देख रहे थे। एक औपनिवेशिक खतरा महसूस करते थे। जिसने भारत को गुलाम बना लिया था और उसके माध्यम से भारतीयों के स्वाभिमान और संस्कृति को समाप्त कर रहे थे।

दूसरा खतरा वे सामी धर्म को मानते हैं। इसलिए हिंदू धर्म में एकेश्वरवाद की तमाम परंपराओं वाले मतों और धर्मों की बुराइयों पर हमले करते हैं। उनके कर्मकांडों पर भी और उनकी अंतर्वस्तु पर भी।

एक ही गाओ एक ही ध्याओ करो उसी का ध्यान।
जो बोतल में सो होटल में निराकार भगवान्।।

'बाबा जी वचनम' और 'चेलागण वचनम' के माध्यम से इन पंथों पर कटाक्ष किए गए हैं। हिंदू धर्म के लिए इन परंपराओं को खतरा मानते रहे हैं। इनके खान पान की आलोचना भी करते रहे हैं। सनातन धर्म की 'शुद्धता' उसके शुद्ध खाने में है। इसलिए भ्रष्ट खाना उनके निशाने पर है। उनकी इस दृष्टि में सनातन की परोक्ष वकालत है।

जरा सुर ताल से नाचो
जो अण्डा सोही ब्रह्मण्डा इसमें नाहीं भेद।
दोनों अच्छे समझो बच्चे सोई आंत साई भेद।।
वेद का सार यही है, बुद्धि का पार यही है,
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो।

बालमुकुंद गुप्त ने मंदिरों के नाम चंदा खाने वालों और धर्म का व्यापार करने वालों की भी खबर ली है। जो हिंदू धर्म का रूप तो धारण करते हैं, लेकिन उसके कर्मकांडों के अनुसार व्यवहार नहीं करते उनकी आलोचना की है। वे आचरणगत शुद्धता पर जोर देते थे, लेकिन उनकी आचरण गत शुद्धता उसके मूल्यों में नहीं, बल्कि सनातनी विधि विधान में बंधी थी।

हिन्दू रूप बनाया रे सबको भरमाया।
हिन्दू बने लगाई चोटी, तौंद करी पतली से मोटी।
धर्म हमारा मछली रोटी, और सब झूठी माया रे।
यह दुनिया है झूठा सपना, हम हैं किसके कौन है अपना।

ईसाई धर्म ङी उनके निशाने पर है। जोगीड़ा गीत उनके धार्मिक मंतव्य स्पष्ट करने की जगह हैं।

टेसु

ढाक या पलाश के वृक्ष के फूल को कहते हैं – टेसु। यह गाढ़े लाल रंग का होता है। ढाक का फूल वसंत ऋतु में खिलता है। इसके रंग को देखकर इसे "जंगल की आग" भी कहा जाता है। होली के रंग इसके फूलों से तैयार किये जाते रहे है। होली पर इसके रंगों की छटा देखने योग्य होती है।

पूरे भारत में बच्चे दशहरे से पहले टेसू और झांझी का खेल लगभग मनाया जाता है। ये ब्रज क्षेत्र में विशेष तौर पर प्रसिद्ध हैं। यह एक उत्सव है जिसमें लड़के गाते हुए घर घर जाते और वहाँ से पैसे या अनाज पाते हैं।

दशहरे से पहले नवरात्र में लड़के तीन खपच्चियों पर टेसू का सिर सा बनाकर टोलियों में घूमते हैं और गीत गाते हुए पैसे मांगते हैं और छोटी लड़कियां छोटी मटकियों में में छेद करके उसमें दीया जलाकार टेसू की पत्नी झांझी के नाम पर 'झांझी गीत' गाती हुई पैसे मांगती हैं। लड़कियों के झांझी-गीतों में गंभीर और पारिवारिक व सामाजिक जीवन के प्रसंग होते हैं। लड़कों की तुकबंदियों को 'टेसू गीत' कहा जाता है। टेसू गीतों में हास-परिहास व मनोरंजन होता है।

लम्बी चुटिया, बूचे कान,
टेसू बड़े दबंग जवान !

तीन टाँग से खड़े अकड़कर,
जैसे आए हों लड़-भिड़कर,
दिखा रहे हैं तीर-कमान,
टेसू बड़े दबंग जवान !

वीर बभ्रुवाहन कहलाते,
घर-घर जाकर अलख जगाते,
इनसे बढ़कर यही महान्,
टेसू बड़े दबंग जवान !

मूँछों पर हैं ताव निकाले,
इनका गुस्सा कौन संभाले?
रखते अजब निराली शान
टेसू बड़े दबंग जवान !

दिन में नहीं, रात में चलते,
किन्तु कमर पर दीपक जलते,
कभी न होती इन्हें थकान !
टेसू बड़े दबंग जवान !

परंपरा से ये गीत चले आ रहे हैं। लोगों ने इनमें नई नई उद्धावनाएं की हैं। अपने समय की समस्याओं को इनमें कहने के रास्ते भी ढूंढे हैं।

बालमुकुंद गुप्त ने टेसु गीतों को राजनीतिक रंग में रंग दिया है। इन गीतों में विद्यमान हास्य और व्यंग्य की पूरी संभावना का उन्होंने प्रयोग किया है।

देख देश की अपने ख्वार, बंगनिवासी उठे पुकार।
आंगन में दीवार बनाई, अलग किये भाई से भाई।

**

अहा! ओहो! हुर्रे हुर्रे!!! बंगदेश के उड़ गये धुर्रे!
रह न सका भारत का लाट, तो भी बंग किया दो पाट।

**

बार दूसरी कर्जन आये, सनद साल दो की फिर लाये।
आय बम्बई में यों बोले, कौन बुद्धि मेरी को तोले।

मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।

**

बालमुकुंद गुप्त ने टेसू गीतों में राजनीतिक कटाक्ष किए हैं। लार्ड कर्जन के भारत विरोधी कार्यों को तथा उनके प्रशासन की अन्य प्रवृतियों को टेसू गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है।

राजनीति के साथ साथ सामाजिक संकटों को भी इन गीतों का विषय बनाया है।

एक बाग में डेढ़ बकायन, उतरी वहां स्वर्ग से नायन।

नायन ने यह कही कहानी, मारवाड़ में हुआ न पानी।

वहां कहत से हाहाकार, कलकत्ते में बंद बाजार।

कपड़े की बिकरी नहिं होती, बिके न चादर बिके न धोती।

**

टेसू आये लो असीस, भारत जीवे कोटि बरीस।

कभी न उसमें पड़े अकाल, सदा वृष्टि से रहे निहाल।

अपना बोया आप ही खावे, अपना कपड़ा आप बनावें।

लोक की ताकत के बालमुकुंद गुप्त पहचानते थे और लोक से गहरे से संबंद्ध थे। ब्रज की और बंगाल के लोकजीवन की विधाओं का सहारा लेकर उनके माध्यम से अपने समय के अंतर्विरोधों, विसंगतियों को वाणी दे रहे थे। इसी प्रयास में लोक शैलियां भी आधुनिक संस्कार में ढल रही थी।

(लेखक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र में हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं।)

प्रस्तुत हैं बालमुकुंद गुप्त के जोगीड़ा और टेसू गीत

जोगीड़ा

बाबाजी बचनम्

हां सदाशिव गोरख जागे-सदाशिव गोरख जागे-
लण्डन जागे, पेरिस जागे, अमेरिका भी जागे!
ऐसा नाद करूं भारत में सोता उठकर भागे॥
हां सदाशिव गोरख जागे-

मन्तर मारूं, जन्तर मारूं, भूत मसान जगाऊं।
सब भारतवालों की अक्किल चुटकी मार उड़ाऊं॥
सदाशिव गोरख जागे-

अक्कड़ तोडूं कंकड़ तोडूं तोडूं पत्थर रोड़े।
सारे बाबू पकड़ बनाऊं बिना पूंछ के घोड़े॥
सदाशिव गोरख जागे-

नाक फोड़ बाबू बच्चों की डालूं कच्चा सूत।
सबकी एक रकाबी करदूं तो जोगी का भूत॥
सदाशिव गोरख जागे-

ठेठ लंदन से आया जी-गुरु का पंजा धराया जी।

अंडा खाया बंडा खाया माछमछरियां बीफ।
आप रांध के मुर्गी खाई सब भोजन में चीफ॥
हुए तब पक्के हिन्दू, कचाई रही न बिन्दू।
खूब सिर को घुटवाया, जतीका वेश बनाया॥
लोक पताला देस निराला उसमें नगर चिकागू।
तिसमें मेला रेलमठेला जाय हुए बड़भागू॥
धरम की धूम मचाई, पड़ी सब ओर अवाई।
जुड़े सब गोरे-गोरी, मिली मोरी में मोरी॥
मोर मुसले चीन चगिले जू जू जू कास्तान।
सबकी आंख में ठहराया हिन्दू धर्म महान॥
बजा वेदों का डंका, गई मिट सारी शंका।
मिले तब चेली चेले, हुए रेलमके ठेले॥
धूम धड़का तूम तड़का, अड़गड़ गड़गड़ गाजा।
अंडा उपनिषत्का तीनों लोकों में धौंसा बाजा॥
हुई पाली पार पीली, फटाफट बाजी ताली।
बढ़ी चारों दिस आदर, खुशी से बोले दादर॥

बीबीजी बचनम्

हुई बाबाजी तेरी सदा चरणों की चेरी।
हे सन्यासी सदा उदासी सुन के तुम्हरी बानी।
जी में बसी तुम्हारी मूरत भूल गई कृस्तानी॥

प्रेम ईसा का छूटा नेह मरियम से टूटा ।
योग का पन्थ बताओ, मुझे भी संग लगाओ ॥
पांव दबाऊं अलख जगाऊं सेवा करूं बनाय ।
साथ तुम्हारे सदा रहूंगी तन में भसम रमाय ।
कहो तो अन्दर आऊं! कहो तो मन्दर आऊं ।
गूदड़ी झाड़ बिछाऊं! ध्यान चरनों का लाऊं ॥
गंगाजल में मूर्गे रांधू करके हिन्दू रीत ।
तुलसी डाल उबालूं अंडे गर्मी गिनूं न शीत ॥
करूं गोबर का चौका, मांस तब रांधू का ।
करूं ऐसी सुथराई, देख सब करैं बड़ाई ॥
हे जोगीजी रीति जोग की अब तुम मुझे सिखाओ ।
ऊंचे नीचे आड़े टेड़े आसन हमें सिखाओ ॥
बताओ मुद्रा कैसी, रीत हो उसकी जैसी ।
शंख घंटे बहु बाजें सिंह साधक सब गाजें ॥

बाबाजी

चली जा रस्ते-रस्ते — यहां जोगी अलमस्ते।
भागो चेली गुड़की भेली मैं जोगी अवधूत।
यहां फकत है कफनी सेली सींगी और विभूत॥
चली जा नाले-नाले, कि जिससे पूंछ न हाले।
करो घर में गुलछर्रे, यहां से बोलो भर्रे।

चेलीजी

कच्चे जोगी पक्की भोगी बालक निपट नदान।
जोग भोग का भेद न जाना दोनों एक समान॥
निरा चोला रंगवाया, जती का वेश बनाया।
जोग का भेद न पाया, मुफत में अलख जगाया॥

बाबाजी

हां मेरी जोगिन सब रस भोगिन रहो सदा निरद्वन्द।
आसन सीखो मुद्रा सीखो करो अभय आनन्द॥
जरा अब मिलकर बाजे, माल आवेंगे ताजे।
मिलेंगे कितने बुल्लू, करें चिल्लू में उल्लू॥

चेलागण वचन

जती लंदन से आया — ब्रह्म का भेद बताया।
जैसी रंडी तैसी संडी सोई खसम सोई जार॥
ब्रह्म सत्य है ब्रह्म एक है यही है वेद का सार।
एक हैं पक्का कच्चा, एक हैं बालक बच्चा॥
एक हैं नर या नारी, एक हैं लोटा थारी।
रल मिल एक हुए बाबाजी मेहतर डोम चमार॥
एक रकाबी एक ही प्याला सब कुछ एक कार।
पंथ यह खूब चलाया, बड़ा अपने मन भाया॥
जतीजी कुछ दिन जीओ, बताशे घोलो पीओ।
एक भये सब बाम्हन नाई कायथ कोल कुम्हार।
चोटी काटी चौका माटी धागा दिया उतार॥

चेलागण वचन

यतीजी इसका खोलो भेद।
अण्डा भला कि मण्डा बाबा आंत भली या मेद।
बिसकुट भला कि सोहन हलवा बकबक भला कि वेद॥

बाबाजी वचन

जरा सुर ताल से नाचो
जो अण्डा सोही ब्रह्मण्डा इसमें नाहीं भेद।
दोनों अच्छे समझो बच्चे सोई आंत साई मेद॥
वेद का सार यही है, बुद्धि का पार यही है,
मिले तो अण्डा चक्खो, मिले तो मण्डा भक्खो।

चेलागण वचन

हां गुरुजी इसका खोलो भेद
किसको पूजें किसको ध्यावें किसको भोग लगावें,
किसको मानें किसको जानें किसको सीस नवावें?
गुरुजी इसका खोलो भेद
कैसे पूजें कैसे ध्यावें कैसे भोग लगावें,
कैसे मानें कैसे जानें कैसे सीस नवावें?

बाबाजी वचन

एक ही गाओ एक ही ध्याओ करो उसी का ध्यान।
जो बोतल में सो होटल में निराकार भगवान्॥

उसी का ध्यान लगाओ, उसी में मन अटकाओ।
वही है मक्खन बिसकुट, वही है मुर्गी कुक्कुट।
अगल बगल में बिसकुट मारो बोतल रक्खो पास।
आंख मूंदकर ध्यान लगाओ छः रितु बारह मास।।
गिरे प्याले पर प्याला, खुले तब दिल का ताला।
मिले तब प्रभु का दरसन, होय गहरा संघरसन।

सबका नृत्य

सब हिन्दू सब हिन्दू भाई, सब हिन्दू सब हिन्दू।
जूता हिन्दू छाता हिन्दू साबन दियासलाई।
मुर्गी हिन्दू चर्बी हिन्दू यवन मल्लेछ कसाई।
हिन्दू सोडावाटर जिज्जर हिन्दू बीयर व्हिसकी।
सब कुछ हिन्दू सब कुछ हिन्दू बात कहूं किस किसकी?
लण्डन हिन्दू पैरिस हिन्दू हिन्दू गोल मिठाई।
सूखी मछली बिलकुल हिन्दू जो यूरोप से आई।

...

तागड़ दिन्ना नागर बेल, तीन तूंबड़ी नीला कपड़ा।
पूंछ सहित जो मछली खाय, रेल पेल बैकुण्ठहि जाय।
इकादशी को काटै चोटी, उसकी धाक स्वर्ग में मोटी।
जो बोतल का चाटे काग, उसके खुलें स्वर्ग में भाग।
खड़ा-खड़ा जो मारे धार, सोही करे देश उद्धार।
यही देखो कलियुग के खेल, तागड़ दिन्ना नागर बेल।
यह देखो कलियुग की होली, नीचे बाम्हन ऊपर कोली।
नहि कोई रानी नहिं कोई राजा, पेलो डण्ड बजाओ बाजा।

भारत मित्र, 22 मार्च, 1897

बाबाजी वचनम्

अक्कड़ तोडूं कक्कड़ तोडूं तोडूं कच्चा सूत।
बालू पेलूं तेल निकालूं तो जोगी का पूत।
रेतमें नाव चलाऊं, नदी में आग लगाऊं।
हवा में भवन बनाऊं, तवे पे पेड़ लगाऊं।
जाऊं उत्तर चीन में तो मैं ऐसी बूटी लाऊं।
जिसको वह बूटी छू जावे भेड़ा उसे बनाऊं।
लगे कन्चन की ढेरी, सुखी हो जोगिन मेरी।
बने चरनन की चेरी, लगे गहरी चौफेरी।

आओरे मेरे सरल शिखण्डी करो गुरु की ओट।
तुमको करके सामने पीछे से मारूं चोट।।
घाव गहरा पहुंचाऊं, मनोरथ सिद्ध कराऊं।
मढ़ी पक्की बनवाऊं, मजे में अलख जगाऊं।
जोगीजी की बने मढ़ैया लगें किवड़िया लाल।
सुख से सोवें जोगी जोगिन चेले होंय निहाल।
छमाछम घुंघरू बाजे, गुरु सेजों पे राजें।
शिष्य पहरे पर गाजें, सेज फूलों की साजें।

चेला वचनम्

हिन्दू धरम अलम पे सोहे मछली बायें हाथ।
सिर पे चोटी कांधे झोली इन सबका क्या साथ?
मिटाओ संशय मेरा, रहूं चरनन का चेरा।
हियेका मिटे अंधेरा, नाम हो जग में तेरा।

बाबाजी वचनम्

अरे शिखण्डी ओ पाखण्डी नाहक उमर गंवाई।
बैंगन बेच तमाखू बेचा, तो भी अकल न आई।।
पढ़ी नाहक अंगरेजी, दिखाई झूठी तेजी।
बनो कुछ दिन दुमरेजी, जरा सीखो सहमेजी।
अल्लाराम एक रे चेले अलम पताका एक।
भिखमंगे को सभी एक हैं यही हमारी टेक।।
हमारे तब हैं दाता, खुला है अपना खाता।
जिसे जो कुछ है भाता, सोही वह है रख जाता।
हाड़ी मोची बाम्हन नाई कोरी डोम चमार।
मछबा धांगड़ मेहतर झींवर अपने सब सरदार।।
टका कोई ले आवे, यहीं आकर रख जावे।
गुरु की मढ़ी बनावे, नाम अपना कर जावे।।
सुनो अब मछली का अहवाल।
मछली माता-पिता है अपनी मछली जीवन प्रान।
मछली से यह देह बनी है सुन बच्चा नादान।।
मछरिया बड़ी चीज है।
मछली कछवा और केकड़ा बड़ालीकी जान।
तिनमें सबसे उत्तम चिड़ी सुन बच्चा नादान।।

तुझे तो खबर नहीं है।
मछली ही से धर्म बना है, मछली से संसार।
मछली बनने को ठाकुर ने लिया मच्छ अवतार।।
सुनो मछली की महिमा।
मछली धर्मभवन शिवमंदिर मछली लंबा हाल।
मछली षटदर्शन चटशाला मछली है तर माल।।
इसी की खातिर सब है।
सबका सार यही है बच्चा मिले मछरिया भात।
चाहे पड़े जूतियां सिर पर चाहे घूंसे लात।।
मिले पर रोइ मछली।

चेलाजी वचनम्

गुरुजी सच्चा ज्ञान सुनाया।
ज्ञान सुनाया मनको भाया संशय भागे दूर।
जे कुछ कहिये स्रोहो करें हम हाजिर खड़े हजूर।।
कहो सो हुकम बजावें।

गुरुजी वचनम्

शाबस बच्चा सरल शिखण्डी चलो दाल की मंडी।
सिर पर धरी शिवालय बेटा मांगो भड़े रंडी।।
मांग के भिक्षा लावो, गुरुकी मढ़ीं बनाओ।
झोली डाल गले में बच्चा घर-घर अलख जगाओ।
जो कुछ लाओ या रख जावो भात मछरिया खाओ।।
भरेगा, पेट तुम्हारा, बनेगा काम हमारा।
कौन है यह देहाती, बुस्तर, ऐंडे बैंडे फूटे झींझर?
गवदी बेईदेघमधुसर, शक्ल के घोंघे अक्ल के ऊसर।
चोटी उड़े हवा में फरफर, मूछ करे चेहरे पर थरथर।
पेट तो देखो पूरी नांद, शक्ल तो देखो काला चांद।
खा खा धान हुए हैं मोटे, डोल के भारी अकल के छोटे।।
आहा! देखो क्या है सिर पर, वाह वाह! पूरा शिवमंदिर।
झंडा झोली मछली थाला, खूब खिलाया है गुल लाला।।
कहां चले जाते हैं मिलकर, खूब चले हैं स्वांग बनाकर।
देखें चलो कहां जाते हैं, क्या रोते हैं क्या गाते हैं?

बाबा बच्चों का नृत्य

हिन्दू रूप बनाया रे सबको भरमाया।
हिन्दू बने लगाई चोटी, तोंद करी पतली से मोटी।
धर्म हमारा मछली रोटी, और सब झूठी माया रे।
यह दुनिया है झूठा सपना, हम हैं किसके कौन है अपना।
हरदम पैसा-पैसा जपना, यही ध्यान हम लाया रे।
चेलों से भिक्षा मंगवावें, घर में बैठे चैन उड़ावै।
चेले खाली रोटी पावें, यहीह ढंग मन भाया रे।
बम बम भोला भांग का गोला लाओ भैया चन्दा।
गुरु हमारे मढ़ी बनावें काम पड़ा है मन्दा।।
बनेगा शिव का मन्दर, नमूना देखो सिर पर।
धरम काज में धन लगता है चिन्ता कुछ मत कीजे।
जो पावें बाबा को देंगे देना हो सो दीजे।।
कहें, सो ही करते हैं, पेट अपना भरते हैं।
भीख मांगने गुरु के कारन गये शिखण्डी था।
मैं भरभण्डी लिया है मैंने सिर भवन उठाय।।

देखिये हिम्मत मेरी, करूं मैं सच्ची फेरी
गुरु मोहिं अलख लखाया जी।
गुरु प्रसाद से सिर पर मैंने भवन उठाया जी।।
गुरु की सेवा करो साध के तेल लगाया जी।
भये प्रसन्न गुरु ने मुझको अमृत प्याया जी।।
अब मोहि सबसे प्यारा लागे भैंस का जायाजी।
जिधर देखता हूं आंखों में वही समाया जी।।

सब बालक

धन धन जोगी धन धन भोगी धन्य धन्य अवतार।
दया दृष्टि कर, लीजे जोगी, होली का उपहार।।
हार कैसा सुंदर है सवारी भी हाजर है।
चटपट आप सवार हूजिये पहन गले में हार।
झण्डा लिये हाथ में चलिये फिरिये सरेबजार।।
धूम तब होगी गहरी सुना मेरे बाबा लहरी।

भारतमित्र, 27 मार्च, 1899

टेसू

आये-आये टेसू राजा, पीटो पेट बजाओ बाजा।
अबके टेसू रंग-रंगीले, छैल-छबीले, नोक-नुकीले।
अबके टेसू नमक हलाली, तोड़ें तान बजावें ताली।
अमली की जड़ से निकला पतंग, तिसमें निकला शाह मलंग।
शाह मलंग चलावें सोटी, उसमें निकली लंबी चोटी।
लंबी चोटी चिन्दक चिन्दू, तिसमें निकले पक्के हिन्दू।
पक्के हिन्दू भवन बनाया, तिस पर कव्वा बैठा पाया।
कव्वे ने काली बीट, तिसमें निकला चूना ईंट।
चूने ईंट से निकला हाल, उसमें निकला आटा दाल।
आटे दाल से निकली रोटी, कोई पतली कोई मोटी।
रोटी खाई छुटी अंधाई, गंगा किरिया रामदुहाई।
तब बैठे पंचायत जोर, कहत कहानी हो गई भोर।
सेख सलीम ने कही कहानी, चौमासे भर भया न पानी।
गेहूं भये सवा नौ सेर, यह देखो किसमत का फेर।
बाबू करें मान की हानी, सूखे खेत पड़ा जिमि पानी।
ठोकी जाय अदालत अर्जी, ऐसी क्या है राम की मर्जी?
क्यों नहिं करता छिड़काव, क्यों नहीं चलती सड़क पे नाव।
सम्मन करो राम पर आये, करके एक वकील पठाये।
कहै वकील सुनोजी राय, ऊंट चढ़े को कुत्ता खाय।
अफरीका पर हुई चढ़ाई, बादल गये उधर भी भाई।
वह सोना भरकर लावेंगे, तब हम भी मेंह बरसावेंगे।
भारत पर बरसेगी हुन, लग रही है सोने की धुन।
यह देखो झण्डीके रंग, सूखे मूसर औ बजरंग।।

पहला रंग

नाइन एक स्वर्ग से आई, उसने यह सब कथा सुनाई।
मारवाड़ में पड़ा अकाल, सुनकर बाबू भये निहाल।
दौड़ गये ताऊ के पास, ताऊ के मन बहुत हुलास।
ताऊ कहै सुनोजी बाबू, तुम कैसे बन बैठे हाबू?
लोग देस के भूखे मरें, उनके लिये कहो क्या करें?
ताऊ कहे सुनो रे पूत, किन बहकायो छोरो ऊत।
जल्दी घरके मूंद किवाड़, अपना अपना झोंको भाड़।
घर में बैठे चैन से खाओ, देस भेस चूल्हे में जाओ।
जिन पर है ईश्वर की मार, उनका कुछ मत करो विचार।
उनके तुम नीरे मत जाओ, अपनी ढोलक आप बजाओ।
इतनी सुन बाबू हरखाय, मूछों पर दी ताव चढ़ाय।
बोले ताऊ चोखी कही, बात तुम्हारी सबसे सही।
यह कहकर गाड़ी मंगवाई, बैठके बाबू हुए हवाई।
बड़ पीपल में पड़ी जंजीर, कोई लो तुक्का कोई लो तीर।।

दूसरा रंग

एक रंग सबसे पंचरंगा, जल गई धोती रह गये नंगा।
कुरसी पर कुछ बैठे बाबू, और सामने बैठे हाबू।
हाबू बोले बाबू सुनो, कुर्सी छोड़ो सिरको चुनो।
करते नहीं नरदमा साफ, बैठे हो बनके अशराफ।
भागो सभी निकम्मे लोग, अब नहीं मिलता छप्पन भोग।
इतनी सुनकर बाबू भागे, आंख मसलते टेसू जागे।।

तीसरा रंग

धस धस धसके नैनीताल, साहब बीबी नाचें बाल।
धसकें उसही पर पुनि चढ़ें, और नई कुछ युक्ती गढ़ें।
धसकत धसकत पहुंचे बंग, धस गये उससे दारजिलंग।
साहब देख बहुत घबराये, सारे साहब लोग बुलाये।
बोलो यारो अब क्या करना, हजरत बोले कुछ मत डरना।
ऊंचे बसो और भी चलकर, करो न जी में मरने का डर।
मौत अगर आवे मर जाओ, जितने जीओ मजे उड़ाओ।।

चौथा रंग

जुग जुग जीओ टेसू राजा, सदा रहे झेंझी सिरताजा।
लड़के लाड़े टेसू खेलें, कुढ़ मूहें सब पापड़ बेलें।
कह भई मुन्ना कैसी बात, हां भई चुन्ना सब कुशलात।।

भारतमित्र, 9 अक्तूबर, 1899

टेसू

अबके टेसू रंगरंगीले, अबके टेसू छैल छबीले।
अबके शान बड़ी है आला, अबके है कुछ ढंग निराला।
बड़ी धूम से टेसू आये, लड़के लाड़ी साथ लगाये।

होगा दिल्ली में दरबार, सुनकर चौंक पड़ा संसार।
शोर पड़ा दुनिया में भारी, दिल्ली में है बड़ी तैयारी।
देश देश के राजा आवें, खेमें डेरे साथ उठावें।
घर दर बेचो करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तैयार।
बढ़िया रेशम बढ़िया जरी, अच्छी से अच्छी और खरी।

चमचम चमचम मोती चमकें, हीरे लाल दमादम दमकें।
हाथी घोड़े भीड़ भड़ाका, देखें सब घर फूंक तमाशा।
आओ सब घाटी के लोग, आओ घर बाटी के लोग।
आओ काम के करने वालो, आओजी रंग भरने वालो।

चलो चलो सब खेल खिलारी, आओ आओ सब ढिमधारी।
देखा सुना न जो कुछ कभी, दिल्ली में वह होगा सभी।
भर भर बीयर चलें सन्दूकें, बीस हजार चलें बन्दूकें।
मार धड़ाधड़ तोपें चलें, दिल सब नामर्दों के हलें।

बिजली करे रोशनी जाकर, भरे हाजिरी बनकर चाकर।
ऐसा आन पड़ा है जोग, दुनिया भर के आवें लोग।
बादशाह के भाई आवें, साथ साथ कितनो को लावें।
बड़े लाटकी माता आवें, साथ में उनके भ्राता आवें।

अमरीका से साली सास, चलकर आवें हिये हुलास।
खूब बने श्रीकर्जन लाट, होय निराला उनका ठाठ।
ऐसी हो उनकी पोशाक, सबकी लगे उधर ही ताक।
जमें ठाठ से सब दरबार, सबके बने लाट सरदार।

कोई न उनके रहे समान, सभी रहें ढलकाये कान।
माता सास ठाठ यह देखें, वार वार के पानी पीवें।
देखेंगे यह छटा निराली, पास लाट के सासू साली।
क्यों भई लड़के कैसा रंग, कुछ समझे दिल्ली के ढंग।

यह दुनिया है एक तमाशा, नाचो कूदो हीही हाहा।
बहती गंगा धोलो हाथ, वही ढाक के तीनों पात।

भारत मित्र, 4 अक्तूबर 1902

तीन अठन्नी

यह देखो थियेटर की बन्नी, एक रुपए में तीन अठन्नी।
पड़ गई धूम शहर में भारी, व्याकुल हो गये सब नरनारी।
जो सपने में आई, वह सबके सम्मुख उठ धाई।
अमृत का यह आज है रगड़ा, देव दनुज का सा है झगड़ा।

दौड़ो दौड़ो चूक न जाओ, कहीं न सिर धुन-धुन पछताओ।
है बेनीफिट सुबासिनी का, मुखदर्शन एक सुद्दासिनी का।
धर्मास्थान धर्मा का तल्ला, उसी ओर है सबका हल्ला।
हिन्दू मुसलमान अंगरेज, और पारसी सबसे तेज।

बालक बूढ़े मर्द लुगाई, सब करते हैं आज बड़ाई।
महायज्ञ का दर्शन कर लो, धर्म पुण्य के पाकेट भर लो।
ऐसा हवनकुंड नहीं आन, चलो करो आहुती प्रदान।
जन्म-जन्म के मेल बहाओ, चलो धर्मगंगा में नहाओ।

आप तरी दो सबको तार, दो खेवों में बेड़ा पार।
कलियुग में है यही जहाज, इसमें नहीं किसी की लाज।
सुन कर यों यज्ञ की अवाई, कलकत्ते में पड़ी तवाई।
दौड़े सेठ मुटक्कड़चन्द, मुंह खोले और आंखें बंद।

कितने दौड़े तोन्द फुलाये, कितने दौड़े मुंह लटकाये।
कितने ही बाबू शौकीन, कितने दौड़े तेरह तीन।
दौड़े कितने दुबले पतले, कितने लंबे कितने औछे।
किया धर्ममंडप में डेरा, दो घंटे को लिया बसेरा।
दर्शन किये बहाये पाप, पल में तारे दादा बाप।
देवी जी के दर्शन किये, जेवर चेन भेंट में दिये।
हाथ के छल्ले गले का हार, जो कुछ पाया नकद उधार।
समझे भी कुछ लड़को भाई, इस युग की है यही बड़ाई।
खाना-पीना मजा उड़ाना, आंखें मूंद गढ़े में जाना।

स्वागत

वर्षा बीती सर्दी आई, टेसूजी की पड़ी अवाई।
आये आये टेसू राव, लड़कों के मन में अति चाव।
बड़ी धूम से टेसू आये, भीड़ भड़क्का साथ लगाये।
आये भोले भाले टेसू, लालबुझक्कड़ काले टेसू।

टेसूजी का सुनिये हुलिया, मुंह है उनका फूटी कुल्हिया।

चुन्धी आंखें बैठा नाक, तिस पर हरदम बीनी पाक।
ऐसे हैं टेसू महाराज, भक्तन के नित सारें काज।
देश-देश की बात सुनावें, गुप्त प्रकट सब खोल दिखावें।
सुनिये उसका पूरा हाल, कैसा बीता अब का साल।।

बड़े लाट कर्जन

बार दूसरी कर्जन आये, सनद साल दो की फिर लाये।
आय बम्बई में यों बोले, कौन बुद्धि मेरी को तोले।
मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।
मैं जो कुछ चाहूं सो होय, मेरे ऊपर और न कोय।

राजा का भाई था आया, उसको भी नीचा दिखलाया।
पहले मुझको मिला सलाम, तब फिर उससे हुआ कलाम।
मुझको सोना उसको चांदी, मुझको बीबी उसको बांदी।
गया विलायत शोर मचाया, सबको भौंचक करके आया।

बार-बार यह कहा कड़ककर-किसका शासन मुझसे बेहतर?
भारत की रग मैंने पाई, तुम क्या समझोगे मेरे भाई।
देखो मेरे यह दो साल, कैसा सबको करूं निहाल।
मेरे पीछे जो कोई आवे, बैठे सोवे मौज उड़ावे।
करना पड़े न कुछ भी काम, बैठे बैठे मिले सलाम।।

सच्चाई

बड़े लाट के जी में आई, दिखलावें अपनी सच्चाई।
सभा जोड़ तब यह फरमाया, जुग जुग रहे हमारा साया।
हमही भारत का कल्यान, करके दंगे पद निरबान।
कल जो कुछ कौंसिल में किया, वह तो तुमने सब सुन लिया।

है कानून जबान हमारी, जो नहीं समझे वही अनारी।
हम जो कहें वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।
सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहां तमीज?
औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।

येही पक्का सच्चापन है, सच कहना है तो कच्चापन है।

बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तौर।
मन में कुछ मुंहपे कुछ और, यही सत्य है करलो गौर।
झूठ को जो सच कर दिखलावे, सोही सच्चा साधु कहावे।
मुंह जिसका हो सके न बन्द, समझो उसे सच्चिदानंद।।

मल्लयुद्ध

बनके सच्चों के सरदार, करके खूब सत्य परचार।
धन्यवाद सुनते थे कर्जन, उतरी एक स्वर्ग से दर्जन,
उसने लेकर तागा सुई, जादू की एक खोदी कुई।
उससे निकली फौजी बात, चली तबले में तब लात।

भिड़ गये जंगी मुल्की लाट, चक्की से चक्की का पाट।
गुत्थमगुत्था धींगा मुश्ती, खूब हुई दोनों में कुश्ती।
ऊपर में तब पड़ी पुकार, किसकी जीत कौन की हार।
बादशाह ने हुक्म सुनाया, सो सुनकर सबके मन भाया।

सदा विजय जिसने है पाई, अब भी जीत उसी की भाई।
कलम करे कितनी ही चरचर, भाले के वह नहीं बराबर।
जो जीता सो मजे उड़ावे, जो हारा सो घर को जावे।
किचनर जीते कर्जन हारे, शोर मचा दुनिया में सारे।।

रोष

बड़े लाट को गुस्सा आया, बड़े रोष से कलम उठाया।
लिखा ठनकर सुनो हुजूर, अब बंदे को कीजे दूर।
मुझको जल्दी रुखसत कीजे, और किसी को यह पद दीजे।
लण्डन से यह उत्तर आया, कहा आपने सो मन भाया।
कहा आपका सब मंजूर, जल्द हूजियेगा काफूर।
सुनते ही बस उड़ गये होश, मिट गया सारा जोश खरोश।
सोचा और हुआ कुछ और, उल्टा हो गया कैसा दौर!

विषाद में हर्ष

अहा! ओहो! हुर्रे हुर्रे!!! बंगदेश के उड़ गये धुर्रे!
रह न सका भारत का लाट, तो भी बंग किया दो पाट।

पहले सब कुछ कर जाता हूं, पीछे अपने घर जाता हूं।
बेशक मिली उधर से लात, किंतु यहां तो रह गई बात।

वह थी अपने घर की चोट, उसके सहने में नहिं खोट।
पर बाहर इतराये जाना, खाली शेखी खूब दिखाना।
अफसर से चट दब जाना, जेरदस्त को अकड़ दिखाना।
यही सभ्यशासन का सार, सुन लेना तुम मेरे यार।।

स्वदेशी आंदोलन

देख देश की अपने ख्वार, बंगनिवासी उठे पुकार।
आंगन में दीवार बनाई, अलग किये भाई से भाई।
भाई से किये भाई दूर, बिना विचारे बिना कुसूर।
आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवे मरें।
चाहे बंग होय सौ भाग, पर न छुटे अपना अनुराग।
भोग विलास सभी दो छोड़, बाबूपन से मुंह लो मोड़।
छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो खयाल।
अपनी चीजें आप बनाओ, उनसे अपना अंग सजाओ।
भजो बंगमाता का नाम, जिससे भला होय अंजाम।

ताऊ और हाऊ

एक बाग में डेढ़ बकायन, उतरी वहां स्वर्ग से नायन।
नायन ने यह कही कहानी, मारवाड़ में हुआ न पानी।
वहां कहत से हाहाकार, कलकत्ते में बंद बाजार।
कपड़े की बिकरी नहिं होती, बिके न चादर बिके न धोती।
दोनों ओर देख के छूछा, हाऊ ने ताऊ से पूछा।
कहिये ताऊ अब क्या करें, कैसे अपनी पाकेट भरें?
बिकती नहीं एक भी गांठ, सब गाहक बन बैठे ठांठ।
दिये बहुत लोगों को झांसे, फंसता नहीं कोई भी फांसे।
विजयादशमी है नजदीक, कुछ तो करना होगा ठीक।
ताऊ कहे सुनो जी हाऊ, तुम निकले कोरे गुड़खाऊ।
नहीं पीसगुड़ पटसन तो है, नारंगी नहिं बैगन तो है।
पटसन के रस्से बटवाओ, उससे सारा घर बंधवाओ!
सारा घर जब होगा एक, तभी रहेगी अपनी टेक।।

आशीर्वाद

टेसू आये लो असीस, भारत जीवे कोटि बरीस।
कभी न उसमें पड़े अकाल, सदा वृष्टि से रहे निहाल।
अपना बोया आप ही खावे, अपना कपड़ा आप बनावें।
बढ़े सदा अपना व्यापार, चारों दिस हो मौज बहार।
माल विदेशी दूर भगावें, अपना चरखा आप चलावे।
कभी न भारत हो मुहताज, सदा रहे टेसू का राज।।

30 सितम्बर, 1905 भारतमित्र

स्वागत

मेह बरसाते टेसू आये। मौज उड़ाते टेसू आये।
वर्षा होती मूसलाधार। टेसू गावें खूब मलार।
खूब शरत् में टेसू आया। टेसू राजा के मन भाया।
अच्छा हुआ समय का फेर। कमल नहीं कीचड़ का ढेर।
रिमझिम रिमझिम बरसे पानी। टेसू बोले सुनरी नानी।
चुप क्यों बैठी है मरजानी। बढ़िया सी एक सुना कहानी।

कर्जन-फुलर

मास नवम्बर कर्जन लाट। उलट चले शासन का ठाट।
फुलरजंग को गद्दी देकर। चल दिये अपना सा मुंह लेकर।
फुलरजंग ने की वही जंग। सब बंगाल हो गया दंग।
लड़कों से की खूब लड़ाई। गुरखों की पलटन बुलवाई।
किया मातरम् बंदे बंद। और सभाएं रोकी चन्द।
जोर स्वदेशी का दबवाया। जगह-जगह महिमा जाय न वरनी।
अंत तलक लड़कों से लड़े। आखिर को उल्टे मुंह पड़े।
पकड़ा पूरा एक न साल। आप गये रह गया अकाल।
खूब वचन गुरुवर का पाला। पर आखिर को हुआ दिवाला।

प्रिंस आफ वेल्स

सपत्नीक युवराज पधारे। धन्य हुए तब भाग हमारे।
कई महीने दौरा किया। घाट घाट का पानी पिया।
जहां तहां पर हुई दिवाली। खूब दिखाई दी खुशहाली।
कूच हुआ जब उनका डेरा। रहा हिन्द में वही अंधेरा।

गुरु घंटाल का स्वप्न

बिछी सवा गज ऊंची खाट। तोशक और तकियों का ठाट।
उस पर पड़े गुरु घंटाल। सुनिये उनका अजब ख्याल।
करवट लेने को जब फिरे। औंधे मुंह धरती पर गिरे।
छाती में कुछ आई चोट। आंख सूजकर हुई पपोट।
चेले गये दौड़कर पास। मुंह लटकाये चित्त उदास।
बोले धन्य गुरु महाराज। खैर करी ईश्वर ने आज।
गुरु कहें सब चेले सुनो। मत रोओ मत सिर को धुनो।
स्वप्न हमें एक ऐसा आया। नन्हा बालक गोद खिलाया।
बहुत देर तक रहे खिलाते। कुछ हंसते कुछ उसे हंसाते।
गिरा हाथ से छूटकर लड़का। उसे देख मेरा जी भड़का।
उसे उठाने को जब कूदा। तब यह काम हुआ बेहूदा।
लड़का वड़का हाथ न आया। पर छाती में धक्का खाया।
चेले बोले मिलकर सारे। धन्य गुरुजी भाग हमारे।
आप तो थे खटिया पर सोते। अगर कहीं घोड़े पर होते?

भारतमित्र, 1906

मिन्टो मार्ली

कर्जनजी जब देश सिधारे। तब मिन्टोजी ने पग धारे।
लोग लगे अभिनन्दन देने। चुपके-चुपके उत्तर लेने।
मारवाड़ियों से खुश होकर। कहा बनो तुम रायबहादुर।
पढ़ो लिखे मत, मौज उड़ाओ। आये साल उपाधी पाओ।
बंगदेशियों से यों कहा। तुम तो हो झगड़ालू महा।
हम नहीं जाने बंग विभाग। दूर खड़े हो गाओ राग।
हम तो भई अब घबराते हैं। लीजे शिमले को जाते हैं।
शिमले चले गये चुप साधी। वहां लग गयी अटल समाधी।
सुनो विलायत की अब बात। कन्जरवेटिव खा गये मात।
बाज उठी लिबरल की तंत्री। हुए मार्ली भारतमंत्री।
मंत्री होकर कथा सुनाई। सुनो बंग के लोग लुगाई।
बंगभंग का है अफसोस। पर अब बात गई सो कौस।
होना था सो हो गया भाई। कर्मरेख नहिं मिटे मिटाई।
मिन्टो से है अपना मेल। दिन दिन बढ़े प्रीति की बेल।

हिम्मत

□ **बालमुकुंद गुप्त**

'कर नहीं सकते हैं' कभी मुँह से कहो न यार,
क्यों नहीं कर सकते उसे, यह सोचो एक बार।

कर सकते हैं दूसरे पाँच जने जो कार,
उसके करने में भला तुम हो क्यों लाचार?
हो, मत हो, पर दीजिए हिम्मत कभी न हार,
नहीं बने एक बार तो कीजे सौ-सौ बार।

'कर नहीं सकते' कहके अपना मुँह न फुलाओ,
ऐसी हलकी बात कभी जी पर मत लाओ।

सुस्त, निकम्मे पड़े रहें आलस के मारे
वही लोग ऐसा कहते हैं, समझो प्यारे।

देखो उनके लच्छन जो ऐसा बकते हैं,
फिर कैसे कहते हो, कुछ नहिं कर सकते हैं?
जो जल में नहिं घुसे, तैरना उसको कैसे आवे,
जो गिरने से हिचके, उसको चलना कौन सिखावे।

जल में उतर तैरना सीखो, दौड़ो, सीखो चाल,
'निश्चय कर सकते हैं' कहकर सदा रहो खुशहाल।

(गुप्त जी का यह चित्र 1889 का है जब वे उर्दू अखबार 'कोहिनूर' के संपादक थे।)

बाल साहित्य

बालमुकुंद गुप्त ने बच्चों के लिए साहित्य रचना की। बाल साहित्य की पुस्तक पहले बांगला भाषा में रसिकलाल दत्त के नाम से छपी। सन् 1906 में ये बाल कविताएं और बाल कथाएं 'खिलौना' नाम से पुस्तक हिंदी में प्रकाशित की। इसकी भूमिका में बालमुकुंद ने लिखा कि

"अंगरेजी में लड़कों के दिल बहलाने के लिए सैंकड़ों किताबे हैं, जिनसे उनका पढ़ने में बहुत उत्साह बढ़ता है। बंगला में भी आजकल ऐसी पुस्तकें कुछ कुछ होने लगी हैं। खिलौना जब मैंने बंगला भाषा में बनाया, तब मेरे मन में आया कि यदि इसकी हिन्दी की जाए, तो हिन्दुस्तानी लड़कों का भी उपकार हो सकता है। इस ख्याल से मैं खिलौने को हिन्दी में बनाता हूं। सज्जन लोगों को पसंद आने से, और लड़कों का उपकार होने से, अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।"

इसकी विशेष बात यह थी कि इन कविताओं को बच्चों के लिए सुपाठ्य बनाने के लिए इसके साथ चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं। यह उनकी बच्चों में साहित्य संस्कार पैदा करने और उसके लिए सामग्री तैयार करने की प्रतिबद्धता को समझा जा सकता है। यहां हम बालमुकुंद रचित बाल साहित्य पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

हिंदी में बाल साहित्य के प्रवर्तक बालमुकुंद गुप्त

□ सिद्धार्थ शंकर राय

19वीं और 20वीं सदी का पूर्वार्द्ध भारत में नवीन प्रयोगों और प्रयासों की सदी रही है। इस अवधि में समाज, संस्कृति, राजनीति, साहित्य आदि में अनेक प्रयोग हुए और इन प्रयोगों ने आज के भारत की नींव रखी। सामाजिक और राजनीतिक प्रयासों के प्रतिफलन से अनेक गुणात्मक परिवर्तन हुए और समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति, समुदाय और समूहों में परिवर्तन की आकांक्षा जगी। इस समूची प्रक्रिया को भारतीय इतिहासकार और समाज-विज्ञानी भारतीय नवजागरण का नाम देते हैं।

भारतीय नवजागरण की परिवर्तन-प्रक्रिया बहु-रेखीय और बहु-अनुशासनात्मक थी । नवजागरण की यह चेतना हिंदी प्रदेश में भी परिव्याप्त थी। इस दौर के सामाजिक कार्यकर्ताओं बौद्धिकों, चिंतकों और लेखकों में जनजागरण की अथक चेष्टा दिखाई पड़ती है क्योंकि गुलाम भारत के प्रबुद्ध लोगों ने समझ लिया कि भारत में अनेक स्तरों पर बदलाव की आवश्यकता है और यह बदलाव चेतना के स्तर ही आरंभ हो सकता था। इसी कारणवश नई भाषा, नई विधाएँ, नई शिक्षा और सर्वसुलभ शिक्षा-पद्धति आग्रह दिखाई पड़ता है। नव्यता के नये परिसर के निर्माण में पोथियों की अग्रणी भूमिका होगी। एक ऐसी शिक्षा जिसमें धर्म, जाति, समुदाय, भाषा, लैंगिकता के आग्रह शेष न हों। ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले इसके प्रतिनिधि के रूप में सामने आए। बंगाल में माइकेल मधुसूदन दत्त ने वेश्याओं को कला पारंगत कर नई अलख जगाते हैं। भारतेंदु ने 'बालाबोधिनी' में 'नारि-नर सम होंहि' का नारा दिया। इन प्रयासों का निरंतर विस्तार होता जाता है।

जन शिक्षा को लेकर एक व्यापक वैचारिक आंदोलन नवजागरण कालीन लेखकों में दिखाई पड़ता है। पढ़े लिखे लोगों के लिए ज्ञान सामग्रियों का निर्माण जितना आवश्यक था। उतना ही यह आवश्यक था कि नई पीढ़ी के लिए सीखने के अलग-अलग माध्यमों और पद्धतियों का निर्माण किया जाए। बच्चों के लिए शिक्षा को लेकर नवजागरण कालीन लेखकों ने अनेक प्रयोग किए । वस्तुतः 19 वीं 20वीं शताब्दी के संधिकाल में बालमुकुंद गुप्त ने बच्चों की शिक्षा को लेकर दो पोथियों की रचना की।

जब हम बच्चों की शिक्षा की बात करते हैं तो इसमें अक्षर ज्ञान से लेकर भाषा को समझने वाले बच्चे भी सम्मिलित हैं।

प्रायः बाल साहित्य के अंदर उस साहित्य को सम्मिलित कर लिया जाता है जिसे भाषा की समझ रखने वाले बच्चे पढ़ समझ सकते हैं। जबकि भाषा के प्रारंभिक रूप अक्षर ज्ञान और उसके उपरांत कविता और कहानी के माध्यम से पढ़ने के अभ्यास के प्रति बच्चों को समाहित करना अत्यंत आवश्यक है। बच्चों को अक्षर ज्ञान और क्रमशः भाषा उपदेश नीति समाज व्यवहार की बातें कविता और कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किए जाएं । बच्चों को सीखने की क्रिया में खेल जैसा आनंद नहीं आने पर उनके भीतर पढ़ाई और शिक्षा के प्रति सहज अरुचि पैदा होती है ।

19वीं और 20वीं शताब्दी में हमारे यहां बच्चों की शिक्षा के लिए विधिवत स्कूल और पाठ सामग्रियों का कदाचित अभाव था जिस कारणवश बच्चों को सिखाने और उन्हें शिक्षित करने के लिए नए सिरे से सोचने विचारने की आवश्यकता थी। इस संदर्भ में बालमुकुंद गुप्त ने हिंदी प्रदेश की समस्याओं को ठीक-ठीक समझा और बाल साहित्य नामक में अनुशासन का सूत्रपात भी किया । खिलौना और खेल तमाशा नामक दो पुस्तकों की रचना उन्होंने हिंदी के बच्चों को शिक्षित करने के लिए की । बालमुकुंद गुप्त ने इन पुस्तकों की भूमिका में स्पष्टता उल्लेखित किया है कि हिंदी में इस प्रकार की सामग्रियों का सर्वथा अभाव है । उन्होंने पोथी को मनोरंजन का साधन बनाने की बात कही है जिससे कि बच्चे खेल खेल में अक्षर ज्ञान और और कविताएं या कुछ भाषा ज्ञान से परिचित हो जाएं उन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि अंग्रेजी में लड़कों के दिल बहलाने के लिए सैकड़ों किताबें हैं जिनसे उनका पढ़ने में बहुत उत्साह बढ़ता है बांग्ला में भी आजकल ऐसी पुस्तकें कुछ कुछ होने लगी हैं खिलौना जब मैंने बांग्ला भाषा में बनाया तब मेरे मन में आया कि यदि इसकी हिंदी की जाए तो हिंदुस्तानी लड़कों का भी उपकार हो सकता है इस ख्याल से मैं खिलौने को हिंदी में बनाता हूं । जाहिर सी बात है कि बालमुकुंद गुप्त उर्फ

रसिकलाल दत्त ने हिंदी प्रदेश में बच्चों के लिए एक उपयोगी पुस्तक की रचना की। हम यह भी मान सकते हैं कि भारतेंदु युग या नवजागरण कालीन लेखन में कई विधाओं के उदय के साथ बाल साहित्य का भी सूत्रपात होता है। आगे चलकर यह साहित्य और भी पुष्पित पल्लवित होता है। कुछ आलोचकों ने बाल साहित्य को पोखर साहित्य कहा है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इन आलोचकों के भीतर चेतना निर्माण और भविष्य निर्माण जैसी कोई चीज या विचार मौजूद नहीं है।

हिंदी पट्टी में बच्चों की पुस्तकों को लेकर आज भी रोना रोया जाता है कि हिंदी भाषा में बच्चों के लिए आरंभिक स्तर पर अच्छी पुस्तकें नहीं है यदि यह पुस्तकें हैं भी तो ये पुस्तकें अत्यधिक बोझिल और उबाऊ हैं या फिर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो बच्चों के भीतर अरुचि पैदा करते हैं।

हिंदी पट्टी में बच्चों की पुस्तकों को लेकर आज भी रोना रोया जाता है कि हिंदी भाषा में बच्चों के लिए आरंभिक स्तर पर अच्छी पुस्तकें नहीं है यदि यह पुस्तकें हैं भी तो ये पुस्तकें अत्यधिक बोझिल और उबाऊ हैं या फिर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो बच्चों के भीतर अरुचि पैदा करते हैं। बालमुकुंद गुप्त ने 'खिलौना' और 'खेल-तमाशा' के माध्यम से भविष्य गढ़ने की कोशिश की है। बच्चों को लेकर 'खिलौना' उनकी पहली पुस्तक है जिसमें बाल कविताएं और बाल कथाएं मौजूद हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह सभी कहानियां और कविताएं ऐसी हैं जिसके आधार पर बच्चे खेल भी खेल सकते हैं । कविताओं को खेल रूप में ढालना कोई आसान काम नहीं था ।

बालमुकुंद गुप्त ने इस पुस्तक के प्रकाशन में शब्दों को क्रिया रूप में समझाने के लिए कविताएं एवं कहानियों के पृष्ठ पर ही चित्रों का संयोजन किया है । यह चित्र इतने सजीव और शब्दों के साथ समन्वित हैं कि बच्चा शब्दों का उच्चारण उनका अर्थ चित्रों के माध्यम से कर सकता है । शब्दों और चित्रों को देखकर वह एक खेल का निर्धारण कर सकता है। एक साथ कविता अथवा कहानी, चित्रकारी तथा उसका खेल रूप संभव हो जाता है। यही कारण है कि बालमुकुंद गुप्त ने पोथी का नाम 'खिलौना' रखा । हम उदाहरण के तौर पर खिलौना से एक कविता को देख सकते हैं-

"काठ का घोड़ा जीन सवार/ यह सब हमको नहीं सरकार/ हमको नया खिलौना दो/ वही वही पोथी है जो/ भाई बहन बैठ एक संग/ देखेंगे पोथी का ढंग/जी बहलावें मूरत देख/और पढ़ेंगे किस्से लेख।।

'बच्चे और चित्र किताबें' विषय पर रविकांत यह टिप्पणी इस कविता के संदर्भ में मौजूं है कि 5 साल की उम्र तक के बच्चे ज्यादातर आत्मकेंद्रित होते हैं। इस उम्र में उनके ज्यादातर विचार खुद के इर्द-गिर्द ही घूमते रहते हैं। उनका लगाव अपनी चीजों से ज्यादा होता है और भौतिक चीजों, चाहे वे वस्तुएं हो या किताबें, के साथ आसानी से अपना रिश्ता जोड़ पाते हैं। यहां तक कि वह अपनी मनपसंद किताब के साथ खाना खाते हैं, उसे साथ लेकर सोते हैं और यदि उनका बस चले तो उसे साथ लेकर नहाना चाहते हैं। ये बच्चे छोटी-छोटी घटनाओं को पढ़ना या सुनना पसंद करते हैं। इस उम्र में बच्चे निरर्थक गीतों या कहानियों में खूब मजा लेते हैं। इसके साथ ही ऊटपटांग आवाजों में बोलने में भी मजा लेते हैं।

उक्त कविता 'खिलौना' पोथी की पहली ही कविता है जिसमें पोथी खिलौने के रूप में हो । वह किसी किताब की तरह ना हो जो केवल अक्षर ज्ञान कराती हो बल्कि उससे एक खेल का प्रबंध भी हो जाए। गुप्तजी ने बाल रुचि को बहुत बारीकी से देखा परखा है। शब्द और चित्र एक होकर एक खेल को निर्मित करते हैं और देखते ही देखते बच्चे के लिए पोथी खिलौने के रूप में बदल जाती है। उक्त कविता में 'भाई बहन बैठ एक संग' से नवजागरणकालीन लेखकों की स्त्री पुरुष समानता भी दृष्टिगोचर होती है। अकादमिक दुनिया की चिर परिचित शब्दावली में कहें तो खिलौना लड़के और लड़कियों को समान रूप से उपलब्ध है। पूरी पोथी से गुजरने पर यह आभास होता है कि शायद ही कोई कविता या कहानी हो जिसमें लड़के और लड़कियों की समान रूप से उपस्थिति ना हो। स्त्री शिक्षा के बगैर सामाजिक चेतना की बात बेमानी सी प्रतीत होती या लड़कों की चेतनाअर्ध निर्मिति का शिकार हो जाती। इस एकांगीपन से बालमुकुंद गुप्त बहुत सावधानी से निकल जाते हैं।

गुप्तजी ने 'झूले और ढ़ेकी के खेल' पर एक संवादपरक रचना की है जो उनके मंतव्य को स्पष्टत: रेखांकित करती है। बायें पृष्ठ पर कविता है और दाहिने पृष्ठ पर झूला झूलती राधा तथा ढेकी खेलते गोपाल और चंपा हैं-

राधा - खूब झुलाओ खूब झुलाओ।
जितना चाहो पेंग बढ़ाओ।।
कहिए तो छूयें आकाश।
जरा न जी में करें हिरास।।
कितना ही तुम कर लो बल।

बने रहेंगे खूब अटल।।

गोपाल - देखो चंपा अजब तमाशा।
कितने ऊपर हो गए आहा।।
कुछ भी नहीं पकड़ते देखो।
इस पर नहीं पड़ते देखो।।

चम्पा - अभी नहीं हैं खेल में तकड़े।
इसीलिए हैं काठ को पकड़े।
तुम भी अगर नहीं पकड़ोगे।
देखो देखो अभी पड़ोगे।।
वह देखो वह देखो हले।
औंधे मुँह धरती को चले।।

यदि, हम यहाँ कमलेश चंद्र जोशी के कथन को उद्धृत करें तो बात स्पष्ट हो जायेगी और गुप्त के खिलौने का महत्व भी स्थापित होगा कि "प्राथमिक विद्यालयों की शुरुआती दो कक्षाओं के बच्चों पर नजर डालें तो इस स्तर के बच्चे अपने घर परिवार परिवेश से प्राप्त बोलचाल की भाषा के अनुभवों को लेकर विद्यालय आते हैं। पहली बार स्कूल में आने वाले बच्चे शब्दों के अर्थ और उनके प्रभाव से परिचित होते हैं लिखित चिह्न और उनसे जुड़ी दुनिया बच्चों के लिए इस स्तर पर अमूर्त होती हैं। इसलिए जरूरी होता है कि पढ़ने की शुरुआत अर्थ से ही हो और वह भी किसी उद्देश्य के लिए। यह उद्देश्य कहानी सुनकर और पढ़कर आनंद लेने से हो सकता है जबकि देखा यह जाता है कि अधिकांश प्रचलित शुरुआती पाठ्य पुस्तकों में बच्चों की पाठ्य सामग्री बहुत ही यांत्रिक होती है और इसका उद्देश्य अर्थ या आनंद के लिए पढ़ना न होकर केवल शब्दों और अर्थहीन वाक्यों को दुहराना भर ही होता है।

बालमुकुन्द गुप्त इस तथ्य और बाल मनोविज्ञान से भलीभांति परिचित थे कि बच्चे आरंभ में अपरिचित प्रदेश अपरिचित भाषा परिवेश में संकोच करता है। अक्षर ज्ञान और शिक्षा उसके लिए या जिन खेलों का वह अभ्यास होता है उनसे मिलाकर के ना रखे जाएं तो पुस्तकें उसे बोझिल प्रतीत होंगी इसीलिए इस मनोविज्ञान का आश्रय लेकर उन्होंने बच्चों के लिए सर्व सुलभ और आनंददायक खेलों को कविता और कथा में ढाल दिया। बालमुकुंद गुप्त की इन **पौधों** में सीखना खिलौने में बदल जाता है। बच्चा जिस खेल को बिना ध्वनि और तरंग के खेलता है उस खेल में संगत बिठाते हुई कविता नया आकर्षण पैदा करती है। इन कविताओं के सामूहिक गान और खेल में भागीदारी से अपरिचित बच्चों के बीच परिचय भी बनता जाता है और पूरा परिवेश बच्चे के लिए घरेलू हो जाता है। हंसी खेल में बाल सुलभ कविताएं बच्चों को फूलों,पक्षियों, पशुओं के नाम और उनके गुणों से भी परिचित कराती चलती हैं।

इस खेल खेल में ही गुप्तजी ने 'गिलहरी के विवाह' का आयोजन किया है जिसमें बच्चे अलग-अलग जानवरों की भूमिकाओं में समाहित हो सकते हैं और इस लघु नाटिका में वे अनेक वाद्य यंत्रों स्वरों और लोकाचार से लघु परिचय प्राप्त कर सकते हैं गिलहरी के विवाह के लिए सब एक साथ इकट्ठा होते हैं और निमंत्रण पहुंचाने का दायित्व बंदर को दे दिया जाता है जो सबके दरवाजे पर ढोलकी बजा कर विवाह का न्योता देता है। पुनरुक्ति के बावजूद यहां स्पष्ट कर देना जरूरी है कि न्योता देने की इस पूरी प्रक्रिया की एक चित्र श्रृंखला मौजूद है प्रत्येक चित्र के नीचे जिसको निमंत्रित किया जा रहा है उससे संबंध दो पंक्तियां रची गई हैं। बंदर सबसे पहले पुरोहित शिवराम पांडे को न्योता देते हैं

ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिए आज
आसन पोथी लेकर चलिए पांडे जी महाराज

अब पांडे जी महाराज के बाद बिल्ली भालू बकरा कुत्ता गधे हिरण को निमंत्रण दिया जाता है और सब एक साथ इकट्ठा हो जाते हैं विवाह शुरू होता है फिर समवेत स्वर है विवाह का यह स्वर समूह गान में बच्चों को कितना आकर्षित कर सकता है हम प्रत्यक्ष अतः देख भी सकते हैं या अनुमान भी लगा सकते हैं-

बकरे का मृदंग बाजे तितांग।
कुत्ते का तंबूरा बाजे हियांग हियांग।।
पींपीं चींचीं चींचीं बाजे बिल्ली का सारंग।
भालू की खंजरी करे खटंग खटंग।।
गधे का सितार बाजे झींझींझींझीं।
हरिन का चौतारा बाजे चींचींचींचीं।।
कुत्ते का तंबूरा देखो गधे का सितार।
हरिन का चौतारा देखो अजब बहार।।

हिंदी बाल साहित्य का इतिहास लिखते हुए प्रकाश मनु ने कविता से बाल साहित्य का आरंभ माना है और बीसवीं सदी के आरंभ की कुछ रचनाओं का उल्लेख किया है। आश्चर्यजनक यह है कि प्रकाश मनु बालमुकुंद गुप्त का नाम भर गिनाते हैं। गुप्त जी की रचनाओं के महत्व का विवेचन विश्लेषण गायब है, यदि उन्होंने गुप्त जी की रचनाएं देखी होती तो वे जरूर ही इनकी विशेषताओं का उल्लेख करते। बालमुकुंद गुप्त ने जिस तरह से योजना बनाकर बच्चों के लिए कविताएं और कहानियां लिखीं और बच्चों की शिक्षा के लिए 'पोथी' तैयार की उन्हें हिंदी में बाल साहित्य के प्रवर्तक कहा जा सकता है।

सन् 1906 में बालमुकुंद गुप्त उर्फ रसिकलाल दत्त ने खड़ी बोली में बच्चों के लिए उपयोगी और नितांत **आवश्यक पौधों**

की रचना की। यह समय इसलिए भी याद रखना आवश्यक है कि इस समय तक खड़ी बोली हिंदी का व्याकरण पूर्णतया निर्धारित नहीं हुआ था। व्याकरण के आचार्य भाषा के नियमों के निर्धारण में व्यस्त थे। व्याकरण संबंधी जो विमर्श चल रहे थे उनमें बालमुकुंद गुप्त की भागीदारी भी थी। खड़ी बोली में रची गई पोथियां इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि हिंदी के महाकवि भी उस समय तक खड़ी बोली में काव्य रचना को लेकर सशंकित थे। बालमुकुंद गुप्त को बाल साहित्य का सूत्रपात करने का श्रेय देने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

बाल साहित्य 'पोखर का साहित्य' मात्र नहीं होता, अपितु वह अपने वस्तु विन्यास और शिल्प में बहुत प्रभावकारी और अग्रगामी भूमिका भी रखता है। इस स्थापना को 'खिलौना' में संकलित इस कविता से आप भली-भांति समझ सकते हैं-

5 पूत रामा बुढ़िया के सबका करे दुलार
उल्लू देखकर एक मर गया, बाकी रह गए 4
4 पुत्र रामा बुढ़िया के नाचे धीना धीन
एक मर गया पछाड़ खाके, बाकी रह गए 3
3 पुत्र रामा बुढ़िया के खेत चले थे बो
बाघ उठाकर एक को ले गया, बाकी रह गए 2
2 लड़के रामा के जिनमें लेता है एक सेक
टूट गई है टंगड़ी उसकी, बाकी रह गया 1
1 पुत रामा बुढ़िया का सदा रहे सुन-मुन्न
वह अपनी ससुराल को चल दिया बाकी रह गई 0

बालमुकुंद गुप्त द्वारा रची गई इस कविता को पढ़कर नागार्जुन की लोकप्रिय कविता बरबस याद आ जाती है। कविता की यह छाप हिंदी के बड़े प्रगतिवादी कवि के ऊपर भी पड़ी। 'पोखर के साहित्य' ने हिंदी साहित्य के समुद्र को एक दान दिया; एक रास्ता सुझाया। अनायास ही बाल कविता राजनीतिक भंगिमा अख्तियार कर लेती है। वस्तुतः चेतना निर्माण की प्रक्रिया में बाल साहित्य नींव का काम करता है। यहां बहुत संभव है कि नागार्जुन ने अपने बचपन में इस कविता का रसपान किया हो जिसका प्रभाव उनके साहित्य पर भी पड़ा।

'खिलौना' के बाद बालमुकुंद गुप्त ने 'खेल-तमाशा' नाम की एक पोथी की रचना की। इस पोथी का प्रकाशन भी इंडियन प्रेस, इलाहाबाद से सन् उन्नीस सौ छह में हुआ। ज्ञानक्रम के अनुसार देखें तो 'खेल-तमाशा' का प्रकाशन पहले होना चाहिए था क्योंकि इसमें अक्षरों की पहचान और वर्तनी के प्रयोग को कविता के माध्यम से बताने की कोशिश की गई है। 'खिलौना' के प्रकाशन के साथ ही इस पुस्तक की परिकल्पना उनके भीतर आ गई थी क्योंकि अक्षर और वर्तनी ज्ञान के अभाव में बच्चों के सीखने की प्रक्रिया बाधित होती और बच्चे कविताओं को रट लेते; खेल खेल लेते लेकिन अक्षरों और मात्राओं की पहचान के बगैर उनका विकास संभव न था। दरअसल यह पुस्तिका खिलौना की पूर्वपीठिका है और 'खिलौना' इसका विस्तार। दोनों पोथियां एक क्रम में है और एक दूसरे को पूर्णता भी प्रदान कर रही हैं। वर्णों की योजना से 'अ' से आरंभ होकर अं' तक पहुंचती है। एक कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसमें 'उ, ऊ, और ऋ का योग' वर्णित है-

दूर गई जंगल में पूसी / करने नया शिकार/ पीठ पर उसके दुम फैला के/ मोर हुआ असवार/ मेंऊं मेंऊं करती पूसी/भागी पूंछ पसार/ भागी भागी चली गई वह/ जयपुर के दरबार/ जय नगरी के राजभवन में/ हुई बिलैया धृत/ वहां मजे से लगी उड़ाने/ दूध मलाई घृत/

इसके उपरांत खेल तमाशा में बालमुकुंद गुप्त ने गुड़ियों की पाठशाला रची। जिसमें गुड़िया गुरु महाराज बन जाती है। गुड़िया स्कूल जाने से मना करती है और अपनी सहेली गुड़िया को लाकर आभासी क्लास रूम का वातावरण तैयार करती है उनसे बात करती है उन्हें उलाहना देती है कि इतनी बातें करोगी तो मेरा पढ़ा हुआ सारा भुलवा दोगी। वस्तुतः हिंदी पट्टी में लड़कियों की शिक्षा की वैचारिक तैयारी है जिसमें वे अपने ज्ञान चक्षु और ज्ञान रूपी पंख को खोलने के लिए तैयार बैठी हैं और रचनाकार छोटे बच्चों के मन में छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से यह बात बढ़ाने का सफल प्रयास करता है कि लड़कियां शिक्षा की उतनी ही हकदार हैं जितने कि लड़के। यही लड़के और लड़कियां आगे चलकर नए भारत का निर्माण करते हैं जिसमें लड़कियां लड़कों से बराबरी पर कदमताल करती हुई दिखाई देती हैं।

उस दौर के साहित्यकारों ने ज्ञान के छोटे-छोटे स्रोतों से बड़ी-बड़ी नदियों का मार्ग प्रशस्त किया। अपने उद्गम स्थल पर यह ज्ञान गंगा स्थिर दिखाई देती है लेकिन हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं इसका प्रवाह तीव्र होता जाता है और इसके पाट दिन-ब-दिन चौड़े होते जाते हैं। उस युग के छोटे-छोटे प्रयासों का बड़ा प्रतिफलन आज हम अपने युग में देख रहे हैं। दरअसल वे प्रयास आकार में छोटे हो सकते थे लेकिन प्रभाव में व्यक्ति छोटे नहीं हैं. उनके प्रभावों का मूल्यांकन अभी शेष है।

(लेखक केंद्रीय विश्वविद्यालय हरियाणा में हिंदी विभाग में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।)

बिल्लियों की पाठशाला

कलकत्ता नगर में बिल्लियों की एक पाठशाला है। वहां सब बिल्लियां पढ़ती हैं। उनकी गुरवानी जी कुरसी पर बैठकर सबको पढ़ाती है। गोकला बड़ा दुष्ट है। उसका पाठ उसे याद नहीं हुआ। उससे गुरवानी जी ने पूछा कि 'किरन' के क्या हिज्जे हैं। उसने जवाब दिया 'क' में आ की मात्रा का 'का' और 'न'। गुरवानी जी ने कहा कि 'ठीक नहीं हुआ'। उसने जवाब दिया कि नहीं हुआ तो मैं क्या करूं। मेरा काम मैने कर दिया, अब बाकी आप ठीक कर लीजिए। गोकला ने तो अपना पाठ नहीं सीखा। दूसरे गुरवानी जी के सामने सवाल जवाब कर बड़ा भारी अपराध किया। इसलिए गुरवानी जी ने उसको गधा-टोपी पहना कर एक कोने में बैठा दिया। वह अपनी स्लेट जमीन पर रखकर मुंह फुला के बैठा है।।

यह तो तुम्हारे दिल बहलाव का एक किस्सा था-अब कहो सचमुच क्या तुम लोगों में कोई ऐसा लड़का है, जो बिना अपना पाठ अभ्यास किए पाठशाला में जाता है और अपनी चूक न मान गुरुजी के सामने सवाल-जवाब करता है? यदि किसी कारण से पाठ याद न हो तो अपना कुसूर मान आगे को भली-भांति पाठ याद करने का यत्न करना ही अच्छे लड़कों का काम हैं;

चन्द्रू सपेरा

चन्दू तूमड़ी बजाकर सांप को खिलाता-घूमता फिरता है और गांजा पीता है। एक दिन सूरज डूबते-डूबते जंगल में जाते हुए उसके गांजा पीने का समय आ गया और वह गांजा पीने को बैठ गया। गंजेड़ियों को गांजा पीने का वक्त आने से दूसरी बात की सुध नहीं रहती है। उसको यह न सूझा कि अभी गांजा पीने को बैठ जाने से रात हो जाएगी और बाघ के आ गिरने का भय होगा। चन्दू को गांजा मलते-मलते रात हो गई। उसने जल्दी से गांजे का एक दम लगाकर ज्योंहि तूमड़ी को हाथ में लिया, वैसे ही एक बाघ झट से उसको पकड़ घने जंगल की ओर ले भागा। गांजे के नसे में डूबे हुए चन्दू को यह खबर न रही कि उसकी जान अब न बचेगी। बाघ चन्दू को जंगल में धर कर जब दम लेने लगा, तो उसने सोचा कि तूमड़ी को एक बार बजा लें, और 'पीं' करके तूमड़ी को बजा दिया। तूमड़ी की आवाज से बाघ ने सोचा कि यह उद्भुत जीव कहां से आया! इसकी बोली ऐसी डरावनी है तो न जाने इसकी देह में कितना बल होगा'। यह सोच वह जान बचा के भागने और पीछे ताकने लगा। चन्दू और भी जोर से तूमड़ी बजाने लगा। ऐसा होने से बाघ बहुत दूर चला गया। तब चन्दू चुपचाप चम्पत हुआ।

गंगाराम

काशी में एक पंडित जी थे। आप के घर में एक मूर्ख चेला रहता था। उसका नाम था गंगाराम। पंडित जी कई साल तक माथा पचा कर रह गये, पर गंगाराम को कुछ न आया। माधव और गोपाल दो चेले पंडित जी के और थे। वह खूब लिखते-पढ़ते थे। एक दिन पंडित जी उन दोनों चेलों को पढ़ाते-पढ़ाते माधव पर नाराज होकर बोले 'कथं'। गंगाराम भी वहीं था, वह कथं का अर्थ तो कुछ न समझा, उसने यही जाना कि पंडितजी ने मुझी को 'कथं' कह के गाली दी है। अब गंगाराम के क्रोध का क्या ठिकाना, मुंह फुला कर बोला, 'भला जी भला हम कथं?

तुम कथं तुम्हारा सारा घर कथं!

तुम कथं के भी कथं!'

सब हंसने लगे। उसी दिन से गंगाराम को सब 'कथं' कहने लगे। वह 'कथं के नाम से खूब चिढ़ता।

एक दिन गंगाराम को पंडित जी ने एक गगरा दिया और कहा कि गंगाराम! इसमें पूजा के लिए गंगाजल लाओ। देखो खूब धो के ऊपर तक करके लाना। गंगाराम ने गंगातट पर जाकर गगरा भरा और ऊपर तक करने का अर्थ विचार कर औंधा गगरा सिर पर धर के चलने लगा। गगरा औंधा होते ही गंगाराम का आप से आप स्नान हो गया। गंगाराम बहुत चिढ़ कर कहने लगा, 'पंडित ने बदमाशी करके मुझे ऊपर तक कर के गगरा लाने को कहा। अच्छा इसका मजा न चखाऊं तो मेरा नाम भी गंगाराम नहीं।

यह कहकर वह घाट पर गया, फिर जल भरने लगा। इतने में माधव और गोपाल गंगा-स्नान को आये और कहने लगे, 'कहिये कथं जी महाराज! क्या हाल है? गंगाराम बोला: 'रे नीचो! तुम भी ऐसे हुए! तुम भी कथं कहोगे! आज तुम्हें गंगा में ही डुबो देंगे!'

यह कहकर गंगाराम गंगा में घुसा। माधव और गोपाल तैर कर दूर चले गये। गंगाराम तैरना जानता न था।

क्रोध में बढ़ा चला गया और गहरे जल में डुबकियां खाते-खाते 'अरे नीच-हाब, अरे नीच-हाब' करने लगा। माधव ने उसकी यह दशा देखकर उसे किनारे की तरफ धकेल दिया। जब उसका पांव टिका तो वह फिर कलसी भर कर बड़बड़ाता हुआ घर जाकर पंडित जी की पूजा की कोठरी में घुस गया और 'कहां जल रखूं, कहां जल रखूं' करके धूम मचाने लगा। पंडित जी पूजा में थे, बोल न सकते थे। उन्होंने उंगली से जगह बताई। गंगाराम उसे न समझ कर पुकारता ही रहा। पंडितजी ने चिढ़ कर कहा 'मेरे सिर पर रख दे!'

गंगाराम ने चट कलसी पंडित जी के सिर पर ढाल दी। पूजा खराब हो गई। फूल बेलपत्र बहकर चारों तरफ फैल गये। पंडित जी तर-बतर हो गये।

चल मेरे घोड़े

चल मेरे घोड़े चल मेरे घोड़े, चल बे सरपट चाल।
नहीं तो पड़े पीठ पर चाबुक, उड़ जावे तेरी खाल।।
चलते तो हैं देखो भाई, करो न बहुत झमेल।
जरा भी चाबुक छूएगा, तो बिगड़ जायगा खेल।।

लोरी

आ मेरे मुन्ना आ मेरे लाल ।
गोद में आकर करो निहाल ।।
मेरे प्यारे राज दुलारे ।
आ मेरी आंखों के तारे ।।
फूल सा मुखड़ा प्यारी आंख।
जैसे दो नींबू की फांका ।।
देखें क्या है मुट्ठी खोल ।
इतना क्यों हंसता है बोल ।।
जो न निहारे यह मुसकान ।
उसको है यह वृथा जहान ।।
मुंह बाया क्या मिट्टी देगा ।
हाथ पसारा है क्या लेगा ।।
मुंह में रक्खो सदा अंगूठा।
हाथ भी झूठा मुंह भी झूठा ।।
हाथ को चूसो नाक को चूसो।
जो पाओ सो मुं ह में ठूंसो ।।
पड़ी तुम्हें यह कैसी बान ।
चाटते हो कुत्ते के कान ।।
जूती चाटो बड़े चटार ।
छी छी बालक निपट गंवार ।।

कबूतरों का खेल

लड़की कबूतरों के साथ खेलती है। कई एक कबूतर उसे बहुत प्यारे हैं। उनके नाम उसने सब्जा, चीना आदि रक्खे हैं। उन्हें बहुत ही चाहती है।

सब्जा मेरा गुस्से हो के मौसी के घर जाता है।
उड़ते-उड़ते फेर के गर्दन घर की ओर लखाता है।
गुस्सा छोड़ हाथ पै आ।घर में दूध जलेबी खा।।
चीना मेरा रूठराठ ससुराल को चम्पत देता है।
फिर-फिर गर्दन फेर फेर के घर की भी सुध लेता है।
गुस्सा छोड़ इधर को आ।
घर में भी घी के पूए खा।।
सब का गुस्सा उतर गया अब देखो टोली सजती है।
सोने की पैंजनी पांव में रुन झुन रुन झुन बजती है।।
गुट गूं गुट गूं बोलते हैं।
दूध बताशे घोलते हैं।

गुड़ियों की पाठशाला

मैं बन गई गुरु महाराज।
कोई यहां न आना आज।
मुझको है तातील मनाना।
आज पाठशाला नहिं जाना।
पेड़ तले सब गुड़ियां लाकर।
बैठी हूं इसकूल बनाकर।
पढ़ती हैं पुतली चुपचाप।
मुंह से नहीं निकलती भाप।
बात पै मेरे कान लगाना।
मैं बोलूं सो सुनते जाना।
जो कोई कुछ बात करेगी।
पढ़ना सारा भुलवा देगी।

आंख मिचौली

सूरज चला विदा हो घर को ठंडी हवा सनसनाई।
अब है समय खेलने का आवो चलकर खेलें भाई।।
सघन कुंज में सघन पेड़ एक खूब रहा है छाय।
आवो खेलें आंख मुंदौवल उसी के नीचे जाय।।
मोती, हीरा, पन्ना, मूंगा हुए खेलने को तय्यार।
चुन्नी बनकर दाई बैठीं ऐसे हुआ खेल का तार।।
सबने मिलकर चोर बनाये लाला हीरालाल।

तब सब लड़के चम्पत हो गये मार-मार के ताल।।
आंख खोल जब हीरा भागा कोई लड़का नहीं पाया।
ताल न दोगे तो नहीं खेलेंगे, यह कह के टर्राया।।
मोती बोला ताल सुनो भई, हम देते हैं ताल।
मूंगा बोला पकड़ो ना भई, लाला हीरालाल।।
टप टप टप टप बूंदें टपकी, घटा घोर घन चढ़ आई।
भीगे-भीगे भागो भागो, सब अपने घर को भाई।
बिजली चमके, बादल गरजे गुडुम-गुडुम गुम गूम।
पेड़ तले अब खेल न होगा घर में करना धूम।।

मजे की नाव

कल कल कल, चलती है नैया।
फर फर पाल उड़ाती है।।
लहरें जो आती हैं आगे।
डनको फाड़ हटाती हैं।।
देखो ठीक ठाक सब रखना।
माझी तुम रहना हुशियार।।
आज दोपहरे नाव हमारी।
ढाके से होवेगी पार।।
सागर से सीधे निकलेंगे।
तीनों लिये तीन घड़ियाल।।
दिन ढलते मदराज देख के।
पहुंच जायेंगे कोटेसियाल।।
ओहो ओहो कैसी जल्दी।
नाव हमारी आती है।।
अभी बात करने में काशी।
गया आदि हो जाती है।।

पांच पूत रामा बुढ़िया के

बाकी रहा न एक
पांच पूत रामा बुढ़िया के सबका करे दुलार।
उल्ले देखकर एक मर गया, बाकी रह गये चार
चारपूत रामा बुढ़ियास के नाचे धीना धीन
एक मर गया पछाड़ खाके, बाकी रह गये तीन
तीन पूत रामा बुढ़िया के खेत चले थे बो।
बाघ उठा के एक को ले गया, बाकी रह गये दो
दो लड़के रामा के जिनमें लेता है एक सेक।
टूट गई है टंगड़ी उसकी, बाकी रह गया एक
एक पूत रामा बुढ़िया का सदा रहे सुन-मुन्न
वह अपनी ससुराल को चल दिया, बाकी रह गई अंडा

कौन से लोगे बोलो

दहने हाथ में मेरे बेला और चमेली, जूही।
बायें हाथ कनरे, जवा, गुल्लाला, रंगत सूही।।
सोच के मुंह को खोलो।
कौन से लोगे बोलो।।
दहने हाथ के फूलों से बनते हैं गजरे हार।
बायें वालों से गुलदस्ते जिनकी अजब बहार।।
तुम्हें जो भावै सो लो।
कौन से लोगे बोलो।।
दहने हाथ के फूलों में है भीनी-भीनी बास।
बायें हाथ के खाली शोभा को रखते हैं पास।।
बुद्धि में अपने तोलो।
कौन से लोगे बोलो।।
हम को बहन फूल दो सादे चाहे दो रंगीन।
जिनमें खुशबू है सोही दो, मत देना गुणहीन।।
मन अपना आप टटोलो।
कौन से दोगी बोलो।।

शिवराम

एक बन में शिवराम नाम का, रहता था एक गीदड़चन्द।
अपनी तेज बुद्धि से वह करता था सब की चालें बंद।।

था पड़ोस में बाघ एक उसके, उसने मन में किया विचार।
मुझसे अधिक नाम गीदड़ का, तब मैं काहे का सरदार।।
आज करूं वह काम कि जिससे, सब पट्टी भूले शिवराम।
यह विचार के पूंछ उठा के, गरजा शेर मचा कोहराम।।
सुनकर गरज शेर की गीदड़, मन में थोड़ा घबराया।
क्या जाने क्या करेगा चौंधड़, यह कहता बाहर आया।।
हंसके गीदड़ बोला, कैसे धन्य हैं भाग्य हमारे आज।

घर बैठे दर्शन देने आये, मामा बघवा महाराज।।
कहा शेर ने सुन भई गीदड़ बात हमारी जी से सुन।
किसी तरह से हमें सिखादे जो जो है तेरे में गुन।।
बोला गीदड़ कुछ दिन चलिये फिरिये हरदम मेरे साथ।
अपने सब गुन तुम्हें सिखाऊं, मामा साहब हाथों हाथ।।
एक कसाई के घर भीतर गीदड़ शेर गये एक संग।
गीदड़ बोला सुनिये मामा आये हैं हम लगा सुरंग।।
इसी से जो कुछ खाना मामा, खूब समझकर तुम खाना।
जिससे सही सलामत उल्टे घर को कठिन न हो जाना।
इतना कहकर गीदड़ हिकमत से यों मांस लगा खाने।
थोड़ा-थोड़ा खाय लगा वह सुरंग से आने जाने।।
बाघ ने पर सुध-बुध खोके खूब पेट भर के खाया।
इतने में ही शब्द कसाईगण का कानों में आया।
झपटे कई कसाई उन पर लाठी सोटे ले लेकर।
आहट पाते ही सुरंग से गीदड़ हुआ रफू चक्कर।।

खा खा मांस शेर ने अपना पेट लिया था खूब ठूंसा।
भागा वह भी, पर सुरंग के भीतर बेढब आन फंसा।।
सोटे पड़ने लगे पीठ पर खट खट, बघवा चिल्लाया।
पिटके कुटके तनके खिंचके किसी तरह बाहर आया।।
क्रोध में भरके चला मांद को गीदड़ पर कर रोष महान्।
उधर निकलने लगे शेर के डर से गीदड़ के भी प्रान।।
लगा सोचने, शेर क्रोध में भरा, किसी दिन आवेगा।
बचने की तदबीर करें नहिं आते ही खा जावेगा।।
भौरों का एक चक्का ले सूराख किये सब उसके बंद।
बाजा एक बनाया, उसका शेर फुसलाने का फन्द।।
जरा हिलाने ही से भौंरे करते थे सब भन भन भन।
चक्का ऐसे बजता था, जिस तरह कि बाजा झन झन झन।।
दांत चबाता फों फों करता बाघ गया गीदड़ के पास।
भनभनिया जहं बजा रहे थे सुख से बैठे गीदड़ दास।।
क्रोध भूल के बाघ ये बोला गीदड़ बाजा हमको दो।
गीदड़ बोला लीजे, पर न बजाना जोर से तुम इसको।।
बाजा लेकर घर गये शेर जी जोर से उस पर मारा हाथ।
चक्का चुर मुर हुआ उड़े सब भौंरे उससे एक ही साथ।।
आंख कान में नाक में मुंह में सारे भौंरे गये चमट।
पीड़ के मारे शेर चीखने लगा और करने छट पट।।
'खूब छकाया खूब हराया गीदड़िये ने बापरे बाप।
कभी न छेड़ेंगे हम उसको अब के मिटे देह का ताप'।।

झूले और ढेकी का खेल

राधा झूला झूलती है गोपाल और चम्पा ढेकी खेलते हैं।

राधा-खूब झूलाओ खूब झुलाओ।
जितनी चाहो पेंग बढ़ाओ।।
कहिये तो छूयें आकास।
जरा न जी में करें हिरास।।
कितना ही तुम कर लो बल।
बने रहेंगे खूब अटल।।

गोपाल-देखो चम्पा अजब तमाशा।
कितने ऊपर हो गये आहा।
कुछ भी नहीं पकड़ते देखो।
तिस पर भी नहीं पड़ते देखो।।
चम्पा-अभी नहीं है खेल में तकड़े।
इसीलिए हैं काठ को पकड़े।
तुम भी अगर नहीं पकड़ोगे।

सुग्गा

लड़की -

आ रे सुग्गा आ रे सुग्गा बैठ हाथ पै मेरे।
अच्छी चीजें छोड़ के कैसे पेड़ पसंद हुआ तेरे?
रोज तुम्हें हम ताजा ताजा मेवे फल खिलवायेंगे।
दाख चिरोंजी जामन लीची बेर का मजा चखायेंगे।।

सुग्गा-

हे मेरी प्यारी लड़की! है प्यार बड़ा बेशक तेरा।
पर इस जंगली पेड़ ने कैसा मोह लिया है मन मेरा।।
इसके कारण मैं सब दिन स्वच्छन्द विचरता चरता हूं।
पिंजरे का कुछ खौफ नहीं है, उदर मौज से भरता हूं।

शौक का घोड़ा

तड़ तड़ तड़ तड़ पीठ पर, चाबुक दिये जमाय।
देखो घोड़ा अब मेरा, कैसा सरपट जाय।।
देखो घोड़ा उड़ रहा, कैसा साफ सपाट।
दौड़ रहे हैं साथ में, पीढ़े चौकी खाट।।
छिपजा मुनिया मेज के नीचे मत कर बात।
भाग कहीं नहिं मार दे, घोड़ा तेरे लात।।
आहा कैसा तेज है यह, घोड़ा भई वाह।
ऐसे घोड़े की नहीं, किसके जी में चाह।।
तोभी मैं घोड़ा न दूं, राजा दे जो राज।
मेरा घोड़ा खूब है राजा हूं मैं आज।।

देखो देखो अभी पड़ोगे।।
वह देखो वह देखो हले।
औंधे मुंह धरती को चले।

गिलहरी का विवाह

गिलहरी के विवाह की धूम है। गिलहरी के स्वजन लोग महफिल जमाये बैठे हैं। कितने ही लोगों को न्यौता भेजा है। सबकी प्रसन्नता के लिए गाना बाजाना होगा। मित्र मंडली के जमाव और गाने-बजाने के सरंजाम के लिए बंदर नियत हुआ। बंदर ढोलकी गले में डालकर न्यौता देने गया। सबसे पहले पुरोहित शिवराम पांडे के मकान पर जाकर न्यौता देने लगा।

ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
आसन पोथी लेके चलिए पांडे जी महाराज।।

पीछे बिल्ली के घर जाकर कहा-
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
बिल्लीजी चलिए लेके अपना सारंगी साज।।

बाल कविताएं

पीछू भालू के घर जाकर कहा-
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
आप भी चलिये खंजरी लेके भालू जी महाराज।।

पीछे बकरे के घर जाकर कहा-
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
चलके आप मृदंग बजायें बकरा जी महाराज।।

पीछे कुत्ते के घर जाकर कहा-
ढमढमाढम ब्याह गिलहरी का है सुनिये आज।
तंबूरा लेके चलिए श्री कुत्ता जी महाराज।।

इस प्रकार न्यौता हो जाने के बाद खूब महफिल जमी। पुरोहित शिवराम पांडे वर कन्या को लेकर विवाह कराने बैठे। उधर, गााने का तार जमा, बाजा बजने लगा-
बकरे का मृदंग बाजे तितांग् तितांग्।
कुत्ते का तंबूरा बाजे हियांग् हियांग्।।
पींपीं चींची चींची बाजे बिल्ली का सारंग्।
भालू की खंजरी करे खटंग् खटंग्।।
गधे का सितार बाजे झींझींझींझींझीं।
हरिन का चैतारा बाजे चींचींचींचींचीं।।
कुत्ते का तंबूरा देखो, गधे का सितार।
हरिन का चौतारा देखो अजब बहार।।

वह क्या लिखा?

बड़ी बहन लिखना पढ़ना सीखती है। उसने तखते पर खड़िया से 'खिलौना' शब्द लिखा है। छोटी बहन केवल अक्षर पहचानती है। मात्रा नहीं जानती। वह हाथ में गुड़िया लिये देखती है। वह छोटा बालक दोनों हाथों में गुड़िया लिये खड़ा है। वह कुछ नहीं समझता, इससे कहता है-

बालक -

वह क्या लिखा है धौला धौला दीदी मुझे बताव।
नहीं है उछके नाक कान तो नहीं हाथ नहिं पाव।।
कैछे उछका नाम बहन तुम बतला लही खिलौना।
यह है मेले हाथ में बिबिया इछको देख लिखौना।।

बड़ी बहन -

भाई प्यारे जग उजियारे आओ मेरे पास।
जिस घर में तेरा चांद सा मुखड़ा, उसमें सदा उजास।।
अभी अयाने हो तुम, स्याने होके जब पढ़ लोगे।
कैसे बना 'खिलौना' मेरा, तब इसको समझोगे।।

छोटी बहन-

भैया हमला बाला भोला बालक निपट अयाना।
'ख' 'ल' 'न' तो लिखा हुआ है सो भी नहिं पहचाना।।

लाला जाग मा बल जाय

बाल रवि उगि तोहि झांकै देख आंगन आय।
मन्द मन्द समीर कलियन को रही चटकाय।
लिये साथ सुबास अपने फिर रही इतराय।
डालियन पर बैठ पंछी सुर मधुर रहे गाय।
भैरवी की तान मीठी तोहि रहे सुनाय।
जग के सब लोग अपने काम को रहे धाय।
तुमहु जागो लाल मेरे मात बल बल जाय।

गिरज के चूजे

किसी समुद्र के किनारे एक पहाड़ में एक गिरज का घोंसला है। उसमें उसके दो चूजे हैं। उनकी माता सवेरे से उनके लिये खुराक की तलाश में गई थी। चूजे भूख से छटपटाते थे। अपनी मां को आते देखकर वह गर्दन निकालकर चीं चां करते हैं मानो कहते हैं-
कितना भोरे कितना भोरे जाने तुझको दीया।
तबही से तो देखो ना ही रही कुछ नहिं खाया पीया।
भूख के मारे भूख के मारे पेट चिपक गीया।
तोभी काहे बोल अरी मां बेला एता कीया।
देख री मा देख मातो, गुड़िया छीने आय।
जितना बल है मुझमें भरसक, उतनी रही बचाय।
ले गया री ले गया वह, देख लिये जाय।
फाड़ के दो टूक किये, हाय! हाय! हाय!

'गिलहरी का विवाह' कविता संबंधी एक दिलचस्प विवाद

बालमुकुन्द गुप्त जी ने 'रसिकलाल दत्त' के नाम से बच्चों के लिए 'खिलौना' नामक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की थी। यह हिंदी में पहली सचित्र पुस्तक थी। इसमें संकलित 'गिलहरी का विवाह' कविता उत्तर प्रदेश सरकार ने अपनी 'शिक्षावली' नामक एक पाठ्य पुस्तक में शामिल कर ली थी।

"आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने अपनी पत्रिका सरस्वती में इसे लचर बता दिया। उनका तर्क था कि देखिए कवि ने कैसा गजब किया है - 'एक चरण में 26 और 28 मात्रा जड़ दी हैं':

द्विवेद्वीजी ने आगे कहा

ढम-ढमाढम के पहले 'ढ' को दीर्घ और महाराज के 'हा' को ह्रस्व करने से क्या छन्द की शोभा क्षीण हो जाती?

गुप्तजी की कविता में द्विवेदीजी ने जो दोष दिखाए थे उनकी चर्चा की। यह चर्चा भी बेहद दिलचस्प और काम की है-देखिए :

'खिलौने' लिखने वाले ने बच्चों के पढ़ने के लिए 'गिलहरी का विवाह' लिखा। बच्चों की कविता और बन्दर का ढोल जी में आया जैसे बजाया और मनमानी तान तोड़ी।...द्विवेदी जी को यह विचारना चाहिए था कि बनाने वाला निरा मूर्ख ही न होगा। बच्चों के लिए कविता बनाई है उसमें एक आध मात्रा टूट जाए तो कौन बड़ी बात है? घर की दाई या दादी, नानी के समय की कोई कहानी, द्विवेदीजी को अवश्य याद होगी-'कहां की बुढिय़ा, कहां का तू, चल मेरे रहटा चहरक चूं' की मात्रा गिन तो डालिये और जरा 'तू' और 'चूं' का काफिया भी तो देखिये। आप तो अंग्रेजी के पंडित हैं, बच्चों की प्रकृति को पहचानते हैं, फिर क्या आप नहीं जानते कि खिलौने वाले ने बच्चों की तबीयत का ख्याल रखकर उनके Rhymes को उनके मिजाज के माफिक रखा है। एक जगह उसी 'खिलौना' पोथी में आंख के साथ फांक का काफिया बांधा गया, तो क्या 'खिलौना' बनाने वाला इतना मूर्ख है कि उसे क-ख की भी खबर नहीं? परन्तु जो जरा भी समझ के देखेगा, तो समझ जावेगा कि माता बच्चे को गोद में लिये लोरी दे रही है, किसी कवि की जोरु नहीं है, उस बच्चे की माता है। इसी से अल्ल-बल्ल उसके जो जी में आता है, सो कहती है।

द्विवेदीजी ने अपने आलोचना-लेख में यह भी लिख दिया था कि पाठ्य पुस्तक (शिक्षावली) में गुप्तजी की उक्त कविता को डालने वाले को उसे थोड़ा शुद्ध कर देना चाहिए था। उसका उत्तर जो गुप्तजी ने दिया वह भी बहुत ऊंचा और उत्तम है:

द्विवेदीजी बतावें, कबीर की पोथी में से, दादू की पोथी में से, नानक की पोथी में से यदि कोई कुछ संग्रह करे, तो उसको, उसके संशोधन का क्या अधिकार है? कबीर कहते हैं :

अलख-पलक में खप गया, निरंजन गया बिलाय।
अवगत भजूं तो गत नहीं, भजूं कौन सो लाय।।
थकत-थकत जग थाकिया, थाका सबही खलक।
देखत नजर न आइया, हार कहा अलख।।

अब गिनें द्विवेदी जी महाराज इन दोहों की मात्रा और करें इनका संशोधन और बतावें हमको कि क्या हक है उनको इनके संशोधन करने का।

(बालमुकुन्द रचनावली, सं. के सी यादव से साभार)

एक बार एक छोटा-सा लड़का अपनी सौतेली माता से खाने को रोटी मांग रहा था। सौतेली मां कुछ काम में लगी थी, लड़के के चिल्लाने से तंग होकर उसने उसे एक बहुत ऊंचे ताक में बिठा दिया। बेचारा भूख और रोटी दोनों की भूल नीचे उतार लेने के लिये रो रो कर प्रार्थना करने लगा, क्योंकि उसे ऊंचे ताक से गिरकर मरनेका भय हो रहा था। इतने में उस लड़के का पिता आ गया। उसने पिता से बहुत गिड़गिड़ाकर नीचे उतार लेने की प्रार्थना की। पर सौतेली माता ने पति को डांटकर कहा, कि खबरदार! इस शरीर लड़केको वहीं टंगे रहने दो, इसने मुझे बड़ा दिक किया है। इस बालक की सी दशा इस समय इस देश की प्रजा की है। श्रीमान्-से वह इस समय ताक से उतार लेने की प्रार्थना करती है, रोटी नहीं मांगती। जो अत्याचार उस पर श्रीमान्-के पधारने के कुछ दिन पहले से आरम्भ हुआ है, उसे दूर करने के लिये गिड़गिड़ाती है, रोटी नहीं मांगती।

(बालमुकुंद गुप्त जी के साहित्य में इस तरह की लोक प्रचलित कथाएं अनेक स्थानों पर मिलेंगी जो राजनीतिक बात को समझाने के लिए आ जाती हैं संप्रेषणीयता में ये चार चांद लगाती हैं।।)

खेल-तमाशा

(बालमुकुंद गुप्त ने बच्चों को रोचकता के साथ हिंदी वर्णमाला सिखाने के लिए अंग्रेजी Nursery Rhymes की तर्ज पर बाल गीत तैयार किए। ये उनकी बाल-साहित्य की 'खेल-तमाशा' पुस्तक में संकलित हैं। यह पुस्तक सन् 1906 में रसिकलाल दत्त के नाम से लिखी थी। हिंदी में यह पहला ही सतुत्य प्रयास है। गौर करने की बात है कि इसमें चित्र भी बनाए गए हैं - सं.)

वर्ण योजना

दूध पियो जाऊं मैं **बल**।
काहे भर आंख में **जल**।।
झट पट पीकर चलो बजार।
नट खट लड़का बड़ा गंवार।।

आकार रोग

आरी चिड़िया **आरी** चिड़िया,
बाले को ला खांड की पुड़िया।
बाला है सुलतान **हमारा**,
रूठ बिताता है दिन **सारा**।।

इ और ई का योग

गुलाब और चमेली बाग में खेल रहे हैं। चमेली रूठ **गई**। वह मुंह फेरकर **बैठी** है। गुलाब भी पीठ फेर के कहता है-

रूठी लड़की कौन मनावे?
गरज पड़े तब दौड़ी आवे।
छिप छिप मुंह **दिखलाती** है
मनने को **ललचाती** है।
गुलाब ने और कहा-
अरी चमेली **अंखियां** खोल।
छोड़ रूठना मुंह से बोल।।
आया है ससुराल का **नाई**।
लाया तेरे लिये मिठाई।।
रथ में बैठा बनरा आवे।
तुझको साथ **बिठा** ले जावे।

उ, ऊ और ऋ का योग

दूर गई जंगल में **पूसी**
करने नया शिकार
पीठ पै उसके **दुम** फैला के
मोर **हुआ** असवार
मेंऊं मेंऊं करती पूसी
भागी पूं**छ** पसार
भागी भागी चली गई वह
जयपुर के दरबार
ज्य नगरी के राजभवन में
हुई बिलैया **धृत**
वहां मजे से लगी उड़ाने
दूध मलाई **घृत**।

दाती पोते को सुलाती है

आजा री निंदिया तू आ जा री आ
मेरे बाले की आंखों में घुल मिल जा।

एकार और ओकार का योग

हाट बाट में गली गली में नींद करे **चक फेरे**।
शाम को आवे पूत सुलावे उठ जाय बड़े सवेरे।।
आजा निंदिया आजा तेरी बाला **जोहे** बाट।
सोने के हैं पाये जिसके रूपे की है खाट।।
मखमल का है लाल बिछौना तकिया झालरदार।
सवा लाख हैं **मोती** जिसमें लटकें लाल हजार।।
चार बहू आवें **बाले** के दो गोरी **दो** काली।
दो झुलावें दो खिलावें **ले सोने** की थाली।

ऐकार औकार का योग

एक हाथ में लाठी थामे एक में गिलास।
बुढ़िया चली दही लेने **को** मिल गया **कैलाश**।।
ऐसी जल्दी **ओरी** बुढ़िया बोल उठा कैलाश।
बिना दांत के दही खायगी जाये सत्यानाश।।
बुढ़िया बोली चिढकर लड़का **कैसा है** गंवार।
दही सड़प जाने में है क्या दांतों की दरकार।।

अनुस्वर और विसर्ग

भैया जी कल **चौक** गये थे गंदे लाये लाल।
शौक से खेलेंगे इससे, लाला मोतीलाल।।
राज**हंस** है नाम हमारा।
मानसरोवर धाम हमारा।।
राजवंश है अपना **वंश**।
हीन नहीं है कोई अंश।।
कीचड़-खानी-बत मत कहना।
दुःसाहस कर **दुःख** न सहना।।
कमलपात सिंहासन मेरे।
मुरगाबियां फिरें चैफेरे।।
सिंह बजावें मेरे बाजा
आज हुआ मैं सब का राजा।।
छेड़ कभी मुझसे मत करना।
सदा **चोंच** मेरी से डरना।।

और गुप्त जी वापस अपने लेखन में व्यस्त हो गए

□ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

दरवाजे पर थपथपाहट हुई और अंदर कमरे में नीचे फर्श पर दरी बिछाकर बैठे चौंकी पर कागज रखकर लिख रहे गुप्त जी ने छोटे लड़के को आवाज देते हुए कहा – 'देखना बेटा। कौन आये हैं'। छोटे लड़के ने अपने पिता की आवाज सुनकर दरवाजा खोला और एक सज्जन अंदर प्रविष्ट हुए। गुप्त जी उन्हें देखकर तुरंत खड़े हो गए – 'बहुत दिनों में दिखाई दिए हो मित्र। कहां हो आजकल, क्या कर रहे हो'?

आगंतुक सज्जन जो गुप्त जी का पुराना मित्र था उनके इन प्रश्नों के उत्तर तो दे रहा था पर वह घर की स्थिति को बड़ी बारीकी से देख रहा था। सोचा तो यह था कि 'भारतमित्र' जैसे प्रतिष्ठित अखबार के संपादक से मिलने जा रहा हूं। घर में ठाठ-बाट और रौनक नहीं होगी तो कम-से-कम मध्य वित्त परिवार जैसी स्थिति तो होगी ही। लेकिन यहां तो चारों ओर फटेहाली बिखरी पड़ी दिखाई दे रही थी। 'भारतमित्र' हिंदी दैनिक के संपादक श्री बालमुकुमंद गुप्त की कमीज, जो बहुत ही हल्के कपड़े की सिली हुई थी, पीछे वाली दीवार पर खूंटी से टंगी हुई थी। गुप्त जी बहुत ही मोटी निब वाले कलम से जो बहुत ही सस्ते दामों पर मिलती थी, चौकी पर कागज रखकर लिख रहे थे।

और आगंतुक सज्जन इन सब वस्तुओं को, घर के वातावरण को बड़ी बारीक नजर से देख रहे थे। इधर-उधर की बातें चल रही थी। सज्जन अपना मंतव्य कहने ही जा रहे थे कि गुप्त जी का ज्येष्ठ पुत्र कमरे में आया और उसने बाजार से खरीद कर लायी हुई दो कमीजें अपने पिता के सामने रख दीं।

गुप्त जी ने उससे पूछा – 'कमीज तो अच्छी हैं। कितने की हैं बेटा? '

'चार रूपए की'

'चार रुपए की' गुप्त जी ने बड़े ही विस्मय और आपत्तिजनक स्वर में कहा – 'इतनी मंहगी क्यों खरीदी? इतने में तो घर के सबी सदस्यों के लिए कपड़े बन सकते हैं।'

'अर्थाभाव वाली कठिनाई तो मैं दूर किये देता हूं। मैं इसीलिए आपके पास आया हूं' – यह कहते हुए आगंतुक मित्र ने पांच हजार रुपये उनकी चौंकी पर रख दिए।

ऐसे चौंक गए गुप्त जी जैसे उन्होंने कोई सांप-बिच्छू देख लिये हों। गुप्त जी ने विस्मय विस्फारित नेत्रों से मित्र की ओर देखते हुए कहा – 'क्या मतलब? '

मित्र ने कहा – 'यह तो आपको मांलूम ही है कि यहां की फौजदारी अदालत में दो धनियों के बीच मुकदमा चल रहा है। दोनों पक्षों के सनसनी पूर्ण विवरणों से यहां दैनिक भरे रहते हैं, परंतु न्याय जिनके पक्ष में नहीं है, वे मेरे मित्र हैं यदि आप अपने पत्र में नका समर्थन करें तो शायद उन्हें लाभ हो सकता है। इसी के लिए मैं उनकी ओर से ये पांच हजार रुपये लेकर आया हूं। आप इन्हें स्वीकार कीजिए। '

गुप्त जी ने धीर-गंभीर स्वरों में कहा – 'मित्र तुम गलत समझे हो। अगर अर्थार्जन ही मेरा ध्येय रहा होता तो आप जो अभी चारों ओर घूर-घूर कर देख रहे थे और मेरी गरीबी पर शायद आश्चर्य कर रहे थे, मैं यदि चाहता तो आपको आज आश्चर्य करने का अवसर न मिलता। मुझे संपन्नता से भी अधिक अपना दायित्व प्रिय है। मेरे पत्र का सूत्र ही है – प्रतिष्ठान् रत्नम। धन के लोभ में पत्र की प्रतिष्ठा मैं किसी भी दशा में नहीं गंवा सकता। '

और गुप्त जी वापस अपने लेखन में व्यस्त हो गए।

साभार - देखने में छोटे लगें घाव करें गंभीर भाग -१

बालमुकुंद साहित्य संबंधी संदर्भ ग्रंथ

बालमुकुंद गुप्त रचनावली ; सं. के.सी. यादव ; हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी

बालमुकुंद निबंधावली ; झाबरमल शर्मा व बनारसीदास चतुर्वेदी, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता

बालमुकुंद गुप्त-स्मारक ; झाबरमल शर्मा व बनारसीदास चतुर्वेदी

बालमुकुंद गुप्त ; मदन गोपाल ; साहित्य अकादमी प्रकाशन, दिल्ली

बालमुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली; नत्थन सिंह ; हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला

निबंधों की दुनिया : बालमुकुन्द गुप्त ; संपादक रेखा सेठी ; वाणी प्रकाशन दिल्ली

बालमुकुन्द गुप्तः संकलित निबंध ; कृष्णदत्त पालीवाल ; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, दिल्ली

बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बालमुकुन्द गुप्त शतवार्शिकी समारोह समिति, कलकत्ता

बालमुकुंद रचित ग्रंथ

निबंध

शिवशंभु के चिट्ठे,
चिट्ठी और खत

कविता

स्फुट कविता

भाषा चिंतन

हिंदी भाषा

बाल साहित्य

खिलौना
खेल तमाशा

अनुवाद

रत्नावली
मॉडेल भगिनी
हरिदास
सर्पाघात चिकित्सा

संपादन

जहांगीरनामा

बालमुकुंद के हस्तलेख व हस्ताक्षर

बालमुकुंद गुप्त हस्तलिपि का नमूना यहां प्रस्तुत है।
यह पत्र उन्होंने हिंदी के साहित्यकार श्रीधर पाठक को लिखा था। उस समय गुप्त जी लाहोर में थे।

ॐ लाहोर २२.९.९८

श्रीमहाराज जयराम.

TOO LATE.

कल्ह कृपा कार्ड और राजा शिव प्रसाद की पुस्तका पोंहची और थोड़ी देर पीछे दूसरी डाक में दुर्गेशनन्दिनी पोंहची आपको कोटानकोट धन्यवाद है पुस्तका आपने मुझे विना मूल्य भेजी है उसको मैं आपकी कृपा का बोहत बड़ा चिन्ह समझकर बिना मूल्य ही स्वीकार करता हूं मुझे आपके शरीर की पीड़ा से बड़ा खेद है ऐसी ही अवस्था रही है मुझे आशा है कि मुझ सेवक पर इसी तरह आपकी दया रहे जी

आज्ञाकारी बालमुकन्द गुप्त:

आपकी स्मृतियां, आपके आदर्श ... हमारी प्रेरणा

स्व. श्याम सुंदर सिंहल

पूर्व अध्यक्ष, बाबू बालमुकुंद गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद रेवाड़ी

संस्थापक

- **सिंहल न्यूज एजेंसी**
- **श्री जी स्वीट्स**
- **श्री जी एंटरटेनमैंट**

113- आर एल, मॉडल टाऊन, रेवाड़ी (हरियाणा)
दूरभाष 01274—223232, मो. 9215610750, 9315510750

हिंदी पत्रकारिता के पितामह स्व. बाबू बालमुकुंद गुप्त जी पर विशेषांक निकालने पर 'देस हरियाणा' को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

हेमंत सिंहल व ऋषि सिंहल

ईमेल - hemantshreejee@yahoo.com, shree jee.entertainment@gmail.com

सांस्कृतिक विकास के लिए सरल साहित्य से उत्तम कोई साधन नहीं है।

-प्रेमचंद

प्रेमचंद जयंती

सत्यशोधक फाउंडेशन व डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल संस्थान के तत्वाधान में

'प्रेमचंद के साहित्यिक सरोकार और वर्तमान साहित्य' विषय पर आज सत्यशोधक फाउंडेशन और डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल संस्थान द्वारा प्रेमचंद जयंती और शहीद उधम की शहादत के उपलक्ष्य में 31 जुलाई 2019 को एक विचार गोष्ठी ग्रेवाल अध्ययन संस्थान कुरुक्षेत्र में आयोजित की गई। कार्यक्रम के मंच का संचालन राजेश कासनिया ने करते हुए प्रेमचंद के जीवन दर्शन व रचना संसार से परिचय करवाया कि अभिव्यक्ति मानव का नैसर्गिक स्वभाव है इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में पात्र व घटनाओं के माध्यम से रचनाओं में बुना। उन्होंने कहा कि प्रेमचंद ने साहित्य के बारे में कहा था कि "स्वाभाविकता से दूर होकर कला अपना आनंद खो देती है और समझने वाले थोड़े से कलाविद् ही रह जाते हैं, उसमें जनता के मर्म को स्पर्श करने की शक्ति नहीं रह जाती।"

प्रेमचंद का साहित्य मानवता को सर्वोच्च स्थान देता है।

जिसमें मुख्य वक्ता के तौर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय हिंदी विभाग के प्रोफेसर व देस हरियाणा पत्रिका के संपादक डा. सुभाष चंद्र ने शिरकत की व सह वक्ता के तौर डा. कृष्ण कुमार प्रोफेसर शहीद उधम राजकीय महाविद्यालय,मटक माजरी इंद्री करनाल ने कार्यक्रम की भूमिका को विस्तार दिया।

डा. कृष्ण कुमार ने बताया कि प्रेमचंद के साहित्य के संदर्भो को प्रस्तुत करते हुए बताया कि उनका साहित्य हमें जीवन के भोगे हुए यथार्थ से रूबरू करवाता है उसके साथ साथ हमारी कल्पना शक्ति को भी विस्तार देता है प्रेमचंद ऐसे कालजयी साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने सर्वप्रथम आम जनमानस से जोड़ा।

प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने मुख्य वक्ता के तौर पर बातचीत रखते हुए बताया कि प्रेमचंद यह बात भलीभांति समझते थे उन्होंने कहा कि प्रेमचंद मनुष्य की रचनात्मकता को महत्व देते थे। पइस संबंध में प्रेमचंद का उद्धरण दिया कि "प्रकृति में जो कला है, वह प्रकृति की है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य को तो वही कला मोहित करती है, जिस पर मनुष्य की आत्म की छाप हो, जो गीली मिट्टी की भांति मानवी हृदय के सांचे में पककर संस्कृत हो गई हो। प्रकृति का सौंदर्य हमें अपने विस्तार और वैभव से पराभूत कर देता है। उसमें हमें आध्यात्मिक उल्लास मिलता है। पर वही दृश्य जब मनुष्य की तूलिका, रंगों और मनोभावों से रंजित होकर हमारे सामने आता है, तो वह जैसे हमारा अपना हो जाता है। उसमें हमें आत्मीयता का संदेश मिलता है"

प्रेमचंद ने बताया था कि साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति की दुहाई देकर आती है। प्रोफेसर सुभाष चंद्र ने प्रेमचंद के

नारी विमर्श, दलित विमर्श के नजरिए व शंकाओं पर भी विस्तृत बातचीत रखी। प्रेमचंद के साहित्य से उदाहरण देते हुए इन प्रश्नों पर के पहलुओं पर चर्चा की। उनका कहना था साहित्य के चरित्र अ मृत होते हैं और समाज की मानसिकता को लंबे समय तक दिशा देते रहते हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए जलेस के राज्य प्रधान हरपाल गाफिल जी ने अध्यक्षीय टिप्पणी रखी। उन्होंने कहा कि प्रेमचंद के साहित्य से प्रेरणा लेकर हम वर्तमान में साहित्य के उद्देश्यों के माध्यम से मानस पीड़ा को अभियक्ति दे सकते हैं। इस अवसर पर डॉ ओमप्रकाश करुणेश,डा. रविंद्र गासो, बलदेव महरोक, डॉ विजय विद्यार्थी, विपुला, मनजीत भोला व विश्वविद्यालय विद्यार्थी-शोधार्थियों ने प्रतिभागिता की। शोधार्थी नरेश दहिया ने कार्यक्रम भाग लेने आये सभी साथियों का आभार प्रकट किया।

'देस हरियाणा' पत्रिका और शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय मटक माजरी, करनाल के हिंदी विभाग के संयुक्त तत्वाधान में मनाई प्रेमचंद जयंती

देस हरियाणा पत्रिका और शहीद उधम सिंह राजकीय महाविद्यालय मटक माजरी, करनाल के हिंदी विभाग के संयुक्त तत्वाधान में 29 जून को 'प्रेमचंद से मिलिए' कार्यक्रम का आयोजन किया। इसमें मुख्य वक्ता के रूप में डा. नवीन बतरा, एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, करनाल ने अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि प्रेमचंद की साहित्य संबंधी मान्यताओं पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि प्रेमचंद के चरित्र जीवन में संघर्ष करते करते शक्ति पुंज में तब्दील हो जाते हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर डा. कृष्ण कुमार ने मंच संचालन करते हुए कहा कि प्रेमचंद ऐसी क्रूर ताकतों से लड़ रहे हैं जो संसाधनों के साथ साथ समाज के दिलो दिमाग पर काबिज होना चाहती हैं। प्रेमचंद का साहित्य प्रकाश पुंज की तरह से है। हर नागरिक के पास उनका साहित्य होना चाहिए।

इस अवसर पर कालेज के छात्र-छात्राओं ने प्रेमचंद के निबंध, पत्र, उपन्यास और कहानियों से अंश पढ़कर उन पर चर्चा की। रवि कुमार, अनिल कुमार, फातिमा, साक्षी, इसराना, अंजलि, सीरत, मंजिल समेत अनेक छात्रओं ने इसमें भाग लिया। इस अवसर पर त्यागी आर्ट ग्रुप के कलाकारों ने प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी का मंचन किया। इस अवसर पर महाविद्यालय के 150 के करीब छात्र-छात्राएं व शिक्षक प्रो. बीरमती, प्रो. बबीता, प्रो. मीनाक्षी, प्रो. गुलाब सिंह, प्रो. सुरेंद्र और राजकीय विद्यालय, नन्हेड़ा के मुख्य शिक्षक महेंद्र उपस्थित थे।

रागनी

फूल चढ़ावां-सीस नवावां, मिलकै हम गुड़ियानी म्हं

□ सत्यवीर नाहड़िया

फूल चढ़ावां-सीस नवावां, मिलकै हम गुड़ियानी म्हं।
अमर रहैंगे सदा गुप्त जी, दुनिया आणी-जाणी म्हं॥

गुड़यानी या गुड़-सी मिठ्ठी, जघां घणी या प्यारी।
गुड़यानी के बेर मीठळे, घोड़ां की सरदारी।
गुड़यानी म्हं मंदर-मैजिद, मीयां आळी न्यारी।
गुड़यानी के सौदागर नै, जाणै दुनिया सारी।
खड़ी हवेली भारी भारी, न्यारी साख पुराणी म्हं॥
अमर रहैंगे सदा गुप्त जी, दुनिया आणी-जाणी म्हं॥

बाबू बालमुकुंद नै रै, या न्यारी कलम चलाई।
कलमतोड़ सब लेख लिखे अर जनमत की कबिताई।
छह भास्सा के जानकार थे, सारी बिद्या पाई।
हिंदी पत्तरकारिता म्हं, न्यारी साख बणाई।
आजादी की अलख जगाई, खोये ना गुड़-धाणी म्हं॥
अमर रहैंगे सदा गुप्त जी, दुनिया आणी-जाणी म्हं॥

दौर गुलामी आळा था, रचा नया इतिहास दिखे।
'शिवशंभु के चिठ्ठे' सारे, सभतै न्यारे खास दिखे।
करजन बरगे कांप्या करते, इसी जगायी आस दिखे।
उन गोरां तै लड़ी लेखनी, आई हिंद नै रास दिखे।
नहीं बणे वै दास दिखे, रहे चहे वै हाणी म्हं॥
अमर रहैंगे सदा गुप्त जी, दुनिया आणी-जाणी म्हं॥

नौ दसकां लग जड़ा रहा, कोठ्ठी कै ताळा देक्खो।
चिठ्ठी-पतरी पांड्डूलिप्पी, होग्या गाळा देक्खो।
खुली हवेली याद करे तै, महकी माळा देक्खो।
तीरथ बण ग्यी गुडयाणी रै, हट ग्या जाळा देक्खो।
कह 'नाहड़िया' चाळा देक्खो, थे होग्ये गुप्त कहाणी म्हं॥
अमर रहैंगे सदा गुप्त जी, दुनिया आणी-जाणी म्हं॥

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9991878352
	-	ओमप्रकाश करुणेश	9255107001
यमुनानगर	-	ब्रह्मदत्त शर्मा	9416955476
	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	कुलदीप	9729682692
जीन्द	-	मंगतराम शास्त्री	9516513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
भिवानी	-	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	-	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	नफीस अहमद	7082290222
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	-	wwwlnotnullcom/desharyana	